नकटी नानी

सामजिक उपन्यास



माणिकचंद

नकटी नानी

(एक सामाजिक उपन्यास)

माणिकचन्द्र

भारती साहित्य सदन – नई दिल्ली

प्रकाशक :
भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

●

●

प्रथम संस्करण—सितम्बर १९६१

●

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

●

मुद्रक :
कलात्मक मुद्रण एजेन्सी द्वारा,
राष्ट्र भारती प्रेस, दिल्ली से मुद्रित ।

मेरा नाम मोहिनी है। इस मोहिनी नामकरण का भी एक छोटा-सा इतिहास है, जो मुझे अपनी माँ के मुख से सुनकर विदित हुआ है।

जब मैं केवल दो वर्ष की बालिका थी, माँ कहती है, उस समय मेरे रूप और रंग में कुछ ऐसी विशेषता थी कि जो कोई भी मुझे देखता, गोदी में उठा लेता और जी भरकर प्यार करता। एक बार मेरे नानाजी अपने विरक्त गुरुजी के साथ घर आए। माँ का कहना है, मैं पालने में पड़ी अपने पाँव का अँगूठा चूस रही थी और मेरे नानाजी के साथ आये हुए विरक्त महात्मा मेरे पालने के पास आकर खड़े हो गये, जिन्हें देखकर मैं मुस्कुरा दी थी। मेरी वह मुस्कुराहट उन महात्माजी को कुछ ऐसी भा गई कि वे मुझे अपनी गोदी में उठाये बिना न रह सके। मैंने उनकी सफेद दाढ़ी के साथ खेलना आरम्भ कर दिया था। वे महात्मा अपनी छाती से चिपकाकर मुझे प्यार करते हुए मेरी माँ के पास जाकर कहने लगे, "पार्वती! तुम्हारी यह कन्या साक्षात् मोहिनी है जिसने मुझ जैसे विरक्त साधु को भी अपने मोह-पाश में बाँध लिया है।"

तभी से मेरा नाम मोहिनी प्रसिद्ध हो गया और आज मैं वही नन्हीं बालिका अठारह वर्ष पार कर उन्नीसवें में पदार्पण कर रही हूँ। वैसे तो मैं स्वयं भी अपने आपको सुन्दर समझती हूँ। मेरे लम्बे, घुँघराले, घुटनों तक लहराने वाले, काले केश, गोरा रंग, तीखा नखशिख, जैसे साँचे में ढले हों।

आप सोचते होंगे, मैं अपने ही मुँह मियाँ मिट्ठू बन रही हूँ। प्रशंसा तो वही होती है जो दूसरे करें। पर नहीं, मैं अपने विषय में वास्तविक बात कहने में किस बात का संकोच करूँ? ऐसी बातें कहकर छुई-मुई की भाँति सिकुड़ जाने का मेरा स्वभाव नहीं है। मुझे ऐसी शिक्षा नहीं

मिली। हाँ, तो आज भी मुझमें वही बाल्यकाल वाला आकर्षण है, किंचन्मात्र भी घटा नहीं, बल्कि कुछ बढ़ा ही है।

मैं लखनऊ के एक वीमंस कॉलेज में पढ़ती हूँ, जिसकी प्रिंसिपल एक ऐंग्लो-इंडियन महिला है। मेरे पिता नगर के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर हैं। उनकी प्रैक्टिस खूब चलती है। हजरतगंज में हमारा निजी बँगला है। हमारे पास कार तो नहीं, पर एक मोटर साईकल है, जो मेरे दोनों बड़े भाइयों के काम आती है और एक ताँगा है जिसे मैं और मेरी माँ काम में लाती हैं। मेरे पिताजी का कोर्ट में आना जाना भी उसी ताँगे पर होता है।

आप यह न समझें कि मैं अपनी शादी के बारे में विज्ञापन आदि देने बैठ गई हूँ। वास्तव में मेरा स्वभाव ही ऐसा है। मैं जिस बात को कहना चाहती हूँ उसे पूर्ण कहकर छोड़ती हूँ।

मेरी माँ का विवाह मेरे जन्म से दस वर्ष पहले हुआ था। उन दिनों मेरे पिताजी प्लीडर थे। प्रैक्टिस उनकी तब भी मजे की चलती थी। मेरे जन्म के एक वर्ष बाद ही मेरे पिता इंग्लैंड गए और बैरिस्टर बनकर लौटने के साथ-साथ वहाँ के किसी एक चित्रकार की सुपुत्री मिस रोज़ी पाल को विवाह कर अपने साथ भारत ले आए, जो आज भी श्रीमती खन्ना के नाम से हमारे बँगले के आधे भाग में रहती हैं। हम सब भाई-बहिन उन्हें मम्मी कहते हैं।

यह सत्य है कि मेरी माँ पति के प्रेम का बहुत-सा भाग खो चुकी हैं। परन्तु पिताजी ने आज तक कभी भी आर्थिक दृष्टि से मेरी माँ को तंग नहीं होने दिया। मेरे पिता नियमानुसार सप्ताह में दो दिन अपने इस घर में बिताते हैं, पर उनका अधिक समय मम्मी के साथ ही कटता है। अच्छा यही हुआ कि आज सोलह-सत्रह वर्ष बीत जाने पर भी मम्मी को कोई बच्चा नहीं हुआ और न ही अब होने की आशा की जा सकती है। इसी कारण हम सब बहिन-भाइयों को माँ के प्यार के साथ-साथ मम्मी का प्यार भी मिला है। हमारा लालन-पालन भी अर्द्ध-देशीय पद्धति से

हुआ है।

मम्मी मुझसे बहुत स्नेह रखती हैं। एक समय की बात है, मैं उन दिनों दस वर्ष की थी, घर में नौकर-चाकर होते हुए भी मुझे आटा माँड़ना सिखाने के लिये माँ ने अपने पास बैठा लिया। ऐसा नहीं कि उस कार्य में मेरी रुचि नहीं थी। मैं अबोध बालिका मात्र तो थी, आटा माँड़ना भी एक खेल समझकर उसमें जुट गई। भाग्य से कहिये अथवा दुर्भाग्य से उसी समय मेरे पिता और मम्मी हमारे इस घर में आ उपस्थित हुए। मेरे हाथ आटे में लथपथ देखकर मेरे पिताजी माँ पर बहुत बिगड़े। मम्मी उनको उकसा रही थीं। माँ ने दीनता से उत्तर दिया, "यदि अभी से ही घर-गृहस्थी के काम न समझेगी तो पराये घर जाकर क्या करेगी?"

इस पर मम्मी कहने लगीं, "आपकी यह शिक्षा तो मोहिनी को पशु बना देगी।"

माँ अपना-सा मुख लेकर रह गई थी। उसने एक बार करुण नेत्रों से मेरी ओर देखा था। मुझे याद है, माँ के इस प्रकार देखने से मेरे अन्तर में कुछ होने लगा था। इतने में पिताजी ने आज्ञा दे दी, "उठो मोहिनी! आज से तुम मम्मी के पास रहोगी।"

इतना कहकर वह जिस प्रकार एकाएक मम्मी के साथ आए थे वैसे ही चले भी गए। माँ ने मुझे खींचकर छाती से लगा लिया और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से देखकर बोली, "मोहिनी! अब तुम मम्मी के पास रहोगी, पर मुझे भूल न जाना बेटी! दिन में एक बार आकर मुझे मिल जाया करना।"

मैं क्या उत्तर देती! अपनी माँ का उतरा मुख देखती खड़ी रही। इसी प्रकार मेरा एक बड़ा भाई मुझसे पहले माँ से छीनकर मम्मी की गोद में डाल दिया गया था। वह आजकल कोलम्बो यूनिवर्सिटी में शिक्षा पा रहा है।

उसी दिन से मैं मम्मी के साथ रहने लगी थी। मम्मी मुझे बहुत ही प्यार करती हैं। उन्हीं की कृपा से मैं अच्छे-से-अच्छा खाती और अच्छे-

से-अच्छा पहनती हूँ। हाथ से दाल-भात या पूरी-पराठा खाकर उँगलियाँ खराब करने की आदत मेरी छूट चुकी है। समय-समय पर मम्मी और डैडी के साथ बैठकर लंच, टी और डिनर लेती हूँ।

इसी प्रकार मेरे दिन सुख-सुविधापूर्वक निकलते जा रहे हैं। घर में मम्मी और कॉलेज में क्रिश्चियन टीचर के साथ ही मुझे बैठने-उठने या बातचीत करने का अधिक समय मिलता है। पिकनिक हो चाहे कॉकटेल पार्टी, मेरे चारों ओर ईसाई धर्म का ही वातावरण रहता है। हमारे कॉलेज की प्रिंसिपल मिस मैरी हंडरसन समय-समय पर हमें अपने घर बुलातीं। अधिकतर हम हिन्दू धनाढ्य घरों की लड़कियों को ही वे दावतें देतीं; खिलातीं-पिलातीं, हँसती-बोलतीं और साथ-साथ ईसाई धर्म की विशेषताओं का भी बखान करती रहतीं। हम सभी लड़कियाँ इस बात से चकित थीं कि मिस मैरी का वेतन केवल दो सौ रुपया मासिक था, पर वह हम लड़कियों की दावतों पर अच्छा खासा व्यय कर देती थीं। किन्तु हमें तो आम खाने से मतलब था, पेड़ गिनने से नहीं।

एक बार हम मिस मैरी के घर पर निमन्त्रित थीं। केवल हम सात हिन्दू लड़कियों को ही निमन्त्रित किया गया था। डिनर टेबल पर बैठे-बैठे मेरी एक सहेली ने बात चलाई। बातचीत अँग्रेजी में हो रही थी। उसने पूछा, "प्रिंसिपल! इंगलैंड में सब स्त्रियाँ केश क्यों कटवा देती हैं? इसका कारण क्या छोटे या असुन्दर केश होना तो नहीं?"

उसकी बात सुनकर प्रिंसिपल का मुख लजा गया, पर उसने शीघ्र ही अपने को नियन्त्रित किया और बोली, "नहीं, श्यामा! ऐसी बात नहीं है। मनुष्य जितना हलका और स्वतन्त्र रह सके उतना ही अच्छा। योरप में भी स्त्रियों के बहुत लम्बे-लम्बे बाल होते हैं, पर उन्हें धोने और सुखाने में बहुत समय लगता है और कष्ट भी होता है। इसीलिए हमारे इंगलैंड में केश कटवाने की प्रथा है। वैसे छोटे बाल सुन्दर भी लगते हैं।"

बात हम सबकी समझ में आ गई। हममें से तीन लड़कियों ने उसी दिन बाल कटवा देने का निश्चय कर लिया। मैं तो पहले ही अपने घने

और लम्बे केशों से, जिन्हें कघी करते-करते मेरे हाथ दुखने लगते थे, तंग आ चुकी थी।

मिस मैरी के घर से लौटते समय हम तीनों लड़कियाँ— मैं, रमा, और श्यामा ने एक योरोपियन महिला के सैलून में आकर अपने-अपने बाल काटने के लिये कहा। सब से पहले रमा के बाल काट दिए गए। उसके बाल वैसे भी छोटे और घुँघराले थे। कटने पर बुरे नहीं लगे। तदुपरान्त मेरी बारी आई। लेडी बारबर ने मेरा बँधा जूड़ा खोला और रेशम की तरह मुलायम लम्बे काले केशों को देखकर विस्मय में बोली, "मिस ! आप क्यों बाल कटवा रही है ? आपको तो भगवान ने बहुत अच्छे बाल दिए हैं ?"

पर मुझ पर तो बाल कटवाने का भूत सवार हो चुका था। मैंने उसकी उपेक्षा करते हुए क्षुब्ध होकर कहा, "तुम अपना काम करो मैडम !"

मेरी फटकार सुनकर उसने एक बार मेरे मुख की ओर देखा। फिर कैंची पकड़कर अपना कार्य करने लगी। पहली कैंची चलाने में उसने बहुत समय लगाया। उसका हाथ काँप रहा था, जैसे वह किसी की हत्या करने जा रही हो, पर बाद में मन को कड़ा करके उसने मेरे बाल काटने आरम्भ कर दिए। उसके हाथ की कैंची खचाखच चल रही थी। मैं मन-ही-मन प्रफुल्लित हो रही थी कि आज मेरे बालों को आधुनिक ढंग से कटा देखकर मेरी मम्मी और डैडी बहुत प्रसन्न होंगे। मेरी सुन्दरता को चार चाँद लग जाएँगे। पर जैसे ही लेडी बारबर की कैंची रुकी, मैंने ग्रीवा उठाकर अपने आपको आईने में देखा तो मारे आश्चर्य के मैं दंग रह गई। मैं अपने आपको ऐसा दीखने लगी जैसे कोई दुमकटी बन्दरिया हो।

मेरे केशों में पेच नहीं पड़े थे। मेरे सुन्दर मुख की सारी रौनक उड़ चुकी थी। गर्दन तक कटे काले केश मुझे ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे किसी नाटक के लड़के ने रेशमी डोरों से बने बनावटी बाल लगा रखे हों। मेरा मन रो उठा। मुख का रंग फीका पड़ गया। सारा उल्लास क्षण में ही विलुप्त हो गया। पर अब पछताने से क्या हो

सकता था ! मेरा रोना-धोना सब बेकार था। मेरा मुख देखकर श्यामा हँसने लगी। केश कट जाने से मैं कुरूप हो गई हूँ, यह कहने का साहस तो उसमें नहीं था, पर उसने अपने बाल कटवाने से इनकार कर दिया। मैं जब घर पहुँची, मेरी मम्मी मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुई और मुझे चूमकर बोली, "कैसी सुन्दर लग रही है मेरी बच्ची।"

पर मैं मन ही मन खीझ उठी थी। मैंने चिढ़कर कहा, "कहाँ मम्मी ! मेरे बालों में रिंग तो पड़े नहीं, ये सीधे-सादे बाल तो एकदम कृत्रिम प्रतीत होते हैं।"

मम्मी ने हँसकर उत्तर दिया। "मेरी प्यारी बेटी ! रिंग तो रिंग चढ़ाने से आते हैं। आज रात मैं तुम्हारे बालों पर रिंग चढ़ा दूँगी। कल प्रातः देखना तुम्हारे बाल लहराते, बल खाते हुए कुण्डलाकार बहुत सुन्दर प्रतीत होंगे। तब तुम और भी सुन्दर लगने लगोगी।"

मम्मी की बात से मुझे धैर्य तो कुछ अवश्य मिला, पर मैं सोच रही थी कि प्रकृति की अमूल्य देन मैंने मूर्खता से अपने हाथों खो दी। गत पन्द्रह वर्षों से अपने जिन केशों को मैं प्राणों से भी अधिक प्रिय मानती आई थी, उन्हें ही कटवाकर मैंने अच्छा नहीं किया। नारी का आधा रूप तो सुन्दर केशों से ही है। भारतीय नारी का केश कटवाना दुर्भाग्य अथवा विधवा होने का चिह्न माना जाता है। भारतीय युवतियाँ अपने सहस्रों रुपये इन केशों को बढ़ाने के लिये व्यय कर देती हैं; और उन्हीं केशों को मैंने इस प्रकार बेदर्दी से कटवाकर अलग फिकवा दिया था। मैं आज भी उस दुर्दिन की याद करती हूँ तो अपनी मूर्खता पर खेद की हँसी हँस देती हूँ। अभी तक भी मेरे केश वैसे सुहावने तो नहीं हो पाए पर अब इतने बुरे भी प्रतीत नहीं होते कि मुझे कोई दुमकटी कह सके। मैंने मन-ही-मन यह निश्चय कर लिया था कि पुनः ऐसी भूल कदापि नहीं करूँगी।

मैं माँ से प्रतिदिन मिलने जाती थी, उस दिन भी गई। मेरी सूरत देखते ही माँ को मानो बिच्छू ने डंक मार दिया हो। वह तिलमिला

उठी। क्रोध में आकर माँ ने जी भर मुझे कोसा और अपनी असमर्थता पर आँसू बहाए। मैं स्वयं ही पछता रही थी। इसीलिए माँ का क्रोध मुझे अखरा नहीं। माँ की गालियाँ मैंने चुपचाप सह लीं।

दिन व्यतीत होते जा रहे थे। मैं इण्टर से बी० ए० में आई। मेरी बुद्धि का विकास हुआ। मैं सोचने-समझने योग्य हो गई। उन्हीं दिनों मेरी मित्रता एक क्रिश्चियन युवक से हुई। वह देखने में बहुत भोला और सीधा-सादा प्रतीत होता था। रिश्ते में मिस मैरी का वह भान्जा होता था। मिस मैरी ने स्वयं ही हमारा परिचय कराया था। हम दोनों आपस में प्रतिदिन मिलते, मीठी-मीठी बातचीत होती, वह मेरे घर आता, मेरी मम्मी उसका बहुत मान करती। पिताजी भी उस पर प्रसन्न थे, पर मेरी माँ को वह एक आँख नहीं भाता था। माँ मन-ही-मन जली-भुनी जा रही थी। उसका वश चलता तो अवश्य ही मुझे अपने आँचल की सात तहों में छिपाकर रखती, जहाँ पर मुझे साँस लेना भी दूभर हो जाता, पर हमारे घर में मम्मी की बात ही सर्वमान्य होती थी। माँ मम्मी से विरोध रखते हुए भी उसकी बात को काट नहीं सकती थी, क्योंकि उस पर पिताजी का शासन था। मेरी माँ के लिए मेरे पिताजी के वाक्य ब्रह्मवाक्य से कम महत्व नहीं रखते थे।

मैं देखती थी कि एक ओर तो मेरी माँ सारा दिन घर-गृहस्थी की चक्की में पिसती रहती थी, उसे नौकरों के काम पर विश्वास ही नहीं होता था। और दूसरी ओर मम्मी ठाट-बाट से रहती, अपने हाथ से एक तिनका भी न तोड़ती और हमारे सारे परिवार पर आज्ञा चलाती थी।

पिताजी की आय का तीन हिस्सा रुपया तो केवल मम्मी के खर्च में आता था। एक हिस्से में मेरे बड़े भाई और माँ अपना निर्वाह करते थे। फिर भी वह एक हिस्सा इतना कम नहीं होता था कि जिसके कारण माँ को तथा भाइयों को अच्छा खाने-पहनने में किसी प्रकार का कष्ट हो। हम सभी सुख-सुविधापूर्वक अच्छा खाते और अच्छा पहनते थे। पर खाने-पहनने के बाद एक पैसा भी पिताजी के पास नहीं बच पाता था।

बी० ए० में आकर हम लड़कियों में भारतीय नारी के कल्याण की भावना जागृत हुई। क्योंकि हम स्वयं स्वच्छन्द तितलियों की भाँति अपना जीवन यापन कर रही थीं। अन्य भारतीय नारियों को चूल्हे-चौके के कार्यों में व्यस्त देखकर हम उन्हें दुःखी समझतीं, उनके पतियों को अत्याचारी कहतीं, जो रात-दिन अपनी पत्नियों को गृह-कार्य में कोल्हू के बैल की भाँति जुटाये रखते थे। हमें उन स्त्रियों पर दया आने लगी। हम कुछ लड़कियों ने आपस में मिलकर 'नारी कल्याण संघ' के नाम से एक संस्था बना डाली। इस कार्य में हमें सबसे अधिक प्रोत्साहन देने वाली हमारे कॉलेज की प्रिंसिपल मिस मैरी ही थीं। हम कुछ लड़कियाँ मिलमिलाकर नगर के प्रमुख और धनाढ्य व्यक्तियों के घरों में जातीं और उनकी पत्नियों तथा माताओं से मिलकर भारतीय नारी के कष्ट का इस प्रकार चित्र खींचती कि हमें दस-पाँच या इससे भी अधिक रुपये चन्दे में मिल जाते। हम अपनी पार्टी की बैठकें किसी ऐसे स्थान पर बुलातीं जो सुन्दर, सुखद और रमणीक होता। वहाँ जलपान भी होता और नारी के सुधार की योजनाएँ भी बनतीं।

हमारे इस संघ को बने दो-ढाई वर्ष हो चुके थे; पर न तो तब तक हमने किसी नारी का सुधार ही किया था और न किसी नारी को उसके अत्याचारी पति के हाथों से ही बचा पायी थीं। हमारा प्रचार कार्य चंदा एकत्रित करने तक ही सीमित था। जितना चंदा एकत्रित होता, वह सारे-का-सारा दो तीन बैठकों के खर्च में ही समाप्त हो जाता। हम सभी लड़कियाँ पढ़ी-लिखी और सुप्रसिद्ध व्यक्तियों की सुकन्यायें थीं। चंदा देने वाली महिलायें हमें निःसंकोच रुपये देतीं और हम उन रुपयों को योजनाओं की रूपरेखा तैयार करने में ही समाप्त कर देतीं।

हमारे संघ का मुख्य उद्देश्य यही था कि भारतीय नारी को पुरुष वर्ग के अत्याचारों से बचाया जाय और उन गृह-कार्यों में लगी हुई महिलाओं से सभी कार्य छुड़वाकर लखनऊ की अच्छी-से-अच्छी सड़कों पर घुमाया जाय। जिस प्रकार हम लड़कियाँ सज-धजकर तितली की

भाँति फड़फड़ाती रहतीं थीं, उसी प्रकार अन्य नारियों को भी अपनी सहगामिनी बनाया जाय। हम संघ की बैठकों में प्रस्ताव पास करतीं, पुरुषों को गालियाँ देतीं, उन पर लाछन लगातीं। परन्तु यह सारी बातें हम लडकियों तक ही सीमित थीं। इससे अधिक हम इतना और कर लेती थी कि पैम्फलेट छपवाकर उन घरों में पहुंचा देती जिन घरों में से अधिक चन्दा मिलने की आशा होती या चन्दा प्राप्त कर चुकी होती।

: २ :

एक रविवार के दिन मेरी कोठी में ही नारी कल्याण संघ की बैठक होने वाली थी। चाय का पूरा आयोजन हो चुका था। नौकरों द्वारा कोठी के खुले लान में मैंने मेज-कुर्सियाँ लगवा दी थी। ग्यारह बजे बैठक होने वाली थी। मैं साढ़े दस बजे लान में बिछी कुर्सियाँ, मेज आदि का निरीक्षण कर रही थी कि इतने में पीछे से आवाज आई—

"भिक्षा दिबेन माँ ! (भिक्षा देगी माँ)"

मैंने मुड़कर देखा, एक नकटी भिखारिन जो अपने जीवन के लगभग चालीस वर्ष पूरे कर चुकी थी, खड़ी हुई भिक्षा माँग रही थी। उसके शब्दों के उच्चारण से मैं यह तो समझ गई कि वह बंगालिन है। उसके सिर के केश पके हुए थे, आँखों के नीचे काले गढ़े पड़ चुके थे, रंग गोरा था। नाक के स्थान पर दो काले काले छेद देखकर मुझे भय सा लगने लगा। ऐसा विकृत मुँह मैंने पहले कभी नहीं देखा था। यद्यपि उसके केशों में कंघी तक नही की हुई थी, पर वे अभ्यासानुसार बहुत ही सुन्दर ढंग के आकार में आए हुए थे। जैसे वे केश वर्षों किसी कुशल और कोमल हाथों से बन, सँवर चुके हों और उन्हें अपनी पुरानी गति आज तक नहीं भूली हो। मैंने कई अन्य भिखारिनों को भी देखा है, उनके केशों में यह बात नहीं मिलती। फटी पुरानी साड़ी में लिपटी हुई उस नकटी भिखारिन को मैं देखने लगी। उसने एक बार पुनः अपने करुण स्वर में अपनी माँग दुहराई।

"भिक्षा दिवेन माँ !"

अनायास मेरी दृष्टि उसके नेत्रों की ओर उठ गई। अरे ! ऐसे सुन्दर और कटीले नयन तो मैंने आजतक किसी के नहीं देखे थे। मैं आश्चर्य चकित हुई उसकी ओर ताकती रही। उन आँखों में विचित्र प्रकार की एक चमक या मस्ती-सी भरी हुई थी कि जिन्हें एक बार देख लेने पर उधर से दृष्टि हटा लेना कठिन प्रतीत होता था। जैसे किसी अजगर की दृष्टि से दृष्टि मिल गई हो। मैंने उस नकटी को सिर से पाँव तक देखा। वह वैसे ही करुणा की मूर्ति-सी बनी खड़ी थी। उसके साड़ी बाँधने के ढंग को देखकर मुझे और भी विस्मय हुआ। गँवार, अपढ़ भिखारिनों के हाथ इस प्रकार सुन्दर ढंग से साड़ी बाँध लेने की क्षमता नहीं रखते।

मुझे उस पर दया हो आई और कहा, "खाना खाओगी ?"

उसने हिन्दी में ही उत्तर देते हुए कहा, "जो कुछ भी आप देंगी, आपका अनुग्रह मानूँगी बेटी !"

उसकी बात सुनकर तो मैं अवाक् रह गई। इतनी शुद्ध हिन्दी और शिष्ट उच्चारण एक साधारण भिखमंगी के मुँह से सुनने की कौन आशा कर सकता है ! मैंने समझ लिया कि निश्चय ही यह भाग्य की ठुकराई हुई किसी कुलीन घर की स्त्री है। भिखारिन समझकर रूखी बात करने का मेरा साहस न हुआ। पर मैं उसे 'जी' भी नहीं कह सकी। अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया, "एक ओर बैठ जाओ नानी ! अभी थोड़ी देर में भोजन मिलेगा।"

वह फाटक के पास ही एक ओर बैठ गई। एक-एक, दो-दो करके मेरी सहेलियाँ भी आने लगीं। आधे घण्टे के समय में हमारे 'नारी कल्याण संघ' की सभी सदस्याएँ आ गईं। सबसे अन्त में श्यामा आई। उसने आते ही उस नकटी भिखारिन को देखकर हँसते हुए अँग्रेजी में मुझसे कहा, "हैलो, मोहिनी ! आज क्या इस नकटी को सभानेत्री बनाओगी ?"

श्यामा के बीचवाली सीट पर बैठा लिया। श्यामा के माथे पर बल पड़ गए, जिसे मैंने और मेरे साथ-साथ नकटी नानी ने भी अनुभव किया।

नकटी नानी मुस्कुराकर अँग्रेजी में श्यामा से बोली, "क्षमा करें देवी ! मैं जबरदस्ती बैठाई गई हूँ, इसमें मेरा कोई दोष नहीं।"

उसके अँग्रेजी के शब्द इतने नपे-तुले और मधुर थे कि सुनकर सभी लड़कियाँ उसकी ओर देखने लगीं। सम्भवतः हम में से कोई भी लड़की ऐसा शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती थी। श्यामा के मुख का रंग उड़ गया था। उसे तनिक भी आशा नहीं थी कि यह नकटी भिखारिन अँग्रेजी पढ़ी-लिखी होगी। वह न जाने अँग्रेजी में उस भिखारिन को क्या-क्या अपशब्द कह चुकी थी, जिसका उसे खेद होने लगा था। आरम्भ से ही वह नकटी नानी की भयावनी सूरत से भयातुर हो चुकी थी। उसने एकदम से, चीखते हुए पूछा, "कौन हो तुम ?"

श्यामा का यह प्रश्न सुनकर मेरा मन खिन्न हो उठा। परन्तु नकटी नानी पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह उसी प्रकार मुस्कुरा रही थी, जैसे उसके सामने एक अबोध बालिका ढिठाई कर रही हो। उसने बहुत ही कोमल वाणी में उत्तर दिया, "एक साधारण नकटी भिखारिन के अतिरिक्त मेरा भला और क्या परिचय हो सकता है ? क्या इतना ही जान लेना पर्याप्त नहीं ?"

न मालूम श्यामा उस नकटी भिखारिन से इतनी भयभीत क्यों हो रही थी। भिखारिन के लिए उसके मुख से कोई उत्तर न निकला। वह मुझसे बोली, "यह क्या हो रहा है मोहिनी ! तुम एक भिखारिन को हमारे साथ बैठाकर हमारा अपमान कर रही हो। हम यह सहन नहीं कर सकतीं।"

मेरा मन श्यामा के अभिमान को देखकर क्षुब्ध हो उठा। मैंने खड़े होकर, सबकी ओर देखते हुए एक प्रकार का भाषण झाड़ना शुरू कर दिया। मैंने श्यामा से पूछा, "अकेली तुम ही अपना अपमान समझ रही हो श्यामा ! या हमारे नारी कल्याण संघ की अन्य सदस्यायें भी ऐसा समझ रही हैं ?"

मेरे शब्दों में कुछ कटुता थी। यह जानकर सबका ध्यान मेरी ओर हो गया। मैंने पुनः कहा, "नारी कल्याण संघ का क्या यही कार्य है कि एक अबला भाग्य की सताई हुई भारतीय नारी के केवल निकट बैठने मात्र से आप अपना अपमान समझ रही हैं? क्या इसी प्रकार हम नारी जाति का कल्याण करेंगी? आप याद रखें आज यह अकेली नारी हमारे संघ से सहायता पाने की अधिकारिणी है। कल को ऐसी सैकड़ों नारियां मिलेंगी, जिनके कल्याण का हमने बीड़ा उठाया है। क्या हम उसी प्रकार उन नारियों से भी घृणा करेंगी?

"आज दो वर्ष से हमारे संघ ने क्या कार्य किया है? सिवाय बैठकें बुलाने, प्रस्ताव पास करने और फ्रूट-केक इत्यादि खाने के, हमने किस दुःखी नारी की सहायता की है? हमें शर्म आनी चाहिए। जिस उद्देश्य को लेकर हमने इस संघ की स्थापना की है, उसके सामने यह पहला ही कार्य आया है। उसके सामने यही पहली अबला और दुःखी नारी आई है जिसकी सहायता करना हमारा कर्तव्य है। पर क्या यह लज्जा की बात नहीं कि उस दुखिया नारी का दुःख दूर करने की अपेक्षा हम उससे घृणा करें, उसके निकट बैठने में अपना अपमान समझें?

"आज मैं खुले शब्दों में उन सब सदस्याओं से कह देना चाहती हूँ, जो एक अबला स्त्री को बैठी देखकर अपना अपमान समझती हैं, वह संघ छोड़कर जा सकती है। यदि सब चली जाना चाहती हैं तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

मेरे इन वाक्यों से श्यामा के तन-बदन में आग लग गई। वह नकटी नानी से तो पहले ही जल रही थी, मेरी बातों से भड़क उठी, और चट से सैण्डिल चटकाती हुई कोठी से बाहर निकल गई। परन्तु अन्य किसी लड़की में उठकर चले जाने का साहस नहीं हुआ और न ही वे कुछ कह सकीं; पर नकटी नानी से न रहा गया। उसने कहा, "यह तुमने क्या किया बेटी! मेरे कारण उस बेचारी को अपमानित होकर जाना पड़ा। मुझे तो उसकी बातों का कुछ भी गिला नहीं। मैं तो हूँ ही इस योग्य।

उसकी बात सुनकर हम सब हँसने लगीं। जिन लड़कियों ने पहले नकटी की ओर ध्यान नहीं दिया था, वे भी उसे घूरने लगीं। मैंने भी अँग्रेजी में उत्तर दिया, "बेचारी भले घर की प्रतीत होती है। भोजन की आशा में बैठी है।"

यह कहकर मैंने उस नकटी की ओर देखा। मुझे ऐसा लगा कि वह ध्यानपूर्वक हमारी बातें सुन और समझ रही है।

श्यामा ने पुनः कहा, "मेरा तो इसे देख लेने पर ही मन बैठता जा रहा है। कैसी मनहूस सूरत है इसकी ?"

मैंने उत्तर दिया, "बेचारी भाग्य की ठुकराई हुई है। किसी समय यह भी सुख-सुविधा में रही होगी।"

इस पर चित्रा बोली, "मुझे तो यह किसी पुरुष के अत्याचार से पीड़ित प्रतीत होती है।"

हममें से एक ने कहा, "अब छोड़ो इसको। आज की कार्यवाही आरम्भ करो। मुझे साढ़े बारह बजे यहाँ से चले जाना है। आज मेरा मैटिनी शो देखने का प्रोग्राम है।"

श्यामा ने कहा, "मोहिनी ! पहले इस नकटी को कुछ दे-दिलाकर दफ़ा करो। इसकी सूरत देखकर मेरा हृदय विकल-सा हो रहा है। न जाने कौन है !"

श्यामा की बात मुझे अच्छी नहीं लगी, पर उसकी बात टाली भी नहीं जा सकती थी। उसके और मेरे पिताजी में बहुत मित्रता तो थी ही, साथ ही उसका और मेरा आपसी प्यार भी कम नहीं था। मैंने सकरुण दृष्टि से एक बार उस नकटी की ओर देखा। वह अपने स्थान से उठी, एक बार मेरी ओर देखकर मुड़ी और अन्यत्र जाने लगी। उसे निराश लौटते देखकर मेरे मन में व्यथा उमड़ आई। मैं उस नकटी के पास जाकर बोली, "बैठो, मैं तुम्हें कुछ दिलवाए देती हूँ।"

मेरी बात सुनकर नकटी ने पुनः मेरी ओर देखा और ग्रीवा झुकाकर चलने लगी। मुझसे रहा न गया और उतावली-सी बोली, "ठहरो,

नानी !"

उस समय मेरे शब्दों में से कुछ ऐसी व्यथा झलक रही थी कि जिन्हें सुनकर नकटी नानी के पाँव रुक गए।

श्यामा ने चुटकी लेते हुए कहा, "हाँ, हाँ, मोहिनी ! पहले अपनी नकटी नानी को कुछ खिला-पिला दो और बाद में बचा-खुचा हमें दे देना।"

पर मैंने श्यामा की बात अनसुनी कर दी और उससे कहा, "ठहरो नानी ! मैं अभी लाती हूँ।"

मेरी बात सुनकर उसने द्रवित नेत्रों से मेरी ओर देखा। उस दृष्टि में स्नेह की पुट थी। मैं उसके नेत्रों से नेत्र न मिला सकी। मेरी ग्रीवा झुक गई। वह कुछ व्यथा भरी मुस्कुराहट लेकर बोली, "मैं आप सबको डिस्टर्ब कर रही हूँ बेटी ! आप इन सबको खिला-पिला लें, मैं बाद में आ जाऊँगी।"

'डिस्टर्ब कर रही हूँ' अँग्रेजी का शब्द सुनकर मैं आश्चर्यचकित होकर उसकी ओर देखने लगी। मुझे विस्मययुक्त देखकर वह मुस्करा दी। पर उसकी इस मुस्कराहट में मानो स्वयं व्यथा मूर्तिमान होकर नृत्य कर रही थी। मैंने शंकित वाणी में पूछना चाहा पर तुम कहकर उसे कुछ कहने का साहस मुझमें न रहा। बरवस मेरे मुख से निकला, "आप हमारी बातचीत समझ रही है ?"

"हाँ, बेटी ! समझ तो रही हूँ। मुझे अँग्रेजी भाषा का कुछ ज्ञान है, पर जाओ तुम्हारी सहेलियाँ नाराज हो रही होंगी। मैं फिर आ जाऊँगी।"

परन्तु मेरा मन उसे छोड़ने को नहीं हुआ। मैंने उसे बाजू से पकड़कर लौटा ले आने के उद्देश्य से कहा, "नहीं, मेरे साथ चलो। मैं अब आपका परिचय पाए बिना नहीं छोड़ूगी।"

इतना कहकर मैं उसे अपने साथ खैंचती हुई ले आई। श्यामा और अन्य लड़कियाँ आश्चर्य से मेरा मुख देखने लगी। मैंने उसे अपने और

जितना भी मेरा अपमान हो उतना ही शुभ है। मेरे कुकर्मों का यही प्रायश्चित है।"

यह कहते-कहते उसके नेत्रों से मोटे-मोटे अश्रुकण गिरने लगे, जिन्हें देखकर हम सब लड़कियों का मन भारी हो गया। मैंने कोमलता से पूछा, "अपने विषय में कुछ कह सकोगी नानी ?"

नानी ने मेरी ओर देखते हुए कहा, "पर ये बेचारी जो लड़कियाँ चाय इत्यादि पीने की आशा लिए बैठी हैं, इन्हें खा-पीकर जा लेने दो बेटी ! फिर मैं तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दूंगी।"

मैं उतावली-सी उठी और बोली, "अभी सब प्रबन्ध किए देती हूँ नानी ! तुम भी हमारे साथ बैठकर खाओ।"

मेरी बात सुनकर नकटी ने स्नेह से मेरी ओर देखा। मैं जाकर चाय इत्यादि का प्रबन्ध करने लगी। सब सामान तो तैयार ही था। नौकरों को केवल आज्ञा मात्र देनी शेष थी। पांच ही मिनट में चाय वितरित होने लगी और उसके साथ कुछ खाद्य सामग्री भी आई। सबने चाय की चुस्कियाँ लेनी शुरू कर दीं।

पहले तो नानी हमारे साथ बैठकर खाने में संकोच करने लगी, पर मेरे बार-बार कहने पर वह मान गई।

: ३ :

लगभग पौन घण्टा हमारा यह कार्य चलता रहा। तदनन्तर नकटी नानी से मैंने उसकी जीवन-कथा सुनाने का आग्रह किया। नानी ने मुझे समझाते हुए पूछा, "जिस उद्देश्य से ये सब लड़कियाँ इकट्ठी हुई हैं, वह उद्देश्य चाय-पार्टी तक ही सीमित था या उसका कुछ कार्य शेष है ?"

चाहिए तो यह था कि खाने-पीने से पहले हम कुछ कार्य कर लेतीं और हुआ इसके विपरीत। वास्तव में हमें और करना ही क्या था। [illegible] की बैठक का तो नाम मात्र हुआ करता था। असल में तो हम सब [illegible] कियों की पार्टियाँ ही हुआ करती थीं। कल्याण-कल्याण की [illegible]

कोरा ढोंग मात्र ही था, पर यह बात मैं आज कह रही हूँ। उन दिनों मुख में पेस्ट्री या केक चबाते समय ऐसा ही प्रतीत होता था जैसे हमारा खाना-पीना, उठना-बैठना, नारी-कल्याण का एक अंग है। किन्तु आज तक मैंने या मेरी किसी भी सहेली ने किसी पिछड़ी या पुरुषों के हाथों से सताई हुई स्त्री को देखा हो, ऐसा मुझे ध्यान नहीं आता। हाँ, उपन्यासों में पढ़ा बहुत था। उपन्यासों में नारियों पर पुरुषों के अत्याचार भी पढ़े थे। नारियों का छिप छिपकर अश्रु बहाना भी पढ़ा था। उन्हीं कपोल-कल्पनाओं से प्रेरित होकर हम सब लड़कियाँ नारी के दुःख का अनुभव कर तड़प उठती थीं। पर किसी भी ऐसी स्त्री से साक्षात्कार नहीं हुआ था और न ही मैंने किसी ऐसी स्त्री से मिलकर पूछा था कि वह अपने परिवार में अपने पति या बाल-बच्चों को पाकर रात-दिन उनकी अथक सेवा करके प्रसन्न है अथवा अप्रसन्न ?

नकटी नानी मेरे उपन्यासों की नायिका-सी बनकर आज मेरे सामने प्रकट हुई थी। इसीलिए मैं उसकी कुछ सहायता करने की इच्छा करने लगी। उसके मुख से उसकी व्यथा-गाथा सुनने की आकांक्षा मुझ में प्रबल हो उठी। मैंने नकटी से कहा, "नानी! आज तुम्हारा जीवन-वृत्तान्त सुनकर ही हमारा संघ कोई प्रस्ताव पास करेगा। तुम अपनी कथा कहो। किस पुरुष के अत्याचार से तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है? यदि हो सका तो हमारा संघ तुम्हारी सहायता करेगा। हम तुम्हारे द्वारा उस पुरुष पर केस चलाकर तुम्हें तुम्हारा अधिकार दिलवाएँगी।"

मेरा छोटा-सा व्याख्यान सुनकर नकटी नानी मुस्कुरा दी। मेरे प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक जानकर वह धीरे से बोली, "क्या मैं आपके सं[illegible] का उद्देश्य जान सकती हूँ ?"

उत्तर रमा ने दिया, "उद्देश्य तो मोहिनी ने पहले ही कह सुनाया है, [illegible] नारी जाति का कल्याण करना चाहती हैं।"

"कल्याण के कई रूप होते हैं बेटी! आर्थिक सहायता, स्वास्[illegible] अन्य [illegible] सहायता या बौद्धिक सहायता, ये सब कल्याण के अंग हैं।

यही जानना चाह रही थी कि आप सब किस रूप में नारी जाति का कल्याण करना चाहती हैं ?"

नकटी के मुख से नारी कल्याण की उक्त विवेचना सुनकर हम एक दूसरे का मुख ताकने लगीं। यह तो हमने आजतक सोचा ही नहीं था, कि हम किस रूप में नारी का कल्याण करना चाहती हैं ? पर मैं आज सोचती हूँ तो मुझे यही प्रतीत होता है कि उस काल में हम केवल अपने मन बहलाव का साधन मात्र समझकर ही इस ओर प्रवृत्त हुई थीं और वही चलता आ रहा था।

हम सब लड़कियों में शीला बहुत चतुर और समय पर बात बना लेने वाली थी। जब हम नानी के प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सकीं, तो उसने ही हमारी लाज रखी। वह कहने लगी, "हम, भारतीय स्त्रियों को अतीत की पुरानी ओढ़नी से निकालकर वर्तमान युग में खड़ा करना चाहती हैं। पुरुषों ने अबला अबला कहकर नारी को सचमुच ही अबला और पंगु बना रखा है। उसी के विरुद्ध हमारा संघ कार्य कर रहा है। हम संस्कारों की नींद में सोती नारियों को झकझोर कर जगा देना चाहती हैं। उन्हें पुरुषों के बराबर पूर्ण स्वतंत्र करना चाहती हैं।"

उत्तर में नकटी नानी ने इतना ही कहा, "मैं समझ नहीं पाई बेटी ! तनिक विस्तार से समझा दो।"

"विस्तार से केवल यही कहना है कि नारी केवल घर का चूल्हा या चक्की पीसने के लिए ही पैदा नहीं हुई है। नारियों के हृदयों में भी सुख और शान्ति से घूमने-फिरने या खाने-पहनने की इच्छाएँ होती हैं।"

नकटी नानी मुस्कुराने लगी। उसके पतले मुस्कुराते हुए अधर बहुत भले प्रतीत हो रहे थे। यदि आज उसकी नाक भी होती तो कुरूप कहलाने वाला मुखड़ा बहुत सुन्दर और आकर्षक प्रतीत होता। शीला के उत्तर में नकटी ने कहा, "परन्तु आप सब में ऐसी तो कोई लड़की प्रतीत नहीं होती, जिसे खाने-पहनने, हँसने-बोलने या घूमने-फिरने में कोई बाधा हो ?"

मैंने कहा, "हम यह अपने लिए थोड़े ही कह रही हैं नानी! यह तो उन स्त्रियों की बात है, जो रात-दिन घर के चूल्हे-चक्की में पिसती रहती हैं।

"क्या किसी ऐसी स्त्री ने आकर तुमसे शिकायत की है बेटी?"

इस बात से तो हम सब सोच में पड़ गईं। ऐसा समय तो कभी भी नहीं आया कि किसी नारी ने हमसे आकर कहा हो कि वह अपने घर से असन्तुष्ट है। बल्कि एक बार मेरे घर की नौकरानी और उसके पति में झगड़ा हो गया था तब मैंने अपनी नौकरानी का पक्ष लेकर उसके पति को डाँटना चाहा था, पर मेरी नौकरानी ने मुझे ही डाँट बताते हुए कहा था, "मिस! आप हमारे आपसी झगड़े में क्यों दखल दे रही है?"

नौकरानी की बात सुनकर मैं जलभुन गई थी।

मैंने झेंपते हुए नकटी को उत्तर दिया, "शिकायत तो किसी ने नहीं की, नानी! पर उनके दुःख को देखकर हमें दुःख होता है।"

"जैसे आपमें से एक मुझे देख उठकर चली गई है, ऐसा ही दुःख होता है न?"

नानी की इस बात से हम सब लज्जित हो गईं। नानी कह रही थी, "पर किसी को देख लेने मात्र से ही आप कैसे जान सकती हैं कि वह दुःखी है? आप जिसे दुःखी समझें वह स्त्री दुःखी नहीं भी हो सकती। फिर ऐसी सेवा तो कोई महत्व नहीं रखती बेटी! सहायता वही अच्छी है जो किसी के माँगने पर दी जाय।"

शीला ने कहा, "नकटी नानी! कोई अन्धा यदि आँखें न होने के कारण ठोकर खाकर गिरने लगे तो उसे बचा लेना सबका कर्तव्य हो जाता है कि नहीं?"

शीला का बार-बार नकटी सम्बोधन मुझे खटक रहा था। पर नकटी के मुख पर क्रोध की रेखा तक न फूटी। संभवतः इसका कारण यह हो कि नकटी को नकटी कहना कोई बुरी बात नहीं। नानी नकटी है। यदि उसे कोई नकटी कहता है तो उसमें क्रुद्ध होने की क्या बात है। नाक वाली स्त्री को तो कोई नकटी कह नहीं सकता। पर मैं

चाहती थी कि शीला कुछ सभ्यता का व्यवहार करे। शीला के इस प्रकार के असभ्य व्यवहार से मैं लज्जित हो उठी थी। नानी ने जैसे मेरे अन्तर की बात जानकर मुझसे कहा, "तुम्हारा दुःखी होना अकारण है बेटी! जो स्वयं ही छोटा हो, उसे छोटा कहना, है तो छोटी बात, पर इसे पाप या अन्याय नहीं कहा जा सकता। सभी मनुष्य तुम्हारे जैसा कोमल हृदय न भी रखते हों तो इसमें उनका दोष नहीं और फिर मेरा दुःखी होना तो कोरी मूर्खता है। जैसी मैं हूँ वैसा ही तो यह कह रही है। तुम दुःखी क्यों होती हो?"

नकटी नानी ऐसी सहनशील है, यह जानकर मेरे भी नेत्र भर आए। शीला भी अपनी भूल समझ गई। उसने खेद प्रगट करते हुए मुझ से कहा, "मैं अपने व्यवहार पर लज्जित हूँ मोहिनी! मेरी धृष्टता से आप दोनों को दुःख हुआ।"

आश्चर्य तो इस बात का था कि उस नकटी को नकटी-नकटी कहकर अपमानित किया, श्यामा मन भर उसका तिरस्कार करके चली गई, पर नानी को तनिक भी व्यथा न हुई। किन्तु शीला की क्षमा-याचना से उसके नेत्र भर आए। शीला ने पुनः कहा, "आपने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया नानी?"

नानी ने ग्रीवा उठाकर एक झटका-सा अपने सिर को दिया। दुःख, ग्लानि, व्यथा सबको जैसे झाड़कर अलग फेंक दिया हो और स्वाभाविक वाणी से वह बोली, "तुम्हारा कहना पूर्णतया सत्य है बेटी! यदि कोई नेत्र-विहीन ठोकर खाकर गिरने जा रहा है तो अवश्य ही उसे बचा लेना चाहिए, पर यह तो उस अंधे की क्षणिक सहायता ही हुई। आप एक ही बार उस अंधे को गिरने से बचाकर अलग हो जाएँगी। जन्म भर तो वह ठोकरें खाता और गिरता रहेगा। अन्धे का दुःख नेत्रविहीन होना ही है। उसे आप यदि नेत्र-ज्योति दे सकें तो उसके सारे दुःख दूर हो जावें, पर यह आप सब के सामर्थ्य से बाहर की बात है। क्या आप उसी अन्धे की तरह नारी जाति को भी अन्धी समझती हैं? इसके उत्तर में आप...

कि नहीं। क्योंकि आप भी नारी हैं, मैं भी नारी हूँ। आपके नेत्रों में भी ज्योति है और मैं भी अन्धी नहीं हूँ। गिरने का भय उसे होता है जो अन्धा होता है। यदि आप अन्धों को ज्योति दे सकें तो आप उनका कल्याण कर सकती हैं।"

शीला ने उत्तर दिया, "आप मेरे कहने का विपरीत आशय ले रही हैं नानी! अन्धे का उदाहरण देने का मेरा तात्पर्य यह था कि जो नारियाँ अन्ध-विश्वास में जकड़ी हुई हैं, उनमें ज्ञान का दीपक जलाना। मेरा तात्पर्य नेत्र के अन्धे से नहीं अक्ल के अन्धों से है। सो उन अक्ल के अन्धों को कुछ बुद्धि प्रदान तो कर ही सकती हैं।"

"तुम्हारा आशय नारी जाति को बौद्धिक शिक्षा देना है, यह मैं समझ गई। पर सबको एक ही लाठी से हाँकना श्रेयस्कर नहीं है। तुम सब एक ही कालिज में शिक्षा पा रही होगी, पर विषय सबका अपना अलग-अलग होगा। किसी ने भूगोल किसी ने अर्थशास्त्र लिया होगा और किसी की रुचि विज्ञान में होगी। अब प्रश्न यह है कि विज्ञान पढ़ने वाली लड़की यदि भूगोल के विषय में कुछ नहीं जानती तो उसे क्या बुद्धिहीन कहना ठीक होगा? इसी प्रकार कोई घर-गृहस्थी में रहने वाली नारी आप सबकी तरह स्वच्छन्द विचरना अच्छा न समझती हो या उसकी रुचि आपकी रुचि के साथ मेल न खाती हो तो आप उसे किस बल पर मूर्ख कहेंगी?"

इस प्रश्न का उत्तर शीला के मुख से भी एकाएक न निकल सका। वास्तव में देखा जाय तो हम अपनी धारणाओं के बल पर ही अन्य नारियों को दुःख सहती और पिछड़ी हुई समझ रही थीं। उनके पास जाकर तो हमने कभी पूछा नहीं था कि वे अपने वर्तमान जीवन से सन्तुष्ट हैं या असन्तुष्ट? और न ही किसी स्त्री ने आकर शिकायत की थी कि वह अपने इस जीवन से दुःखी है।

हमारी ओर से कोई भी उत्तर न पाकर नानी कहने लगी, "जैसे प्यासा मृग चमकते बालू को पानी समझकर उसकी ओर भागता है, उसी

प्रकार आप सबकी सेवा-प्रवृत्ति आपको भ्रम में डाले हुए है। आप अपने प्रतिरूप जिस स्त्री को भी देखती हैं, उसे ही अपनी सेवा का पात्र और दुःखी समझने लग जाती हैं। परन्तु है यह भ्रम मात्र ही। जिन नारियों को आप दुखिया और पुरुषों द्वारा सताई हुई, अज्ञानी अथवा पिछड़ी हुई समझती हैं, हो सकता है, वे सब स्त्रियां आप सबको मर्यादाहीन, नासमझ या पथ-भ्रष्ट समझती हों।"

कुछ रुककर नानी पुनः बोली, "मेरी बात का बुरा न मानना बेटी! किसी की सेवा करना या किसी के दुःख को दूर करना अच्छी बात है। परन्तु स्वस्थ व्यक्ति को, अपनी डाक्टरी का परिचय देने के लिए, उसके शरीर में इंजेक्शन की सुइयाँ भोंक देना बुद्धिमत्ता नहीं। सेवा उसी स्थान पर सार्थक होती है, जहाँ उसकी आवश्यकता हो।"

नानी की बात सुनकर शीला से न रहा गया और उसने कहा, "आपकी यह बात मैं नहीं मानूंगी नानीजी! मदिरा के तीव्र नशे में नाली के गन्दे पानी में गिरा हुआ व्यक्ति अपने आपको स्वर्ग में झूला झूलता अनुभव करता है। क्या उसे नाली से निकालकर उसके मिथ्या भ्रम को दूर करना ठीक नहीं?"

"मेरा भी तो यही कहना है बेटी! तुम सब भी सेवा-भाव के उन्माद में विपरीत मार्ग पर चल रही हो। सर्वप्रथम इस बात का निर्णय हो जाना चाहिए कि कौन अपने मार्ग से विमुख होकर चल रहा है।"

नानी की यह बात हम सबको अखरी। हम तो औरों की सेवा करने में लगी रहें और नानी हमें कुमार्गगामिनी कहे, यह बात हममें से किसी को भी अच्छी नहीं लगी। शीला क्रुद्ध होकर बोली, "आपका क्या यह कहना है कि हम सब विपरीत मार्ग पर चल रही हैं?"

"ऐसा कहने का मुझे कोई अधिकार नहीं बेटी! इस प्रकार उन अपने से प्रतिकूल चलने वालियों को मूर्ख या पिछड़ी हुई कहकर आप लोगों को भी तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उत्तर में यदि तुम यह कहो कि हम उनका तिरस्कार कहाँ कर रही हैं, हम तो उनकी सेवा करना चाहती

हैं, तो यह तुम्हारा भ्रम है। दानी अपने आपको देने योग्य बड़ा व्यक्ति समझकर ही दान देता है। जो दान लेता है उसे छोटा ही कहा जाता है। अपने को बुद्धिमान और दूसरे को अल्पज्ञ समझकर ही उपदेश किया जाता है। अपने से हेय समझकर ही किसी के लिए कुछ करने की प्रवृत्ति उपजती है। क्या अपने से हेय, अल्पज्ञ अथवा याचक समझना उसका तिरस्कार करना नहीं? यदि तुम लोग किसी को पीड़ित नहीं समझतीं या मूर्ख नहीं समझतीं तो उसकी सहायता करने और उन्हें उपदेश देने की तुम सबको आवश्यकता ही क्या है?"

नानी के उक्त कथन में मैंने एक बात विशेषकर लक्ष्य की। वह यह है कि व्यक्ति अपने गुणों से ही आदर पाता है। अपनी बाह्य रूपरेखा या चटक-मटक से नहीं। नकटी नानी को भिखारिन मात्र समझकर हम सबने उसकी अवहेलना की थी। उसे नकटी, नकटी कहकर उसका अपमान करती आई थीं और नानी, हम सब को जी या आप कहकर आदर देती थी। पर थोड़े ही समय में जहां शीला के मुख से तू के स्थान पर तुम और तुम से आप निकलने लगा था, वहाँ नानी के मुख से आप के स्थान पर तुम निकल रहा था। यदि बिना बात-चीत हुए नानी शीला जैसी बुद्धिमती लड़की को तुम या तू कहकर पुकारती तो वह इस नकटी का मुँह नोच लेती या नौकरों से पिटवाकर कोठी से बाहर निकलवा देती, पर अब हम सब उसकी तू या तुम का तनिक भी बुरा नहीं मान रही थीं। यह मेरे लिए एक चमत्कार की बात थी। शीला ने उकताकर कहा, "आखिर आप हमें क्या शिक्षा देना चाहती हैं नानीजी?"

नानी मुस्कुराकर बोली, "मैं मूर्ख, नकटी, भिखारिन, तुम जैसी बुद्धिमती लड़कियों को भला क्या शिक्षा दे सकती हूँ। बातों ही बातों में यदि कुछ कह गई होऊँ तो बुरा न मानना बेटी! भिखारिन समझकर क्षमा कर देना।"

मैंने दीनता से कहा, "नहीं नानी! हम यह समझ चुकी हैं कि इस खण्डित पात्र में शुद्ध और शीतल जल भरा है, जिससे हमारी तृष्णा मिट

सकती है परन्तु जो हम चाहती हैं, जिस उद्देश्य को लेकर हमने इस संघ की स्थापना की है, उसी के विषय में आप हमें मार्ग दिखावें।"

मेरी बात सुनकर नानी गम्भीर हो गई। उसके मुँह पर एक प्रकार की क्लान्ति-सी छा गई, नेत्रों में मोटे-मोटे अश्रुकरण तैरने लगे। उसकी ऐसी दशा क्यों हुई? इस रहस्य को हम में से कोई भी जान न सकीं। हम सभी नेत्रों में दयाभाव लेकर उसकी ओर ताकती रहीं। नानी ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए मेरी ओर देखकर कहा, "मैं तुम लोगों के नारी कल्याण संघ का वास्तविक उद्देश्य नहीं समझ सकी बेटी! समझ लेने पर सम्भवतः तुम सबकी सहायता कर सकूं।"

मैंने कहा, "हम नारी जाति को पुरुष वर्ग के अत्याचारों से बचाना चाहती हैं। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिलवाना चाहती हैं। मैं आपको अपने घर का उदाहरण देकर समझाती हूँ। मेरी एक माता है और दूसरी विमाता। विमाता योरोपियन महिला है। मेरी माँ और विमाता, जिसे मैं मम्मी कहती हूँ, में आकाश-पाताल का अन्तर है। माँ तो घर-गृहस्थी के चूल्हे-चक्की में पिस रही है और मम्मी सर्व प्रकार से स्वर्ग-सुख का भोग कर रही है। मैं चाहती हूँ कि मेरी मा भी मम्मी की भांति उसी प्रकार वस्त्रादि से सुसज्जित और सुख-सुविधापूर्वक रहे, घूमे-फिरे जैसे मेरी मम्मी रहती है।"

"तुम्हारे पिता क्या तुम्हारी मां को ऐसा करने से रोकते हैं? बेटी!"

"नहीं नानी! वे तो स्वयं चाहते हैं कि मेरी मां भी उसी प्रकार बन-ठन कर ठाठ से रहे जैसे मेरी विमाता रहती है।"

"तो इसमें तुम्हारे पिताजी का उस पर कौन-सा अत्याचार हुआ?"

नानी का उत्तर सुनकर मुझे अपनी भूल का ज्ञान हो आया। यदि सोचा जाय तो इसमें मेरे पिताजी का क्या दोष है? मैं मन-ही-मन लज्जित हो गई और कुछ कह न सकी। नानी कहने लगी, "तुम सोचती होगी कि माँ दुःखी क्यों रहती है? पिताजी उसका तिरस्कार क्यों करते हैं? पर यह तो केवल विचार-विभिन्नता है। जहां पति और पत्नी की

विचार-धारा एक न हो, वहा दोनों ही एक-दूसरे से दु:खी रहते हे। जहाँ पुरुष स्वतन्त्र विचारों का हो और नारी पति के प्रतिकूल विचारों वाली हो उस घर मे सर्वदा क्लेश बना रहता है। इसी प्रकार यदि नारी स्वतन्त्र विचार की है और उसका पति वैसे विचारों का नही है तो वहाँ भी क्लेश रहता हे। पर इससे किसी पुरुष का नारी के प्रति या नारी का पुरुष के प्रति अत्याचार तो कही भी दिखाई नही देता। दिखाई देती है केवल विचार विभिन्नता।

"यदि नारी सुशिक्षित है और वह अपने पति के अनुरूप चलने लगे या पति को अपने अनुरूप चलाने का प्रयत्न करे, तो दोनों सुखी रह सकते है। तुम अपने ही घर में देख लो। तुम्हारी माता अपने पति के अनुकूल नही हो सकी और इसी प्रकार तुम्हारे पिता तुम्हारी माताजी के अनुकूल नही हो सके। इनमे तुम किसको दोषी ठहराओगी ?"

मैं सोच में पड़ गई कि मेरे माता और पिता में झगडा तो केवल इतना ही है कि दोनों एक दूसरे के प्रतिकूल चलते हैं। पिताजी चाहते है कि मम्मी की भाँति मेरी माँ भी सुर्खी, पाउडर लगाकर या बाल कटवाकर उनके साथ चले, पर माँ इस प्रकार निर्लज्ज घूमना पसन्द नहीं करती। इसी से वे आपस में तने रहते है। जिन घरों में अशान्ति है, उन सब घरो में क्या ऐसा ही तो नहीं होता ? एकाएक मेरे मन में एक प्रबल विचार उठा, जिसका समाधान पाने के लिए मैंने उससे पूछा, "पर नानी ! मेरी माँ के क्या ये कुसस्कार नही, जो सारा दिन घर के झाड़ू-झड़कड़ में फँसी रहती है ? क्या उसकी यह अज्ञानता दूर करने की वस्तु नही है ?"

नानी कुछ उत्तर दे, इससे पहले ही रमा बोल उठी, "नारी जाति की इस अज्ञानता को दूर करना हम अपना कर्तव्य समझती है।"

रमा की बात सुनकर नानी हँसने लगी और बोली, "अर्थात् सारी नारी जाति तुम लोगों का उपदेश पाकर घर का काम-काज करना छोड़ दे। पर तुम लोगों ने कभी यह भी सोचा है कि घर का काम-काज

करेगा कौन ?"

उत्तर शीला ने दिया, "घर के काम-काज के लिए दास-दासियाँ रखी जावें।"

नानी खिलखिलाकर हँसती हुई बोली, "जो दासियाँ घर के काम-काज के लिए रखी जावेंगी, वह क्या नारियाँ नहीं, काष्ठ या प्लास्टिक की पुतलियाँ होंगी ? अन्त में घर का काम-काज तो एक नारी को ही करना पड़ा, भले वह मालकिन न होकर दासी हुई। एक नारी को चूल्हे-चक्की से हटाकर उसके स्थान पर दूसरी नारी को बैठा देना, नारी जाति की ऐसी ही सेवा क्या तुम लोग करना चाहती हो ?"

मारे लाज के हम सब की गर्दनें झुक गई। पर शीला ने बिना सोचे ही उत्तर दिया, "नारियों ने क्या इस बात का ठेका ले रखा है ? नानी ! पुरुष भी तो घर ही में रहते हैं। वे भी तो कुछ कर सकते हैं ?"

"अर्थात् पुरुष घर का चूल्हा-चौका फूँका करें और नारियाँ बाह्य कार्य किया करें, यही तुम्हारा तात्पर्य है न ? पर इसे तो सेवा या सुधार नहीं कहा जा सकता। यह तो पुरुषों के प्रति ईर्ष्या का भाव है। और यदि ऐसा हो भी जाय, तब भी समाज में अशान्ति तो रहेगी ही। आज यदि नारियाँ पुरुषों के बराबर अधिकार माँगती हैं तो कल को पुरुष नारियों के अत्याचार के रोने रोकर 'पुरुष कल्याण संघ' की स्थापना करने लगेंगे ?"

हम सब नानी का मुख देखने लगीं। हमारे पास उत्तर ही क्या था जो देतीं।

नानी ने पुनः कहना आरम्भ किया, "इसी से कहती हूँ बेटी ! शराब, भाँग, चण्डू इत्यादि के समान भावुकता भी एक तीव्र नशा है। भावनाओं में बहकर मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है। तुम लोग जिस भावना में बहकर चली जा रही हो, उसे भूल ही कहा जा सकता है, पाप नहीं। तुम सब का उद्देश्य यदि नारी जाति को सुख-सुविधा पहुँचाना है, तो श्रेयस्कर है। पर विधि इसकी भ्रममूलक है।"

नानी की बात पर हम सब विचार करने लगी। एकाएक रमा को स्मरण हो आया कि उसे मैटिनी शो देखने जाना था। दो बज चुके थे। वह कहने लगी, "अरे! मैं तो भूल ही गई। मुझे सिनेमा जाना है, मिस्टर शर्मा मेरा रास्ता देख रहे होंगे।" फिर कुछ सोचकर स्वयं ही बोली, "पर अब नहीं जाऊँगी। मैटिनी शो तो निकल गया, पर नानीजी की बातें भी अधूरी ही क्यों रहने दूँ?"

इतने में शीला ने कहा, "हम सब आपके विषय में जानना चाहती हैं नानी!"

शीला की बात सुनकर नानी गम्भीर हो गई। वह किसी गहरे सोच में डूब गई थी। सम्भवतः अपनी कहानी कहने के विषय में अपने मन को तैयार करना चाहती हो। अनायास ही ग्रीवा उठाकर उसने मुझसे कहा, "बाथरूम दिखा सकोगी बेटी!"

मैं उठी और उसको अपने साथ लेकर बाथरूम की ओर चल दी।

: ४ :

नानी बाथरूम में गई तो मैं बाहर खड़ी सोचने लगी कि क्यों न नानी को एक साड़ी दे दूँ। नानी की फटी साड़ी तो उसके तन को भी नहीं ढँक सकती थी। मैं भागी हुई अपने कमरे में गई और एक नई-सी साड़ी नानी के लिए ले आई।

नानी जब बाथरूम से बाहर निकली तो मैंने देखा कि उसके नेत्र लाल हो रहे थे। मैं समझ गई कि वह बाथरूम में जा जी भर कर रोई है। मैंने इस विषय में उससे कुछ पूछा नहीं। केवल साड़ी उसकी ओर बढ़ाती हुई बोली, "लो नानी! यह साड़ी पहन लो।"

मेरे शब्दों में स्नेह झलक रहा था। जैसे वास्तव में ही वह मेरी नानी हो। पर उसने साड़ी को छूआ तक नहीं और हँसकर बोली, "नहीं बेटी! ऐसा न कहो, यह साड़ी मेरे रूप के अनुरूप नहीं। ऐसी बहुमूल्य साड़ी पहन कर मुझसे भीख माँगते भी नहीं बनेगा। मैं तो मारे

लाज के ही मर जाऊँगी ।"

मैं अवाक् उसका मुख देखने लगी । मुझे याद आया । नानी वही प्रात: वाली नकटी भिखारिन है, जिसने आकर मुझसे भिक्षा माँगी थी। मैं वास्तव में भूल चुकी थी कि नानी मेरी अपनी कोई नहीं । उसे अपने वर्ग की महिला जैसी समझकर बातचीत करती आई थी। पर उसने मेरे दान को अस्वीकार कर मेरी भावनाओं का तिरस्कार किया था, जिससे मैं क्षुब्ध हो उठी । मैंने उसे पुन: साड़ी के लिए नहीं कहा । उसके प्रति मेरा तिरस्कार जाग उठा था ।

नानी धीरे-धीरे बाहर लॉन में चली आई । आज यदि नानी की बात का विचार करती हूँ तो उसी की बात सत्य प्रतीत होती है। उसने कहा था, "दानी दयावश दान नहीं करता बल्कि मान पाने के लिए दान करता है।" मैं आज समझ रही हूँ, हो-न-हो उस समय मेरे क्रोध का भी यही कारण था। मैं अपने दान का तिरस्कार नहीं सह सकी थी। नानी को साड़ी देकर जो प्रसन्नता या तृप्ति मुझे होने वाली थी, नानी ने मुझे उससे वंचित रखा था। इसी कारण उस नकटी पर मुझे घृणा हो आई थी ।

साड़ी को वहीं एक कोने में फेंक कर मैं भी नकटी के पीछे पीछे बाहर लॉन में आगई, जहाँ सब लड़कियां हमारी प्रतीक्षा में बैठी थीं। हम दोनों अपने अपने स्थान पर आ बैठीं । पर मेरा मन क्षोभ से भरा हुआ था। नकटी भिखारिन ने मेरे दान की अवहेलना करके मेरा अपमान किया था, मेरे हृदय को ठेस पहुँचाई थी। यदि उस समय मैं अकेली होती तो अवश्य ही उस नकटी भिखारिन को कोठी से बाहर निकलवा देती । परन्तु जिन अपनी सहेलियों के सामने उसको मान दिया था, उन्हीं सब के सामने मुझसे उसका अपमान करते न बना। आखिर मैं भी शिक्षित और सभ्य थी ।

पर नानी तो जैसे मेरे हृदय की एक-एक नस को पहचानने लगी थी। लॉन में पहुँच उसने सर्वप्रथम मुस्कुराकर मुझे सम्बोधित करते

हुए कहा, "नाराज हो गई मेरी बेटी ?"

उसके ऐसा कहने पर मैं थर्रा उठी थी। जैसे मेरी कोई भद्दी चोरी पकड़ी गई हो। सभी लड़कियाँ मेरी ओर देखने लगीं। मैं संकोच से दबी जाती थी। मेरे माथे पर पसीना आ गया। मन-ही-मन डर रही थी कि नानी कहीं कुछ और न कहने लगे। पर नहीं, मेरी वर्तमान दशा को भी नानी ने भाँप लिया था। उसने साड़ी वाली बात का उल्लेख तक न किया।

शीला ने कहा, "नानी जी! आपकी जीवन-कथा सुनकर हमें बहुत लाभ होगा। आपका अनुभव हमारा पथ प्रदर्शन करेगा। आपकी जीवनी हमारे लिए शिक्षाप्रद होगी।"

शीला की बात सुनकर नानी ने ग्रीवा उठाई और दृढ़तापूर्वक बोली, "यद्यपि अपने मुख से अपनी बुराई, अपनी लम्पटता या दुर्बलताओं का उल्लेख करना बहुत ही कठिन होता है; बड़े बड़े त्यागी, महात्मा भी ऐसा करने में असमर्थ होते हैं, तथापि सब कहूँगी। मेरे भद्दे आचरण, मेरी नीचताओं और ओछी प्रवृत्तियों का आभास पाकर तुम सब मुझसे घृणा करने लग जाओगी, मेरा तिरस्कार करोगी, मेरी कुकृतियों पर थूक भी सकती हो, तिसपर भी मैं अपने जीवन का कलंकित इतिहास अवश्य सुनाऊँगी। मैं जिन कुप्रवृत्तियों में बहकर अपना सर्वस्व खो चुकी हूँ, उनको सुनकर यदि तुम में से किसी एक का भी मन कुछ शिक्षा ग्रहण कर सका तो मैं अपने पापों का सबसे बड़ा प्रायश्चित्त समझूँगी। तुम लोगों की घृणा मेरे पापों के बोझ को हल्का करेगी। यही सोचकर मैं अपनी कथा कहती हूँ।

"मेरा जन्म कलकत्ता के एक सुप्रसिद्ध बंगाली परिवार में हुआ था। मेरे पिता ऑनरेरी मजिस्ट्रेट थे। हमारा मकान अलईपुर में था।"

हम सब तो नकटी नानी का इतना-सा परिचय पाकर ही आश्चर्य चकित रह गईं। हम में से किसी को भी ऐसी आशा नहीं थी कि भाग्य के क्रूर हाथ किसी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की पुत्री को नकटी भिखारिन के

रूप में हमारे सामने लाकर खड़ा कर देंगे। किन्तु हमारे विस्मय की अवहेलना करते हुए नानी कह रही थी, "मैं अपने परिवार में अकेली ही लड़की थी। न मेरा कोई भाई था न ही कोई बहिन थी। माता-पिता का सारा प्यार मुझ अकेली के लिए ही सुरक्षित था। बंगले के नौकर चाकर केवल मेरे लिए ही थे। बँगले की छोटी सी वाटिका में मेरे लिए ही फूल खिलते थे। घोड़ा-गाड़ी, कार, सब कुछ मेरे ही लिए तो था। मेरे दादा पूर्वी बंगाल के बहुत बड़े जमींदार थे। लाखों की वार्षिक आय थी।

"पिता लंदन से आई० सी० एस० होकर लौटे थे। उन्हें कुछ करने-धरने की आवश्यकता नहीं थी। कचहरी का कार्य उनके लिए मन बहलाव का साधन था। दिन भर वह मुझ से खेलते, अपनी इच्छा से कचहरी जाते, कभी नहीं भी जाते, उन्हें कहने या टोकने वाला कोई नहीं था। मेरा बाल्यकाल वैसे ही सुरक्षित था जैसे हीरे की नन्हीं-सी कणिका को छिपाकर सुरक्षित रखा जाता है। मैं कमल-कलिका की भांति कोमल, चार वर्ष की हो चुकी थी। कुछ कुछ तुतलाकर बात भी किया करती थी। अपने बँगले के लॉन में स्वच्छंद विचर सकती थी। खिलौनों से मेरा घर भरा हुआ था। पर अब मुझे अपने समवयस्क बालकों से खेलने में अधिक आनन्द मिलता था। परन्तु जहाँ हम रहते थे, वहाँ कोई मुहल्ला नहीं था। हमारे बँगले के अगल-बगल कुछ छोटे-मोटे बँगले अवश्य थे, जिनमें अधिकतर एंग्लो-इंडियन परिवार ही रह रहे थे।

"हमारे बँगले के साथ सटे हुए बँगले में एक बंगाली ईसाई परिवार रहता था। उनका लड़का मेक्स बहुत चंचल और शरीर था। वह बँगले की दीवार फांदकर हमारे बँगले में आ जाता। कभी कभी फूल तोड़कर ले जाता। मैं प्रायः उसे देखा करती थी। जब कभी चोरी से उसे दीवार फाँदकर अपने बँगले के लॉन में आया देखती तो मैं अपने तोतले शब्दों में उसे डाँटा करती,' पर वह गुब्बारे की भांति मुख फुला फू-फू करके हँसने लगता। उसे हँसता देखकर मुझे भी हंसी आ जाती। उसका फू,

—३

फू करना मुझे बहुत भला प्रतीत होता। वह मुझ से कुछ ही वर्ष बड़ा था। मैं अपनी माँ से उसकी शिकायत भी करती। माँ उसके घर उलाहना भेजती, उसे डाँट-डपट भी पड़ती, पर वह अपनी चोरी की आदत से न टलता। कभी-कभी हमारे उलाहना भेजने पर मेक्स की माँ उसे कान से पकड़कर हमारे बँगले में ले आती थी और उसे मेरी माँ से क्षमा माँगने को कहती थी। पर वह शरारती क्षमा न माँगकर हँसने लगता, जिससे मेरी माँ को भी हँसी आ जाती। हँसते समय मेक्स के गोरे गालों में गढ़े पड़ जाते थे जो मुझे बहुत भले मालूम होते थे। उसके बार बार आने जाने से मेरा परिचय उससे घनिष्ठ होता गया।

"मैं छः वर्ष की हो चुकी थी। पाठशाला पढ़ने भी जाती थी। कभी-कभी छुट्टी वाले दिन मैं स्वयं मेक्स को देखने के लिए या उससे खेलने के लिए उसके बँगले में चली जाती। मेक्स का एक छोटा भाई और एक बहिन भी थी। मेक्स की बहिन का नाम हैलन था। वह मेरी समवयस्का थी। हम प्रायः चारों बालक मिलकर खेला करते थे। कभी-कभी आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते थे। हैलन यदि मेरे साथ उलझती तो मैं उसे पीट देती। मेक्स तो मुझे कुछ न कहता पर हैलन का छोटा भाई जॉन अपनी बहिन की सहायता के लिए मुझ पर टूट पड़ता और मुझे एकाध थप्पड़ रसीद कर देता। तब मेक्स मेरी सहायतार्थ खड़ा हो जाता और जॉन को डाँटता। कभी-कभी उसे एकाध थप्पड़ भी मार देता और साथ में उसे उपदेश देते हुए कहता, "जॉन ! तुम मर्द होकर एक लड़की पर हाथ उठाते हो ? तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

"परन्तु मैं इस बात पर हैरान थी कि हैलन मुझसे कमजोर नहीं थी, तिस पर भी मैं उससे उलझ जाती, कभी पीटती और कभी पिट जाती, पर जॉन पर मेरा हाथ न उठता। हॉला कि वह मुझसे अधिक बलवान नहीं था। फिर भी न जाने मेरा हाथ उस पर क्यों नहीं उठता था। हो सकता है मेरा लड़की होना इसका कारण हो। वैसे मैं शरीर में उससे कमजोर नहीं थी।

"एक दिन की बात है, रविवार का दिन था। उस दिन मेक्स, हैलन और जॉन मेरे बंगले में आये हुए थे। मेक्स लॉन के एक ओर कोने में, जहाँ माली ने मिट्टी का ढेर लगा रखा था, बैठा उस मिट्टी से एक किला बना रहा था। किले में जाने-आने की सड़कें और गुप्त रास्ते भी उसने बनाए। मेक्स यह जानता था कि मेरे खिलौनों में मिस्त्रदार दो मोटरें भी हैं। मैं, जॉन और हैलन पास खड़े हुए उसकी इंजीनियरी देख रहे थे। मेक्स को मेरी मोटरों का ध्यान हो आया और वह मुझे आज्ञा देता हुआ बोला, 'जाओ मरला! अपनी मोटरें ले आओ।'

"मेरे खिलौनों में यह दो मोटरें ही मुझे अधिक प्रिय थीं। मैं, जॉन और हैलन के सामने मोटरें लाकर उन्हें खराब नहीं करना चाहती थी। मैंने मेक्स की बात अमान्य कर दी, जिस पर मेक्स ने आँखें तरेरते हुए पुनः कहा, "सुना नहीं? मैं कहता हूँ मोटरें ले आ?'

"मेक्स की डाँट मुझे अखरी। मेरी मोटरें हैं, मैं नहीं देना चाहती। मेक्स मुझे डाँटने वाला कौन होता है? मैं पूर्ववत मौन ही खड़ी रही। मेक्स को अपनी आज्ञा की उपेक्षा अखर गई। वह अपने छोटे भाई और बहिन के सामने अपना अपमान न सह सका। उठा और मेरे सामने खड़ा होकर घूरने लगा। मैंने उसकी ओर देखा अवश्य पर उसकी दृष्टि से दृष्टि न मिला सकी। मेरी ग्रीवा झुक गई। मेरी ढिठाई पर मेक्स का दाहिना हाथ उठा और तड़ाक से एक थप्पड़ मेरे गाल पर पड़ा, जिससे मैं तिल-मिला उठी। पर मेक्स ने उसी प्रकार जरनली आज्ञा-सी देते हुए कहा, 'जाओ मोटरें लेकर आओ।'

"मेरा सारा विरोध समाप्त हो चुका था। नेत्र भर आए थे, पास खड़े हुए हैलन और जॉन विस्मय से मेरा और मेक्स का मुख देख रहे थे, उस समय जॉन का पुरुषत्व जाग उठा। जिस बात पर वह कई बार मेक्स से पिट चुका था, मेक्स ने भी वही भूल की थी। मुझ लड़की पर हाथ उठाया था। मेक्स को लज्जित करने के लिए जॉन को समय मिल गया। वह बोला, 'ओ, यू एनीमल मेक्स! एक लड़की पर हाथ

उठाते तुम्हें शर्म आनी चाहिए।'

"जॉन की फटकार से मैक्स उत्तेजित हो उठा। उसने आगे बढ़कर जॉन को भी एक तमाचा दे मारा। सब बातों में छोटा होता हुआ भी जॉन मैक्स से भिड़ गया। हैलन भी जॉन की सहायता करने लगी। बिचारा मैक्स दो के मुकाबले में अकेला रह गया और पिटने लगा। पर न जाने मेरा मन व्यथा से क्यों भर गया। मैक्स को यदि कमजोर जॉन का एक हलका-सा घूंसा भी लगता तो मेरे हृदय पर चोट पहुँचती। मुझसे रहा न गया। जॉन और हैलन मुझ पर हुए अन्याय के विरुद्ध लड़ रहे है, इस बात को मैं भूल गई। मैंने तत्परता से मैक्स की सहायता के उद्देश्य से हैलन को बालों से पकड़कर अपनी ओर खींच लिया। अकेले जॉन को पीट डालना मैक्स के लिए कोई कठिन कार्य नहीं था। दो तीन थप्पड़ खाकर ही जॉन का विरोध समाप्त हो गया। हैलन की और मेरी बराबर की टक्कर थी। हम दोनों कुछ समय लड़ भिड़कर स्वयं ही शान्त हो गई। मेरे और हैलन के झगड़े में जॉन और मैक्स दोनों में से किसी ने भी हस्तक्षेप नहीं किया था। हमारे शान्त हो जाने पर भी मैक्स अपने खेल को नहीं भूला था। उसने पुनः आज्ञा सी देते हुए कहा, 'सरला जाओ मोटरें ले आओ?'

"अब मुझ से उसकी आज्ञा की अवहेलना न हो सकी। मैं गई और अपनी दोनों मोटरें लेकर लौट आई। मैक्स ने उन दोनों मोटरों को मुझसे लेकर किले की सड़क पर एक आती और एक जाती खड़ी कर दी। मोटरें रख देने से उस मिट्टी के किले का दृश्य बहुत सुन्दर प्रतीत होने लगा। हम चारों अपना वैर-विरोध भूलकर एक हो चुके थे। कब हममें झगड़ा हुआ और कब मेल, इसका हमें कुछ भी पता न चला। पर उसी दिन से मेरे दिल में मैक्स का आतंक बैठ गया था।

"मैक्स जितना ही मुझ पर शासन करने लगा था, उतना ही मैं मैक्स को प्यार करने लगी थी। उसे अपना संरक्षक समझने लगी थी। मुझे ऐसा विश्वास हो गया था कि मैक्स हर कठिनाई में मेरी सहायता

करने में समर्थ है और वह वैसा करता भी था। हैलन और मेरे झगड़े में मेक्स सर्वदा मेरा पक्ष ग्रहण करता। साथ ही वह मुझ पर भी पूरा पूरा शासन चलाता, जैसे मैं उसकी दासी होऊँ।

"इसी प्रकार बाल्यकाल में कई छोटी-छोटी घटनाएं घटीं, पर वह सब एक ही रंग की थीं। उन सबका प्रभाव मुझ पर एक-सा-ही पड़ा। मैं मेक्स को अपना रक्षक और हितकांक्षी समझकर उसे प्यार करने लगी। मेक्स मुझे अपनी वस्तु समझकर मुझ पर शासन करता और समय-समय पर मीठी-मीठी बातें करके मुझे प्रसन्न भी करता। आयु के साथ-साथ मेरा शरीर भी बढ़ता गया और शरीर के साथ-साथ हमारा आपसी मोह भी बढ़ता गया। मैं पन्द्रह वर्ष की हुई, मेक्स अठारह वर्ष का था। मैंने मैट्रिक पास किया था। मेक्स बी० एस-सी० पास करके इंगलैंड चला गया। वह वहाँ इंजीनियरिंग की शिक्षा पाने के लिए गया था।"

: ५ :

इतना कहकर नानी चुप हो गई, जैसे किसी एक विचार को तार-तार करके उसमें से किसी वस्तु को ढूँढ निकालना चाहती हो। हम सभी स्वयं को भूलकर बैठी हुई नानी को देख रही थीं। नानी के शब्दों का अभाव हमारे कानों में खटकने लगा। रमा ने कहा, "हाँ नानी जी! तब क्या हुआ?"

नकटी नानी एक ठंडी आह भरकर बोली, "हुआ क्या बेटी! जो बात मैं तब नहीं समझ पाई थी, आज इतने वर्षों बाद भी उसे समझ सकी हूँ, कह नहीं सकती।"

नानी की यह बात सुनकर मेरा मन चंचल हो उठा। वह कौन-सी ऐसी बात हो सकती है, जो बाल्यकाल से लेकर आज इस प्रौढ़ावस्था में पहुंचकर भी नकटी नानी नहीं समझ सकी। मैंने पूछा, "ऐसी कौन-सी बात है? नानीजी! जिसे आप अपनी आयु का आधे से अधिक भाग

व्यतीत कर लेने पर भी नहीं समझ सकीं ?"

नानी ने फीकी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया, "नहीं समझ सकी बेटी ! ऐसा ही मेरा मन कहता है। मैं आज तक यह नहीं समझ पाई कि नारी का हृदय चाहता क्या है। यह कितने आश्चर्य की बात है, स्त्री आज तक नहीं समझ पाई कि उसका हृदय क्या चाहता है। अपने यौवनकाल में मैंने भी तुम सब की भाँति नारी के क्लेशों और व्यथाओं का अनुभव किया था। पुरुषों को ललकारा था, उनको कोसा था। पर मैं आज सोचती हूँ कि क्या पुरुषों के प्रति मेरी वह घृणा यथार्थ थी ? आज इसका यही उत्तर मिलता है कि वह भ्रान्ति ही थी, मेरा फूहड़पन था। उन बातों में कोई तथ्य नहीं था।

"तुम मेरी इन बातों को अभी समझ नहीं सकोगी। हो सकता है, मेरी जीवन-कथा सुनकर तुम स्वयं ही मेरी इस बात को मानने लगो। मैं यह सोचकर आज भी विस्मित हो रही हूँ कि नारी कल्याण का रोना रोने वाली, पुरुषों के अत्याचारों से नारी जाति की रक्षा करने वाली, सारी ही मेरी साथी स्त्रियाँ वही थीं, जिन्हें अपने पति से कोई शिकायत नहीं थी। जिनके पति सीधे-सादे भले मानस और अपनी स्त्रियों को हृदय से प्यार करने वाले थे।

"मुझे भी विधाता ने ऐसा ही पति दिया था, जो मेरी किसी भी बात का विरोध नहीं करता था। मेरी प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता समझता था, मुझे हृदय से प्रेम करता था। किन्तु मुझे उससे घृणा थी। यह बात भी नहीं कि वह सुन्दर नहीं था। देखने-सुनने में लाखों में एक था। परन्तु जैसे-ही-जैसे वह मेरे प्रेम में अपने आपको उत्सर्ग करता, वैसे-ही-वैसे मुझे उससे घृणा होती जाती थी। मैं उसे अपना पति न समझकर अपने हाथ का खिलौना मात्र समझा करती थी। दूसरी ओर मेक्स जो सर्वदा मुझे अपमानित किया करता था, ठुकरा दिया करता था, मुझे पीटा करता था, उसकी चरण-सेविका बनकर रहने को मेरा मन लालायित था। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेक्स ही पुरुष है, किसी स्त्री का

पति कहलाने योग्य है, मेरी रक्षा कर सकता है। अपने सुन्दर सुशील पति पर मुझे तनिक भी निष्ठा नहीं थी, तनिक भी विश्वास नहीं था।

"इसी उलझन को मैं आज तक सुलझा नहीं सकी कि नारी हृदय क्या चाहता है, पुरुष का प्रेम या उसका अत्याचार अथवा तिरस्कार ?

"मैं पहले कह चुकी हूँ कि जो नारी स्वतन्त्रता की हामी है, पुरुषों के अत्याचारों से नारी की रक्षा करना चाहती हैं, सम्भवतः उन्हें पता ही नहीं कि नारी उसी पुरुष को अधिक प्यार करती है जो पुरुष उस पर अंकुश रखता है। कोई पुरुष जितना भी अधिकार नारी पर रखता है, नारी उतनी ही उसकी बनकर रहना चाहती है। नारी उस पुरुष का आदर करती है जो उस पर कड़ाई से पेश आता है। इसीलिए नारियों के कल्याणार्थ बनी हुई संस्थाओं में ऐसी कोई भी नारी आज तक देखने में नहीं आई जो अपने पति का अत्याचार सह सकी हो या सह रही हो। संस्थाओं में उठ-बैठकर वही स्त्रियाँ स्वतन्त्रता की माँग करती हैं, जिन्हें पहले ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, जिनके पति डरपोक, बुद्धू या अपने पत्नी-प्रेम में बिककर दास बन चुके होते हैं। मेरा अनुभव कहता है कि नारी उस पुरुष को कभी नहीं प्यार करती, जो नारी के हाथों बिक चुका होता है या नारी की हर उचित तथा अनुचित आज्ञा का पालन करता है। नारी उसी पुरुष को प्यार करती है, जो उस पर शासन करता है। नारी केवल प्रेम ही नहीं चाहती, अपने पर किसी का अधिकार भी चाहती है। नारी उस पुरुष को भीरु समझती है जो उसके मोह में फँस-कर उसके संकेतों पर नाचता है।"

इतना कहकर नकटी नानी कुछ क्षणों के लिए चुप हो गई। पर हम सबको जैसे किसी ने मन्त्र-बल से पत्थर की मूर्तियाँ बना दिया हो। हम आश्चर्य से पागल हुई जा रही थीं कि यह कैसी विडम्बना है, नकटी नानी की नारी हृदय पर कैसी विवेचना है। मैं आज दावे के साथ कह सकती हूँ कि नानी की विवेचनाओं में यही सारतत्त्व निहित था। मैंने दूर न जाकर अपने घर की ओर दृष्टिपात किया। मेरी माँ को मेरे पिता

जितना ठुकराते थे, जितनी उसकी उपेक्षा करते थे, माँ का उतना ही प्यार उन पर उमड़ आता था। पर मेरी योरोपियन मम्मी से मेरे पिता प्यार करते थे, उसकी हर अच्छी-बुरी इच्छा एक दास की भाँति पूरी करते थे, पर मम्मी सर्वदा उन्हें अनादर देती, उनकी अवहेलना करती, उन्हें अपना सेवक समझकर उन पर शासन करती थीं।

नकटी नानी भी तो यही कह रही थी। इतना सुन्दर, सुशील और प्रेम करने वाला पति पाकर भी वह उसे प्यार नहीं कर सकी। उसकी निष्ठा अत्याचारी मेक्स में ही थी। मेरा विचार है, हम सब लड़कियाँ नानी की इसी बात को सोच रही थीं। वह सब भी मेरी भाँति यही पूछना चाहती थी कि क्या वास्तव में नारी प्यार नहीं चाहती? अपने पर किसी बलवान पुरुष का अधिकार चाहती है। आज भी यदि मैं संसार भर की सभी नारियों से सौगन्ध देकर पूछूँ कि अपनी छाती पर हाथ रखकर सत्य कहो तुम क्या चाहती हो? तुम्हें कौन-सा पुरुष प्रिय है? तो सभी नानी की बात ही दुहराएँगी।

: ६ :

नानी ने पुनः कहना प्रारम्भ किया, "मेक्स इंगलैंड चला गया। मैं मैट्रिक में अच्छे नम्बर लेकर पास हुई थी। फिर इण्टर के लिए मैं क्रिश्चियन कॉलिज में प्रविष्ट हो गई। मैंने मेक्स के साथ जीवन के कुछ क्षण बहुत ही आनन्द में गुजारे थे। यद्यपि तब तक हमारी प्रवृत्तियाँ यौन विषयक सम्बन्धों में परिपक्व नहीं हुई थीं। तिस पर भी मैं मेक्स के लिए अपने हृदय में मधुर भाव रखती थी। मेक्स की बहिन और उसका छोटा भाई जॉन मुझसे मिलते रहते थे। पर बिना मेक्स के मेरा मन-बहलाव अधूरा ही रहता था। मुझे हर समय मेक्स का अभाव खटकता था।

"मेक्स की छेड़-छाड़, ठोक-पीट या गुदगुदाना मुझे बहुत ही भला प्रतीत होता था। हम दोनों इकट्ठे घूमने, सैर करने, सिनेमा-तमाशे जाते थे।

मेक्स जी खोलकर मुझ पर खर्च करता था। मैं भी अपना आप उनसे छिपाकर नहीं रखती थी। जिस दिन मेक्स की जेब खाली रहती थी, उस दिन मेरे पर्स की सफाई हो जाती थी। पर मेक्स को खिला-पिलाकर मुझे प्रसन्नता ही होती थी। मैं अनजाने में ही उसे प्यार करने लगी थी। मेक्स मुझे अच्छे-अच्छे होटलों में ले जाता था, जहाँ देशी और विदेशी नृत्य होते, जिन्हें देख मैं उमंगों से भर जाती और मेक्स की ओर तृषित नेत्रों से देखती। मेक्स अपनी शरारत से बाज न आता। मैं मुस्कुरा देती, लजा जाती और ग्रीवा झुका लेती। पर मेरा मन फड़क उठता था, हृदय में गुदगुदी होने लगती थी।

"मेक्स के इंग्लैंड चले जाने के बाद मेरा यह सभी उल्लास छिन गया था, जिसके लिए मेरा हृदय तरसा करता और मैं अन्य युवकों को देखा करती।

"इन्टर में जाकर, मुझे एक बंगाली युवक मिला। रंग-रूप ऐसा जैसे सोने की मूर्ति गढ़ी हो। देखने-परखने में वह मेक्स से भी सुन्दर और सुशील था, पर वह मेक्स नहीं था। वह भले घर का होनहार युवक एक जज का सुपुत्र था। कॉलेज में उसकी सीट मेरी बगल में थी। मेरा मन उसकी ओर आकृष्ट हुआ। मैं मेक्स की कमी को उसके द्वारा पूरी करना चाहती थी, पर वह मेक्स न बन सका। मैं उसके बगल में बैठी-बैठी उसे चिढ़ाती। उत्तेजित करने का प्रयत्न करती। अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए चिकोटी तक काट देती, वह पीड़ा से तिलमिला उठता। परन्तु मधुर मुस्कुराहट के सिवाय और कुछ भी उससे मुझे प्राप्त न होता। उसकी मुस्कुराहट बहुत ही मनमोहक होती, पर मेरा मन उससे न भरता।

"वह मुझसे बोलता, बातें भी करता। मैं उसके साथ कभी-कभी घूमने भी निकल जाती, वह मुझ पर धन भी व्यय करता। पर होटलों या सिनेमा-घरों में न ले जाकर कभी गंगातट पर मुझे ले जाता, कभी ईडन गार्डन अथवा अपने घर। पर मेरा मन इन बातों से ऊब जाता। शिष्टता के नाते मैं उसका मन तो न दुखाती। पर वह मेरे मन की एक बात भी पूरी

न कर पाता। मैं समझती बंगाली है, कुलीन घर का है। मन चाहने पर भी वह ओछी प्रवृत्तियों से भय खाता हो, अपमानित होने से डरता हो, पर मैं किसी से कहने थोड़े ही जा रही थी।

"इसी प्रकार हमारे बी० ए० तक इकट्ठे रहने पर भी उस युवक ने मुझे स्पर्श तक नहीं किया। बी० ए० में मैंने हैमलेट और रोमियो-जूलियट के किस्से पढ़े। उनका रोमान्स देखकर मेरा मन भी किसी से रोमान्स लड़ाने को चाहने लगा। मै उस युवक के अतिरिक्त अन्य युवकों से भी मित्रता बढ़ाने लगी। मेरे मित्रों में कुछ तरुणियाँ भी थीं। हमारी टी-पार्टीज होती, हम पिकनिक या काकटेल पार्टीज भी करते। परन्तु मेवस मुझे भुलाए न भूलता। अन्य कई युवक मुझ से अपना प्रेम जताते, गा बजाकर मेरा मन भरमाते, कविताएँ कहकर मुझे अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते, मैं उनकी ओर झुकती। उनसे भी उन्ही वस्तुओं की अपेक्षा रखती, जो मुझे मेवस से प्राप्त थीं। परन्तु वे मेरे आगे-पीछे इस प्रकार घूमते जैसे पालतू कुत्ते हों।

"स्त्री मर जाने पर भी अपनी यौन इच्छाओं को स्वयं मुख से नहीं कह सकती। अपने हाव-भाव से प्रकट करती है। मैं भी ऐसा करती, पर मेरे उन प्रेमियों में किसी को इतना साहस न होता कि वह अपनी मन-मानी कर सके। हो सकता है कि मेरे मजिस्ट्रेट की पुत्री या एक बड़े रईस की पोती होने का उन्हें भय रहता हो। वह मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने में डरते हों। परन्तु मैं उनकी खुशामदों से खीझ उठती। मुझे वह पौरुष-विहीन ही दिखाई देते। मुझे उनसे घृणा होती थी। मैं अपने उन सब चाहने वालों को खिलौनों की भाँति नाच नचाती। मैं अपने प्रेमियों में से एक का किस्सा सुनाती हूँ।

"मेरी कक्षा में एक पंजाबी विद्यार्थी गुरुमुखसिंह पढ़ता था। वह लेफ्टिनेन्ट का लड़का था। आयु लगभग बाइस वर्ष की थी, पर देखने में तीस वर्ष का प्रतीत होता था। लम्बा चौड़ा डील-डौल, मुख पर दाढ़ी, सिर पर केशों का जूड़ा जिस पर पगड़ी बँधी रहती थी। वह

मेरी पीछे वाली सीट पर बैठता था। मैं जब कभी पीछे मुड़कर देखती तो वह अपनी फटी-फटी आँखों से मुझे घूरता और अपनी नोकीली मूछों पर ताव देने लग जाता। उसका इस प्रकार देखना मुझे बहुत भद्दा प्रतीत होता। मै उसकी सूरत से ही चिढ़ती थी।

"एक दिन छुट्टी होने पर मैं और मेरी सहपाठिनी शोभा कॉलिज से बाहर निकलीं। गुरुमुखसिंह हमारे पीछे हो लिया। मैंने तो इस बात को कोई महत्त्व न दिया, पर शोभा उसकी उपेक्षा न कर सकी। मेरे साथ चलती चलती उसने मुझे चिकोटी काटी। मै क्षुब्ध होकर उसे कुछ कहना ही चाह रही थी कि शोभा ने पीछे की ओर संकेत किया। मैंने गर्दन मोड़कर देखा। गुरुमुखसिंह हम पर दृष्टि गड़ाए चला आ रहा था। पर मैं समझ न सकी कि इसमें क्या विशेषता है। हो सकता है उसे भी उधर ही जाना हो, जिधर हम जा रही थीं।

"मैंने क्रुद्ध होकर शोभा को डाँटते हुए धीरे से कहा, 'इस में विस्मय की कौन-सी बात है? वह अपने मार्ग पर चल रहा है और हम अपने मार्ग पर।'

"शोभा ने तुरन्त उत्तर दिया, 'नहीं, नहीं तुम नहीं समझ रही हो सरला! आज वह अवश्य तुमसे बातें करना चाहता है।'

"मैंने चिढ़कर उत्तर दिया, 'मेरा और उसका क्या संबंध? यदि तुमसे मिलना चाहता हो तो अलग बात है।'

'नहीं, आज वह मुझसे नही मिलना चाहता। हाँ, आज से कुछ दिन पहले वह मेरा ही दीवाना था, मुझ पर डोरे डाला करता था। परन्तु अब उसकी दृष्टि में मैं फीकी पड़ गई हूँ।'

'यह सब बकवास है।'

"मेरे ऐसा कहने पर शोभा ने हार मानते हुए कहा, 'अच्छा यही सही, वह मेरे पीछे है। पर आज यदि तुम्हारा मन बहलाव हो जाय तो ठीक नहीं?'

'क्या मतलब?'

'मतलब यही कि आज इसी की जेब से खाया-पीया जाय। लेफ्टिनेंट का लड़का है, सौ-पचास रुपये तो जेब में रखता ही होगा?'

"मेरा अपना मन भी कुछ उदास था। बहुत दिनों से मैंबस का पता न मिलने पर मेरी तबियत सुस्त-सी हो रही थी। शोभा की बात सुनकर मुझमें स्फूर्ति सी आ गई और मैंने मुस्कुराकर हामी भर दी।

"हम दोनों चली जा रही थीं। गुरुमुख ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा था। वह परछाईं की भांति हमारे पीछे लगा हुआ था। चलते चलते मैंने जान-बूझकर अपने हाथ की कापिंग-पेंसिल गिरा दी। हम दो पग ही आगे बढ़ पाई थीं कि गुरुमुख ने हमें पुकारा। हम दोनों के मुड़कर खड़ा होते ही गुरुमुख ने लपककर पेंसिल उठाई और हमारे सामने आकर मुस्कुराता हुआ बोला, 'आपकी पेंसिल मिस सरला!'

"यही तो हम चाहती थीं। मैंने नेत्रों से मदिरा छलकाते हुए और अधरों से मुस्कुराते हुए उसे धन्यवाद दिया। वह हमारे साथ साथ चलने लगा। शोभा ने बात जमाने के उद्देश्य से उसका परिचय देते हुए कहा, 'आप श्री गुरुमुखसिंह जी हमारी कक्षा के ही विद्यार्थी है। आपके पिता लेफ्टिनेन्ट हैं।'

"मैंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया 'मेरे तो सहपाठी हैं, शोभा! मैं भला इन्हें नहीं जानूँगी? यह अलग बात है कि आज तक इन्होंने बात-चीत का समय नहीं दिया?'

"इतना कहकर मैंने गुरुमुखसिंह की ओर देखते हुए कहा, 'आपकी संगत पर मुझे प्रसन्नता हो रही है।'

"मेरे इतना कहने मात्र से ही उसके मुख पर रौनक आ गई। उसने झुककर मेरा अभिवादन करते हुए मुझसे हाथ मिलाया और हँसकर बोला, 'आपकी संगत पाकर मैं भी बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। आज सौभाग्य से ही बातचीत करने का सुअवसर मिला है।'

"शोभा और मैं मन ही मन मुस्कुरा रही थीं। चलते चलते शोभा ने कहा, 'मेरा तो प्यास के मारे दम निकला जा रहा है, सरला! निकट

में कहीं पानी का नल भी नहीं दिखाई देता।'

"गुरुमुखसिंह ने चट उत्तर दिया, 'आप चाहें तो किसी रेस्टोरेन्ट में चलकर लेमोनेड पिया जाय ?'

"उसने ये सब बातें मेरी ओर देखकर मेरी रुचि जानने के उद्देश्य से ही कही थीं। उत्तर में मैंने अपनी कोमलता प्रदर्शित करते हुए कहा, 'न बाबा, प्यासी रहने पर भी मैं किसी गन्दे रेस्टोरेन्ट में नहीं जाती। इनमें भी कोई भले व्यक्तियों के उठने बैठने की जगह है ?'

"शोभा ने मेरा अभिप्राय समझते हुए कहा, 'तब चलो धर्मतल्ला चला जावे। ब्रिस्टल होटल में चलकर लेमोनेड लेंगे।'

'वहाँ पहुँचने तक तो मेरा दम ही निकल जायगा। इतनी दूर मुझ से पैदल चला जायगा ?'

"मेरी बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि गुरुमुखसिंह ने थोड़ी दूर खड़ी एक टैक्सी को आवाज दे दी। मैं और शोभा एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा उठीं। गुरुमुखसिंह ने आगे बढ़कर स्वयं दरवाजा खोलते हुए नाटकीय ढंग से झुककर मुझे टैक्सी में बैठने का संकेत किया। मैं और मेरे साथ शोभा भी पिछली सीट पर बैठ गई। गुरुमुख सिंह भी हमारे साथ पिछली सीट पर बैठना चाहता था। परन्तु शोभा ने उसे पग बढ़ाते देखकर कहा, 'क्षमा करें; मिस्टर गुरुमुखसिंह ! सीट बहुत छोटी है। आप ड्राइवर के साथ बैठने का कष्ट करें।'

"गुरुमुखसिंह के मुख पर एक आवरण-सा आ गया। उसके हृदय पर चोट तो अवश्य लगी, परन्तु तुरन्त ही बात को हलका करने के उद्देश्य से वह बोला, 'ओह सॉरी, अनजाने में मैं आपको कष्ट देने जा रहा था।'

"इतना कहकर वह अगली सीट पर ड्राइवर के साथ जा बैठा। टैक्सी कुछ ही मिनटों में ब्रिस्टल होटल जा पहुँची। टैक्सी के रुकते ही गुरुमुखसिंह ने तत्परता से उतरकर दरवाजा खोलकर हमें उतारा और टैक्सी का भाड़ा देकर हमारे साथ हो लिया। हम होटल में एक ओर बने कैबिन में बैठ गए। गुरुमुखसिंह हमारे साथ था। हम तीनों आमने

सामने सीटों पर बैठे थे। बेअरा के आने पर, गुरुमुख ने उसे आइसक्रीम लाने का आर्डर देकर विदा किया।

"शोभा ने बात चलाई। वह बोली, 'तुम्हारी ही बात सत्य है सरला! वास्तव में ही पंजाबी पहरावा बहुत सुन्दर और आकर्षक होता है।'

"प्रथम तो शोभा की इस बात का तात्पर्य मैं समझ न सकी पर किसी-किसी समय मेरी बुद्धि चमत्कार पूर्ण कार्य कर जाती है। मैं शीघ्र ही समझ गई कि शोभा मेरे मुख से गुरुमुख की प्रशंसा करवाना चाहती थी।

"मैंने बात बनाते हुए कहा, 'हाँ, शोभा! पंजाबी लिबास इसीलिए अच्छा है कि चुस्त और स्वतंत्र होता है। भागते-दौड़ते समय धोती साड़ी इत्यादि की भाँति अड़चन नहीं पैदा करता। परन्तु यह बात भी सत्य है कि पहरावा चाहे कोई भी क्यों न हो, सुन्दर और सुडौल शरीर पर ही शोभा पाता है। मिस्टर गुरुमुख चाहे कोई भी लिबास क्यों न पहन लें, सुन्दर शरीर पर ही सब कुछ सुन्दर लगता है।'

"मेरी बात सुनकर गुरुमुख का हृदय खिल उठा। नारी यदि किसी पुरुष के शरीर की प्रशंसा करे तो वह पुरुष प्रसन्नता से झूमने क्यों न लगे। शोभा कनखियों से मुस्कुराती हुई उसकी ओर देख रही थी। गुरुमुख ने प्रफुल्लित मुख से उत्तर दिया, 'मेरा शरीर कपड़ों में तो बहुत कम जँचता है। एक सांस में दो-दो सौ बैठक लगा जाता हूँ।' फिर अपनी आँखों में मुस्कुराता हुआ मुझसे बोला, 'पर आप भी तो कुछ कम नहीं हैं मिस सरला!'

"उसके मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर एक बार तो मैं भी लजा गई। पर तुरन्त ही मैंने अपने आपको संभाल लिया। हम उसे उल्लू बनाने का संकल्प करके चली थीं। स्वयं उल्लू बनने के लिए नहीं। शोभा ने बात की, 'तुम भाग्यवान हो सरला! मिस्टर गुरुमुख जैसे सज्जन और सुशिक्षित व्यक्ति तुम्हारी प्रशंसा कर रहे हैं।'

"शोभा की बात सुनकर गुरुमुख मुस्कुराने लगा। मैंने तिरछी दृष्टि

से देखकर लज्जा दर्शाते हुए कहा, 'सुन्दर व्यक्ति ही सबको सुन्दर समझता है। मै तो इनके सामने कुछ भी नहीं हूं।'

"इतना कहकर मैंने पुनः गुरुमुख की ओर कटाक्ष फेंकते हुए ग्रीवा झुका ली।

"मैं तुम्हें सत्य कह रही हूं मोहिनी! उस मूर्ख ने न आव देखा न ताव, चट से मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर सहलाना आरम्भ कर दिया। एक बार तो मन में आया कि दूसरे हाथ से उसे ऐसा थप्पड़ रसीद करूं कि जन्म भर न भूल सके। पर किसी मूर्ख से मन बहलाव करने के लिए स्वयं भी मूर्ख बनना पड़ता है। यही सोचकर मैं चुप रही। गुरुमुखसिंह मेरा हाथ सहलाते और दबाते हुए कहने लगा, 'सच मानना सरला! तुम्हारे बिना मैं पागल-सा हुआ रहता हूँ। क्लास-रूम में बैठकर भी तुम्हारी पीठ ही देखा करता हूँ।'

"उसकी यह लट्ठमार भाषा मुझे बहुत अटपटी प्रतीत हुई। मैं समझ गई कि यह भी उन दिल फेंक नवयुवकों में से एक है जो स्त्री की एक मुस्कान पर अपना सर्वस्व भूलकर आग में कूदने को तैयार हो जाते हैं।

"मैंने हाथ छुड़ाते हुए कहा, 'आप बहुत अधीर होते जा रहे हैं मिस्टर गुरुमुख! ऐसी बातें भला सार्वजनिक स्थानों पर कही-सुनी जाती हैं?'

"गुरुमुख कुछ लज्जित हुआ। वह उत्तर देना चाहता था पर इतने में बेअरा आ गया और आइसक्रीम से भरे कप हमारे सामने रख दिये गए। शोभा ने आइसक्रीम का एक चम्मच मुख में डालते हुए बेअरा से पूछा, 'और क्या-क्या ताजा बना है?'

"बेअरा ने बीसों वस्तुओं के नाम ले दिए। शोभा ने अपनी रुचि अनुसार बेअरा को आर्डर दिया और मेरी ओर आंख से संकेत करके मुस्कुरा दी। शोभा की बात समझकर मैंने भी कुछ खाद्य-वस्तुओं को ले आने का आर्डर दे दिया।

"आइसक्रीम खाते-खाते शोभा ने कहा, 'मेरे एक सहपाठी सरदारजी थे जो आज भी भुलाए नहीं भूलते। हम सब लड़कियाँ उन पर जान देती

थीं। उनके कपोलों पर लाली ऐसी शोभा देती थी कि चूमने को मन हो आता था। हल्का-सा पाउडर का प्रयोग भी किया करते थे। होठों पर हल्की-हल्की लिपस्टिक ऐसी खूबी से लगाते थे कि गुलाब की पंखुड़ियाँ प्रतीत होती थीं। नेत्र तो वैसे ही काने थे, पर कभी जब वह नेत्रों में काजल के डोरे खींच लेते तो हम सबका मन हर लेते।'

"शोभा ये सब बातें बहुत गम्भीर मुद्रा में कह रही थी। गुरुमुखसिंह एकाग्रचित्त शोभा की बातों को सुन रहा था। मैंने और भी उकसाते हुए कहा, 'नारी को भी तो पुरुष का सुन्दर रूप-रंग पसन्द होता है। जिस प्रकार नारी के रूप-रंग पर पुरुष पागल होता है, उसी प्रकार नारी भी पुरुष की सुन्दरता की दीवानी है।'

"बातों ही बातों में मैंने क्या कुछ खा लिया यह कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। पर जब बेअरा बिल लेकर आया, मैंने देखा कि तीस रुपये से ऊपर ही गुरुमुखसिंह का खर्च हो गया। खा-पीकर होटल से बाहर निकलने पर गुरुमुख ने किसी पिक्चर पर चलने का आग्रह किया। पर जितना हमने उसको लूटा था, उससे अधिक लूटने का मेरा साहस न हुआ। जितना हम कर चुकी थीं उतना पर्याप्त था। घर शीघ्र पहुँचने का बहाना बनाकर और किसी अन्य दिन उसके साथ सिनेमा जाने का वचन देकर हम दोनों उससे अलग हुई।

"दूसरे दिन कॉलिज में जाकर हमने देखा। गुरुमुखसिंह औरतों की भाँति मेक-अप किये हुए था। आँखों में काजल, गालों पर लाली, होठों पर हल्का-हल्का लिपस्टिक सभी कुछ वह था जो हम औरतें किया करती थीं। गुरुमुखसिंह को जनखों के से रूप-रंग में देखकर मेरा तो हँसी के मारे दम निकलने लगा। पर शोभा बहुत कड़े मन की थी। वह तनिक भी न हँसी बल्कि गुरुमुखसिंह के पास जाकर उसके रंग-रूप की प्रशंसा करने लगी।

"गुरुमुखसिंह के क्लास-रूम में पहुँचने पर तो एक प्रकार का हंगामा-सा मच उठा। अभी तक कोई प्रोफेसर नहीं आया था। शोभा के उकसाने

पर कुछ मनचली लड़कियों ने उसे घेर लिया और जी भर कर उसका मजाक उड़ाया। युवकगण अलग उसकी चुटकियां ले रहे थे। एक ने कहा, 'गुरुमुखसिंह किसी फिल्म कम्पनी में हिरोइन का पार्ट कर रहा है।' दूसरे ने चुटकी ली, 'हिरोइन के मुख पर दाढ़ी-मूंछ नहीं हो सकती। उसने अवश्य ही जनखे का पार्ट किया होगा।' पर गुरुमुखसिंह सबकी सुनता और मुस्कुरा कर चुप रह जाता। उसकी पूर्ण चेतना मेरी ओर केन्द्रित थी। परन्तु मुझे उसके ऊपर घृणा-सी होने लगी थी। उससे सम्पर्क बढ़ाना तो दूर की बात, मैं उसकी परछांई से भी दूर भागने लगी थी।"

इतना कहकर नकटी नानी कुछ समय के लिए रुक गई। हम सब लड़कियाँ हँस रही थीं। हसते हुए शीला ने कहा, "नानीजी! आपने भी विद्यार्थी-जीवन में बहुत खेल खेले हे। हाँ, आगे कहिए क्या हुआ।"

"होता क्या बेटी! दो दिन तक मैंने उसकी उपेक्षा की। समझदार होता तो समझ जाता, पर वह तो कोरा मूर्ख निकला। हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गया। उन दिनों मैं यदि सिर मुंडवा देने के लिए भी कहती तो वह कभी इनकार न करता। पर मैं स्वयं उससे उकता चुकी थी। अन्त में मैंने प्रिन्सिपल से शिकायत कर दी और प्रिन्सिपल ने उसे कालेज से अलग कर दिया।

"इसी से मै समझती हूँ कि जो पुरुष नारी के प्रेम में अन्धे होकर नारी की दासता अपना लेते हैं, नारी ऐसे पुरुषों को अपने हाथ का खिलौना मात्र ही समझती है। भले ही वह ऊपर-ऊपर से पुरुष को प्रेम जताती हो पर मन-ही-मन मुस्कुराती और उपेक्षा की दृष्टि से देखती है।"

: ७ :

कुछ क्षण चुप रहकर नानी ने पुनः कहना आरम्भ किया, "इसी प्रकार मेरा जीवन चलता आ रहा था। मै पढ़ाई मे बहुत तेज थी। मैंने पहली कक्षा से लेकर एम० ए० तक उच्च श्रेणी में पास किया था। सेक्स

की चिट्ठी बहुत विलम्ब से मुझे मिलने लगी थी। जॉन भी अब युवा हो चुका था। आयु में मुझसे छोटा होने पर भी वह बहुत मजबूत और सुडौल शरीर का था। अब वह बालक नहीं रहा था। हैलन बी० ए० की परीक्षा देकर किसी प्राइवेट ऑफिस में सर्विस करने लगी थी। जॉन अपने भरे-पूरे मजबूत शरीर को लेकर सिनेमा लाइन में जा घुसा। देखने में वह कुरूप नहीं था। इसी कारण मार-धाड़ वाले चलचित्रों में उसे हीरो का रोल दिया जाता। उसे अच्छी आय हो जाती थी। मैं यदि किसी दिन खाली होती तो जॉन मुझे भी अपने साथ स्टूडियो ले जाता।

"वहाँ का जीवन इतना कृत्रिम और ईर्ष्या से भरा होता कि किसी भले व्यक्ति को वहाँ पर साँस लेना दूभर हो जाता। किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता था। सब के सब बातों से धरती और आकाश को एक करते, अपने मुख से ही अपनी प्रशंसाओं का पुल बाँधने और एक दूसरे से खार खाते थे। सिनेमा में काम करने वाली महिलाओं का जीवन नारकीय जीवन से कम नहीं था। वहाँ जाकर उनके रंग-रूप की वास्तविकता का पता चलता, उनकी राम कहानियाँ सुनने को मिलतीं। स्क्रीन पर स्वर्ग की उर्वशी दिखने वाली लड़कियाँ दिन के उजाले में चुड़ैलों से भी निकृष्ट दिखाई देती। जान जिस भी व्यक्ति से मेरा परिचय करवाता, वही पहले दर्जे का लम्पट और कामुक प्रतीत होता। मालिक से लेकर मजदूर तक सब एक ही रंग में रंगे हुए थे।

"एक दिन एक कहानी लेखक से मैंने पूछा, 'लेखक की तो सात्विक एवं स्वतंत्र बुद्धि होती है, आप कैसे इस वातावरण में रहते हैं ?

"मेरी इस बात के उत्तर में उस कथाकार ने कहा था, 'देवीजी ! जैसे मल का कीट मल में ही रहता है।'

"मैंने तब से जान के साथ स्टूडियो जाना छोड़ दिया।

"मेरी आयु बीस को पार कर चुकी थी। मेरे पिता मेरे लिए अच्छे घर और सुन्दर वर की खोज करने लगे। भाग्य से कहूँ या दुर्भाग्य से मेरा विवाह उसी युवक से होना निश्चित हो गया जो क्लास में मेरे साथ

...में बैठा करता था। मैं पहले कह चुकी हूँ; वह सीधा-सादा जज का सुपुत्र मेरे अनुरूप नहीं था। मेरी प्रवृत्तियाँ जितनी चंचल थीं, उतना ही वह गंभीर था। वह मन का कोमल और भावुक था। वह प्रेम करना जानता था। प्रेम के बदले में प्रेम पाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। मैं स्वभाव में उसे बहुत तंग किया करती थी, जिनका उत्तर वह मौन व मधुर मुस्कुराहट से दिया करता था। विवाह से पहले मेरे शरीर को स्पर्श तक भी उसने नहीं किया था। वह हृदय हारना जानता था। उसके भाग्य में सर्वदा हार ही लिखी थी, जीत नहीं। वह त्यागी था, महान था, पूजने योग्य था; पर मेरा पति होने योग्य नहीं।"

इतना कहते-कहते नकटी के नेत्र भर आए। उसने मन-ही-मन सिर झुकाकर अपने पति को प्रणाम किया होगा, मैं ऐसा अनुभव कर रही थी। क्योंकि उस समय नकटी नानी के मुंह पर सात्विकता झलक रही थी। मुझसे रहा न गया। मैंने पूछा, "नानी ! जिससे तुमने कभी प्रेम नहीं किया, जिस पर कभी तुम्हारी श्रद्धा नहीं हुई, जिस पर कभी तुमने विश्वास नहीं किया; उसीके लिए आज तुम्हारे नेत्र भर आए हैं ?"

नानी ने एक आह भरते हुए कहा, "हो सकता है तुम्हारा ही कहना सत्य हो बेटी ! परन्तु जो बात मैंने कल तक नहीं समझी थी वह आज मेरे सामने प्रत्यक्ष हो रही है। नारी का यौवन काल ही उन बातों का भूखा है; जो बातें मैंने सेक्स में पाई थीं या अपने पति से चाहती थी। अन्तःकरण तो नारी का भी सत्त्व से बना है।

"उन दिनों मैं युवा थी। मेरे शरीर में रक्त सरसराता था। मैं किसी नर के हाथों से मसला जाना चाहती थी। उन दिनों मुझमें तमोगुण प्रधान था, पर आज मेरे रक्त में वह तेजी नहीं रही। वह जोश भी मुझमें नहीं रहा जो उन दिनों था। रक्त की गर्मी शान्त हो जाने के साथ साथ मेरा मन भी शान्त हो चुका है। आज मुझे ऐसी इच्छा नहीं होती कि मुझे कोई बाहुपाश में जकड़कर मसल डाले। आज मुझे किसी ठोस आधार की आवश्यकता है, शान्ति की आवश्यकता है, वास्तविक प्रेम की

आवश्यकता है। जो उन दिनों मेरे पति देना चाहते थे। पर वह अमूल्य-निधि मुझसे छिन चुकी है। बल्कि मैंने स्वयं ही उसे ठुकराया था। मैं स्वयं ही कंगाल हो चुकी हूँ। इसीलिए आज उस सात्विक प्रेम का अभाव मुझे खटक रहा है। मैं आज उसके लिए छिप-छिपकर रोती हूँ और पछताती भी हूँ।"

हम सब लड़कियाँ नकटी नानी के दुःख से दुःखी तो अवश्य हुई; पर नकटी की बातें मुझे कुछ अटपटी-सी मालूम हुई। जिनमें परस्पर समानता नहीं थी। मैं असमंजस में पड गई। कुछ भी समझ न सकी कि नारी वास्तव में चाहती क्या है? मैंने नानी को बीच ही में टोकना उचित न समझा और मन में निश्चय कर लिया कि अंत में नानी से अपनी शंकाओं का समाधान अवश्य कराऊँगी।

नकटी कह रही थी, "मेक्स का स्थान जॉन ने ले लिया। वह मेरे चारों ओर मँडराने लगा। मुझे अच्छे-अच्छे होटलों में ले जाता, मेरे साथ डान्स करता, स्वयं खाता और पीता, उसने मुझे भी खाना और पीना सिखा दिया। मेरे विवाह में कुछ ही दिन शेष थे। मैं जॉन के साथ बोटैनिकल गार्डन में घूमने गई हुई थी। सायंकाल होने वाला था। हम गार्डन की छोटी-सी झील के किनारे बैठे हुए थे। सायंकाल की चाय का सारा सामान हमारे साथ था। थरमस में गरमागरम चाय तैयार थी। पेस्ट्री का बाक्स जॉन के हाथ में था। जॉन ने उसे खोला और कुछ पेस्ट्रीज़ निकालकर मेरे सामने रख दीं। फिर थरमास खोलकर उसी के ढकने में जॉन ने मुझे चाय दी। मैं पेस्ट्री का एक पीस उठाकर मुख में डालने जा रही थी कि जॉन ने मुझे रोकते हुए कहा, 'ठहरो, डियर!'

"मेरे हाथ रुक गए। मैंने विस्मय से पूछा, 'क्यों? क्या बात है?'

'आज मैं एक विशेष प्रकार की सुगन्ध लाया हूँ, जो पेस्ट्री पर डाल कर खाई जाती है।' यह कहकर उसने एक छोटी-सी शीशी अपने जेब में से निकाली, जिसमें ब्राउन रंग का एक तरल पदार्थ था। जॉन ने

उन पेस्ट्रीज़ पर दो-दो बूंद टपका दिये। मैंने एक पीस उठाकर मुँह में डाला। उसमें से स्प्रिट की गंध आ रही थी।

"मैंने झल्लाकर कहा, 'तुम भी पूरे झक्की हो जॉन! जान-बूझकर पेस्ट्री का टेस्ट बिगाड़ दिया।'

"जॉन ने मेरी बात का कुछ भी उत्तर न दिया। केवल मेरी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। उसे मुस्कुराता देखकर मुझे हँसी आ गई, पर मैं अपनी इस अकारण हँसी का कुछ भी अर्थ न लगा सकी। चारों ओर का वातावरण मुझे बहुत प्रिय लग रहा था। मेरा मन कमल की भाँति खिलता जा रहा था। ऐसा नहीं कि मुझे किसी प्रकार का नशा हो गया हो। मैं अपनी पूरी चेतना में थी। यहां तक कि घड़ी की सुई देखकर समय बता सकती थी, पर मेरे शरीर की नसें तनी जा रही थीं। मेरा अंग-अंग प्रफुल्लित हो रहा था। बाल्यकाल में जिस प्रकार शरीर में स्फूर्ति आ जाने पर बालक स्वयं ही नाचने लगता है, ऐसी ही दशा मेरी थी। मेरा मन भी उठकर नाचने को चाहने लगा। मेरे निकट बैठा जॉन ग्रीवा झुकाये किसी गहरे सोच में डूबा हुआ था। मैं समीप ही हरी-हरी घास पर लेट गई। मैंने नेत्र बन्द कर लिए। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे मैं धरती पर नहीं हूँ, बल्कि आकाश में उड़ रही हूँ। मैंने लेटे-ही-लेटे एक अँगड़ाई लेकर अपने शरीर को तोड़ा। मेरे उरोज तन गये थे। उनमें कड़ापन आ गया था। एक प्रकार की मधुर गुदगुदी-सी उनमें होने लगी। मैं उठकर पुनः बैठ गई। जॉन मेरी ओर देख रहा था। उसे अपनी ओर देखते देख मुझे हँसी आ गई। परन्तु यह अकारण हँसी मेरे हृदय में मुझे खटकने लगी, पर हँसी थी कि रुकना ही नहीं चाहती थी। एक प्रकार का उन्माद-सा मुझ पर सवार हो चुका था। किन्तु थी मैं होश में ही। जॉन मेरी यह दशा देखकर मुस्कुरा रहा था। मैंने पुनः उसकी ओर देखा और कुछ लजा भी गई और अपने लाल हुए मुख को दोनों हाथों से छिपाकर बैठी रही। मैं उँगलियों के छेदों में से जॉन को देखने लगी। उस समय मैं बहुत चंचल और उतावली हो रही

थी। मैं पुनः खिलखिलाकर हंसती हुई घास पर लेट गई।

"जान सरक कर मेरे पास आ गया। उसने उँगली से मेरी पसली को गुदगुदाया। मैं चौंक उठी, जैसे मुझे बिजली का झोंका-सा लगा हो। मैं उठी और जॉन की जांघों पर जा गिरी। उसकी ओर देखने की शक्ति मुझमें नहीं थी। जॉन ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए मधुरता से कहा, 'सरला !'

"मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई दूर से मुझे पुकार रहा है। मेरा रक्त मस्तक की ओर चढ़ आया और मैं अर्द्ध-चेतन सी हो गई।"

नकटी की यह कहानी सुनकर हम सब बुत-सी बनी बैठी थीं। युवावस्था में काम कथाओं से बढ़कर सुख देने वाला मन लुभावना विषय और कोई नहीं है। मैंने भर्तृहरि शतक में पढ़ा है। स्वयं योगिराज भर्तृहरि ने लिखा है कि खुजली से भरा कुत्ता जिसके घावों में पीव हो और कीट पड़े हों, जिसकी पसलियाँ सूखकर अन्दर धँस चुकी हों, वह भी एक कुतिया के पीछे अपने सारे दुःख भूलकर लग जाता है। अच्छा खाने पीने वाला व्यक्ति जिसकी नसों में रक्त खौल रहा हो, जिसके शरीर में बल हो, वह यदि किसी तरुणी के मोहपाश में फंस जाता है तो इसमें आश्चर्य किस बात का।

ऐसा ही रस इस यौवनावस्था में है। यही प्रकृति की उत्कृष्ट शक्ति है। हम तरुणियों के हृदयों में यदि नकटी की उपर्युक्त कथा सुनकर गुदगुदी होने लगी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। नकटी का मुख लज्जावछिन्न हो चुका था। चमत्कार की बात तो यह थी कि मन में हमारे चाहे कुछ भी रहा हो परन्तु नानी पर हम उपेक्षित दृष्टि डाल रही थीं। एक दूसरे की ओर देखकर नाक मुँह सिकोड़ कर नानी की उपरोक्त कथा में रुचि प्रकट कर रही थीं। पर अन्तर सबके मधुर भावों से भरे थे। हम सभी वह बात सुनना चाहती थीं जो नारि कट मरने पर भी अपने मुख से नारी नहीं कहती। अपना छोटापन या अपना पतन भला कौन कह सकता है !

: ८ :

नकटी ग्रीवा झुकाए बैठी थी। शीला ने अपने अन्तर को छिपाकर बाह्य भद्रता दर्शाते हुए कहा, "बहुत रंगरलियां मना चुकी हो नानी !"

नकटी ने स्वाभाविक उत्तर दिया, "हां बेटी ! मेरे इन कुकर्मों का फल भी तुम देख रही हो। परन्तु अभी तो मेरे जीवन की यह पहली घटना है। यदि तुम लोग सुनना नहीं चाहती तो मुझे भी कहने में कुछ सुख नहीं मिल रहा। मैं जानती थी कि तुम लोग मुझसे घृणा करने लगोगी, मेरी हंसी उडाओगी, मेरा अपमान करोगी। आवेश में आकर तुम मुझ पर थूक भी सकती हो। इन परिणामों के लिए तैयार होकर ही मैंने कुछ कहने का साहस किया था। तुम सबकी मेरे प्रति घृणा और तिर-स्कार मेरे पापों के बोझ को हल्का करेगा। यही मेरा प्रायश्चित होगा।"

नानी की इन बातों से हम सबकी दिखावे मात्र की घृणा भी लुप्त हो गई। हम में से ऐसी कोई भी न थी जो नानी की कहानी न सुनना चाहती हो। लता ने कहा, "नहीं नानी जी ! आप अपने अच्छे-बुरे सभी अनुभवों को कहें। हमें इससे शिक्षा मिलेगी।"

मैंने भी कहा, "हाँ नानी ! आप कहती जाएं। आपकी जीवन कथा हमारे मार्ग को साफ कर देगी।"

नानी ने मेरे मुख की ओर देखा और कहने लगी, "दो घंटे बाद हम फिर लौट आए। मेरा मन तृप्त था, शरीर हलका प्रतीत होता था। पर ऐसा कुछ भान अवश्य होता था जैसा कि आज मैंने अपनी कोई अमूल्य वस्तु खो दी हो। धर्मतल्ला स्ट्रीट और चौरंगी रोड पर अपना यौवन बेचती हुई एंग्लोइंडियन लड़कियां आज भी अपने आपको लीप पोतकर इधर-उधर घूम फिर कर खरीददारों को खोज रही थीं। कल तक जिन्हें देखकर घृणा से मैं थूक दिया करती थी, पर आज आंख उठाकर उनकी ओर देखने तक का साहस मुझ में नहीं था। मैं मन-ही-मन लुटी-सी, पिटी-सी अपने आपको अनुभव कर रही थी। ग्रीवा झुकाए, जॉन के साथ कार में बैठी हुई अपने घर पहुंच गई। आज नौकरों तक की ओर

देखने का साहस मुझ में नहीं रहा था। मैं सब की दृष्टि से बचना चाहती थी जैसे मैंने किसी का कुछ चुरा लिया हो।

"मैं चुपके से अपने सोने वाले कमरे में चली गई और पलंग पर लेटकर अतीत क्षणों के विश्लेषण में लग गई। वह कुछ क्षणों की आनन्दानुभूति मुझे भलाये न भूलती थी। कितना सुखकर था वह समय ? मानो सारे संसार की शान्ति मुझमें समाई हुई थी। जैसे सम्पूर्ण भव-बाधाओं से दूर कुछ क्षण अकेली रह चुकी होऊँ। पर अन्तर के किसी कोने से एक प्रकार की अज्ञात पीड़ा-सी कभी-कभी उठकर मेरे सारे उल्लास पर पानी फेर देती थी। हृदय-पटल पर अंकित सुन्दर चित्रों पर स्याही-सी पोत देती थी। मैंने उस दिन खाना भी नहीं खाया। माँ के कहने पर भी न उठी। पिताजी के कहने पर बहाना बना दिया, अपने अस्वस्थ होने का कुछ रोना रो दिया।

"मेरे विवाह के केवल चार दिन शेष थे। दूसरे दिन प्रातः ही मेरे दादाजी और कई अन्य रिश्ते-नातेदार आ गए। घर में गहमागहम मच गई। बहुत-सी तैयारियाँ तो पहले ही हो चुकी थीं। दादाजी के आने पर और जोर-शोर से सब काम होने लगे। बँगला सजाया जाने लगा। हलवाई लगाये गए। कुर्सी, मेज, कनात, तम्बू सभी कुछ आए और यथास्थान लग गए। मैं हर समय अपने रिश्ते की बहिनों, भौजाइयों और भतीजियों एवं सहेलियों से घिरी रहती। पर बार-बार जॉन का ध्यान आता। आज दो दिन से उससे मिल नहीं सकी थी। घरवाले मुझे बँगले से बाहर नहीं निकलने देते थे। सौ प्रकार के रीति-रिवाज मुझे घेरे हुए थे। अन्त में विवाह का दिन आया। बारात सायंकाल सात बजे आने वाली थी। हमारे घर में एक क्रिश्चियन माली था। वह मुझे अकेली देख मेरे पास आया और जॉन का एक पत्र मुझे देकर चला गया। मैं पत्र लेकर बाथरूम में चली गई। मुझे भय था कि इस पत्र को कोई अन्य न देख ले। मैंने पत्र खोलकर पढ़ा जिसमें जॉन ने अपनी मुहब्बत के राग अलापे थे। उसने लिखा था, 'कि मेरे विवाहित होकर अन्यत्र चले जाने पर

उसका जीवन बरबाद हो जाएगा। वह पागल हो जाएगा। उसकी रातें सूनी हो जाएँगी। वह मुझे सच्चे हृदय से प्रेम करता है। मेरे लिए प्राण तक दे सकता है।' ऐसा ही कुछ उसने अपने पत्र में लिखा था।

"आज भले ही मैं उसे बकवास कह दूँ, मोहिनी बेटी! पर मैं सत्य कहती हूँ, उस समय जॉन के पत्र ने मेरे हृदय में हलचल मचा दी थी। मेरे मन को आलोड़ित कर दिया था। मेरी मधुर भावनाओं के सारे तार झंकृत हो उठे थे। जॉन ने यह भी लिखा था कि रात के अन्धकार में विवाह होने से पहले ही मुझे भगाकर ले जाएगा। उसकी यह अन्तिम पंक्ति पढ़कर मेरा हृदय काँप उठा था। मैं अधम थी। अधम से भी अधम अति अधम नारी थी। पर थी तो भारतीय ही, तिस पर हिन्दू बंगाली। जिस देश की धरती पर सीता, सावित्री और दमयन्ती अथवा अनसूया जैसी महान सती नारियाँ हो चुकी हैं, मैं भी तो उसी धरती माता की गोदी में पली हूँ। मुझसे यह कुकर्म नहीं हो सकेगा। मुझे माँ का ध्यान हो आया। पिता और दादा के कुल और मर्यादा का भी ध्यान हो आया। होने वाले पति का भी विचार आया। मैं भयातुर हो गई। कहीं सचमुच ही जॉन ऐसे समय में कुछ गड़बड़ी न कर दे जिसके कारण मुझे मुख छिपाकर कहीं बैठ सकना भी प्राप्त न हो।

"बारात आने में कुछ ही समय शेष था। मैं अपने कमरे में सहेलियों से घिरी बैठी थी। अपनी ओर के मेहमान आ चुके थे। पड़ोसी होने के नाते से जॉन और हैलन को भी निमंत्रित किया गया था। वे भी आए हुए थे। हैलन एक बार आकर मुझसे मिल गई थी। पर जॉन को अन्य लड़कियों के सामने मुझ तक पहुँचने का साहस न हुआ। मेरे कमरे में मेरी बेनी बाँधी जा रही थी। वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया जा रहा था। दूर से बाजों की आवाज आने लगी। मेरे घर में हलचल मच गई। इधर-उधर भाग दौड़ होने लगी। बारात आ रही थी। मेरी सखी सहेलियाँ मुझे अकेली छोड़कर भाग खड़ी हुईं। मैं भी उत्सुकता से उठी बारात देखने के लिए अपने कमरे की खिड़की में से झाँकने लगी। बारात

वैसी ही थी जैसी बड़े लोगों की हुआ करती है। बाजे, गाजे, गैरा फुल-वारी इत्यादि।

"अनायास ही मेरी दृष्टि जॉन पर पड़ी जो खिड़की के नीचे खड़ा मुझे घूर रहा था। मैं मुस्कुरा दी और लजा भी गई। घर के सब प्राणी बारात का स्वागत करने के लिए बाहर जा चुके थे। जॉन ने मुझे मिलने का संकेत किया पर मैंने भयातुर दृष्टि से उसे देखकर ऐसा करने को मना किया। मैं इसी बात से डर रही थी कि यदि मुझे जॉन से आँख लड़ाते कोई देख ले तो क्या हो जाय। मैं घबराकर खिड़की से हट गई मेरा मन अपने दूल्हा को देखने के लिए छटपटा रहा था। परन्तु जॉन के डर से मैं अपनी इच्छा की पूर्ति न कर सकी।

"बारात का भव्य स्वागत हुआ। बाराती खाने पीने में जुट गए। लॉन में ही एक ओर लगन मंडप सजाया गया था। विवाह का समय बारह बजे बाद का था। अन्तःपुर में महिलाएँ मंगल-गान कर रही थीं। चारों ओर गहमागहम मची हुई थी। मेरा बँगला भी भली भाँति सुसज्जित था। उसका बनाव श्रृंगार मुझसे कम नहीं किया गया था। मुझे देखने से पहले, बंगले को देखकर ही मेरे ससुराले वालों की आँखें चौंधिया गई थीं। दादाजी ने जी खोल कर मेरा विवाह रचाया था। मैं इकलौती ही तो उनकी पुत्री थी। वह क्यों न अपने मन की इच्छाएं पूरी करते। लग्न बेला आई। मुझे मेरी माँ और कुछ सहेलियों ने पकड़-धकड़ कर लग्न मंडप में पहुँचा दिया। मैं समझती हूँ उस समय मैं ही जैसे सारे विश्व की साम्राज्ञी हूँ। इसी प्रकार मुझे आदर और सुरक्षा से ले जाया जा रहा था। जैसे माली मोतिए की कलियों को अपनी अंजुली में भरकर अपने देवता के सामने ले जाता है।

"मुझे ले जाकर मेरे पति के दाहिनी ओर आसन पर बैठा दिया गया। सारांश यह है कि विवाह हो गया। फेरे भी हुए, गठबन्धन भी हुआ। मैं अपने पति की वामांगी बन गई। रात के तीन बज चुके थे। विदाई प्रातः सात बजे होने वाली थी। मुझे अपने कमरे में पहुँचा दिया गया।

बालिका मेरे पति के पास वाले कमरे में आ बैठी। हमारे समाज में सालियों को अपने जीजा के साथ मधुर हँसी दिल्लगी करने का रिवाज है। मैं सोना चाहती थी पर मेरी एक बारह वर्ष की ननद ने मुझे न छोड़ा। वह सजी धजी हुई कंचन की गुड़िया-सी। मुझे भी बहुत प्यारी लगी। वह मेरे साथ ही मेरे कमरे में आ गई थी और मेरे साथ ही सोने का हठ करने लगी। मैं अकेली तो थी ही, उसका अनुरोध न टाल सकी और उसे भी अपने साथ लेकर पलंग पर लेट गई। वह बालिका अपने नन्हे नन्हे कोमल हाथों से मेरा मुख अपनी ओर घुमाकर देखती और मुझे प्रेम से 'भाभी' कह कर पुकारती। उसके उस सम्बोधन से मेरा मन खिल उठता। मैंने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है, बीबी?' वह लजा गई और अपना कोमल मुख मेरे वक्ष में छिपा लिया।

"पलंग पर लेटे-लेटे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेरे पलंग के नीचे कोई है और उँगली गड़ा रहा है। मेरे हृदय से तुरन्त ही आवाज आई, कहीं जॉन न हो। जॉन का ध्यान आते ही मेरे प्राण सूख गए। मुझे कंपकंपी हो आई। शरीर का एक-एक रोआँ खड़ा हो गया। भय और क्रोध से मेरा मुख पीला हो गया। जॉन इतना निर्लज्ज है जो न समय देखता है न कुसमय। मुझे उस पर घृणा हो आई। पर मैं कर कुछ भी नहीं सकती थी। मेरे साथ मेरी ननद लेटी हुई थी। मेरा हृदय स्पन्दन कर रहा था, दो मिनट बाद फिर वही हरकत हुई। पलंग के नीचे से मेरी पीठ में किसी ने उँगली गड़ाई। मैं और भी भयभीत हो गई। जी चाहता था कि जॉन को नौकरों से पिटवाकर घर से बाहर निकलवा दूँ, पर हिम्मत कहाँ से लाती। उसके यहाँ होने का किसी को यदि सन्देह मात्र भी हो गया तो मैं कहीं की न रहूँगी। मैंने अपनी ननद को किसी भी बहाने से बाहर भेजकर अकेले में जॉन को फटकारने का निश्चय कर लिया और वैसा ही किया भी। अपनी ननद से बोली, 'मेरा एक काम करोगी बहनी!'

"भोली-भाली बालिका ने मेरी ओर देखते हुए उत्साह से कहा, 'क्या ?'

"पीने के लिए थोड़ा पानी ला सकोगी ?"

"ला सकूँगी। पर मैं जानती नहीं कि पानी कहाँ मिलेगा ?"

"तुम किसी भी व्यक्ति को कह देना कि मैं पानी माँग रही हूँ, वह स्वयं ही पहुँचा जाएगा।'

"बालिका उठी। मैं भी उठकर उसके साथ दरवाजे तक गई और उसे कमरे से बाहर निकालकर चट-से दरवाजा बन्दकर साँकल चढ़ा दी और अपने पलंग के पास आकर क्षुब्ध वाणी में बोली, 'निकल आओ। कौन है ?'

"जॉन मुस्कराता हुआ निकलकर मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने अधीरता से कहा, 'तुम यहाँ किसलिए आए हो जॉन ! तुम्हें शर्म आनी चाहिए। यदि कोई तुम्हें यहाँ देख ले तो जेल में सड़ो और मैं गंगाजी में डूब मरूँ। क्या यही तुम चाहते हो ?"

"जान ने अभिनय करते हुए कहा, 'क्रुद्ध न होओ डीयर ! तुम्हारे बिना नहीं रह सकता इसीलिए आया हूँ। जाने से पहले यही अच्छा है कि तुम मुझे अपने हाथों से समाप्त करके चली जाओ। न जीवित रहूँगा न जल-जल कर मरूँगा।'

"मैंने दीनता से कहा, 'बुद्धि से काम लो जॉन। मैं तुम्हारे बाल्यकाल की साथी, तुम्हारी मित्र हूँ। मेरे जीवन को कण्टकमय न बनाओ। जाओ चुपके से चले जाओ।'

"जॉन अभिनेता था। वह भली प्रकार जानता था कि भोली-भाली युवतियों को फुसलाने का ढंग बलात्कार नहीं, झूठा या सच्चा प्रेम दरशाकर ही उन्हें वश में किया जा सकता है। वह मेरे सामने घुटनों के बल बैठ गया और गिड़गिड़ाता हुआ बोला, 'तुम मुझसे छुटकारा ही पाना चाहती हो सरला ! तो भोंक दो छुरी या चाकू मेरे दिल में। पर मुझे इस प्रकार तड़प-तड़पकर मरने के लिए न छोड़ जाओ। मेरे प्रेम को

पाँवों में रौंदकर न जाओ।'

"उसके नेत्र भर आए थे। उसका मुख व्यथा से भरा प्रतीत होता था। मुझे उस पर दया आ गई। मैंने रुंधे कण्ठ से कहा, 'तुम चाहते क्या हो?'

'अभी इसी समय मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें अमूल्य निधि की भांति सँभाल कर रखूँगा। स्वयं घर बसाऊँगा। जिसमें तुम मेरी स्वामिनी होकर रहोगी। मुझ पर आज्ञा चलाओगी।'

"उसकी बातें सुनकर मेरा मन पसीज उठा परन्तु घर छोड़कर भाग जाने का विचार मैंने नहीं किया। मैंने हार कर कहा, 'जॉन जिस प्रकार आज तक हम एक दूसरे के होकर रहे हैं वैसे ही अब भी रहेंगे। भागने की कोई आवश्यकता नहीं। मैंने जो आनन्द तुम्हारे सम्पर्क में पाया है उसे भूलूँगी नहीं।'

"मेरी बात सुनकर जॉन उठ खड़ा हुआ और अपने बाहुपाश में भर-कर मेरा चुम्बन लेता हुआ बोला, 'बस मैं इतना ही चाहता हूँ सरला! तुम मेरी हो! मेरी होकर ही रहो। चाहे जहाँ भी तुम रहो पर मेरा जो अधिकार है वह वैसा ही रहे जैसा आज तक रहा है।'

"मैं उसके बाहुपाश में जकड़ी हुई अपना सभी कुछ भूल गई। कमरे के दरवाजे पर खटखट हो रही थी। मेरी नन्ही-सी बालिका ननद 'भाभी भाभी' चिल्ला रही थी। उसके साथ घर की एक दासी की भी आवाज आ रही थी। परन्तु हम दोनों जैसे बहरे हो गए थे, अन्धे हो चुके थे। न कुछ सुन ही रहे थे, नहीं कुछ देख सकते थे। मेरा विवाह किसी अन्य से हुआ था और मेरी सुहागशैय्या पर जॉन आनन्द भोग रहा था। मैं ऐसी ही पतित और चरित्र हीन नारी हूँ।"

नकटी नानी कहते कहते चुप हो गई। उसके नेत्र सावन भादों की तरह बरस रहे थे। अपनी कुकृतियों का स्मरण कर के उसका हृदय पिघल-पिघल कर बाहर आ रहा था। हम सभी लड़कियाँ अभिभूत-सी उसकी ओर टुकुर-टुकुर देख रही थीं। नकटी नानी का एक एक शब्द

हमारे अन्तःस्थल को स्पर्श कर रहा था। मैं समझती हूँ कि अवश्य ही उसके संस्कार भी हमारे हृदयों पर पड़े होंगे। नकटी अभी तक अपने जीवन की कालिमा ही प्रकट कर रही थी।

मैं सोचने लगी कि नकटी के जीवन में क्या कोई अच्छी बात है ही नहीं। ऐसी निषिद्ध और चरित्रहीन नारी आज तक हमने न देखी न सुनी थी। मैं पूछना चाह रही थी कि नकटी क्या तेरे जीवन में नर्क भोग ही लिखा था? क्या तेरी जीवनी का कोई उच्चतम अंश है भी या नहीं? पर मेरे मन ने स्वयं ही उत्तर पा लिया। उन सब कुकृतियों का जो फल हो सकता है वह हमारे सामने प्रत्यक्ष था। जैसा उसने किया था वैसा ही वह भोग रही थी। यह बात क्या हम अलज्ञ युवतियों के लिए कम शिक्षाप्रद थी? मेरी मित्रता भी जॉन जैसे एक इसाई युवक से थी। क्या मैं नानी की दुःख भरी कहानी से इतनी शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर सकती थी कि अगर मैं भी इसाई युवक को इतना ही सिर पर चढ़ा लूँगी तो मेरा भी नानी जैसा हाल हो सकता है? दावे से तो नहीं पर इतना अवश्य कह सकती हूँ कि मेरी सहेलियों के भी अपने प्रेमी या मित्र थे। क्या वह मेरी तरह नानी के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करके अपने आपको कीचड़ में गिरने से नहीं बचा सकेंगी? भद्दी होती हुई भी नानी की बातें हमारे लिए कड़वी औषधि का काम कर सकती हैं।

मैं नानी से घृणा न कर सकी। उसने अपनी कथा कहकर मुझे दलदल में गिरने से बचा लिया था। मुझे उसका आदर करना चाहिए था। मदिरा पीकर नशे की झोंक में नाली में गिरे व्यक्ति को देखकर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति समझ सकता है कि यदि मैं भी पीऊँगा तो इसी प्रकार नाली में गिरूँगा। क्या यह कम महत्व की बात है? नकटी भिखारिन अपनी कलुषित कथा कहकर हम लड़कियों का कल्याण नहीं कर रही थी? विशेषकर मैं तो उसकी कृतज्ञ हूँ। उसी की बातों से शिक्षा ग्रहणकर मैंने अपना मार्ग सुधार लिया था। हमारे लिए उसका एक-एक शब्द बहुमूल्य था, हमें गिरने से बचाने वाला था, हमारे नेत्रों का

आवरण हटाने वाला था।

: ६ :

नानी अभी भी आँसू बहा रही थी। मैंने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "अब दुःखी होने से क्या लाभ होगा नानीजी ! जो हो चुका है उसके लिए आँसू बहाना बेकार है। अब आगे कहिए। जॉन से पिंड छूटा या नहीं।"

नानी ने अपनी धोती के आंचल से नेत्र पोंछ डाले और कहने लगी, "कहाँ छूटा बेटी ! वह और उसका भाई मेक्स मेरी भाग्य राशि पर राहू और केतु की भाँति छाए रहे। उन्होंने मेरा सत्व आच्छादित कर रखा था। वे मेरे भाग्य रूपी सूर्य पर ग्रहण बनकर छाए रहे।"

इतने में शीला ने पूछा, "क्या मेक्स भी विलायत से लौट आया था नानीजी ?"

"हाँ, मेरे विवाह के सातवें दिन ही लौट आया था।"

बीच का किस्सा छूटता जानकर रमा ने कहा, "उसी रात की बात कहो नानीजी, जिस रात आपका विवाह हुआ और आप जॉन के पंजे में घिर गई।"

"उस रात वही हुआ बेटी ! जो एक भारतीय नारी के लिए अशुभ, घृणित और लज्जाजनक बात हो सकती है। जॉन ने मुझे इतना निचोड़ लिया था कि मेरा अंग-अंग दुखने लगा था। उस दिन के मेरे निखरे यौवन और बनाव-शृंगार ने जॉन को हिंसक पशु बना दिया था। उसने मुझे जी भर कर मसला, कुचला और मेरा सारा रस चूस लिया। उस समय मेरी दशा अस्त-व्यस्त हो चुकी थी। ऐसी हालत में एक अबोध बालक भी मुझे देखकर समझ सकता था कि मेरा सर्वस्व लुट गया है। जॉन के दाँतों के निशान मेरे कोमल कपोलों पर बने हुए थे। जॉन ने मेरी जबान को अपने मुख में लेकर इतना चूसा था कि मेरे प्राण ऊपर उठ आए थे, मेरे अधर जल रहे थे।"

शीला से न रहा गया। उसने नानी को बीच ही में टोकते हुए कहा, "उसका इतना परिपीड़न और अत्याचार क्या तुम इसलिए सह रही थीं नानीजी कि कोई देख या सुन न ले ?"

नानी ने उत्तर दिया, "नहीं बेटी ! जॉन की यही सब बातें मुझे अपनी ओर खींच रही थीं। आज भले ही मैं उन बातों को जॉन का अत्याचार या बलात्कार कहूँ पर मैं तुमसे झूठ नहीं बोलूँगी, जॉन की इन्हीं बातों पर मैं मरती थी। मैं उस समय इससे भी अधिक पिस जाना चाहती थी। कामोन्माद से बढ़कर तीव्र और मदहोश कर देनेवाला अन्य कोई भी नशा नहीं। मैं भी उस समय उन्मादिनी हो चुकी थी तभी तो विवाह वाली रात सुहाग का दान अपने पति से न पाकर एक लम्पट, लफंगे से प्राप्त किया था।

"मैं उस समय इतनी दुर्बल हो चुकी थी कि दरवाजा खटखटाती नौकरानी से पानी का गिलास तक न पकड़ सकी। वह कुछ समय खड़ी बड़बड़ाती रही फिर लौट गई। अब मुझे जॉन को अपने कमरे से निकालने की चिन्ता हुई। जॉन अभी तक मेरे ही कमरे में मेरे पलंग पर मेरे ही साथ लेटा हुआ था। पाँच अभी नहीं बजे थे। चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। घर के सभी लोग श्रम से चूर होकर जहाँ जिसको स्थान मिला वहीं लेटकर गहरी नींद में डूबे हुए थे। विवाह वाले घर में किसी को यह पता नहीं होता कि कौन व्यक्ति लड़की के ससुराल वालों में से है अथवा कौन मायके वालों में से। विवाह शादी वाले घर में अनेक कामकाजी व्यक्ति भी आए होते हैं।

"जॉन मेरे पलंग पर पड़ा खर्राटे भर रहा था। मैंने उसे झकझोर कर उठाया और बाहर निकलने की युक्ति समझा दी। मैंने आगे बढ़कर अपने कमरे का दरवाजा खोला, चारों ओर दृष्टिपात किया, सब ओर सन्नाटा था। जॉन चट से बाहर निकलकर एक स्थान पर लेट गया। मैंने धीरे से दरवाजा भिड़काकर सिटकिनी चढ़ा दी। मेरी युक्ति के अनुसार जॉन लेटा लेटा करवट बदलता हुआ बरामदे से बाहर हुआ और अँगड़ाई

लेता हुआ कोठी से बाहर निकल गया। मैं यह सब खिड़की में से झाँक कर देख रही थी। उसके निकल जाने पर मेरी जान में जान आई। मैंने अपने आपको पुनः नवविवाहित रमणी के अनुरूप बनाना चाहा। कुछ थोड़ा-बहुत अपने आपको बना सजाकर गालों पर सीमा से अधिक पाउडर-सुर्खी पोतकर अपने बिछौने पर लेट गई। मेरा मन भी शांत हो चुका था। मेरी आँख लग गई।

"प्रातः लगभग छः बजे मुझे जगाया गया। मैं सात बजे अपने पति के साथ पतिगृह की ओर विदा हुई। सारा दिन शकुन-उपचार होते रहे। खाना-पीना हुआ, देखा-दाखी हुई। मैं सब को पसंद आई। मेरे मायके से मिला दहेज भी सबको पसंद आया। दिन सकुशल निकल गया। रात को मुझे एक सजे सजाए कमरे में भेज दिया गया जहाँ मसहरी लगा बड़ा-सा पलग सजाया गया था। यह कमरा भी एक धनी व्यक्ति के सुपुत्र के अनुरूप ही था, इस पर भी मेरे घर जैसा नहीं था। मैं एक बहुत बड़े जमींदार की पोती थी। मेरे दादा किसी राज रजवाड़े से कम वैभवशाली नहीं थे। मैं घूँघट काढ़े पलंग पर बैठी रही। घर की दासी आई, दूध भरे दो गिलास और कुछ सूखा मेवा रखकर चली गई। कुछ समय बाद वह पुनः लौटकर आई और पानी का लोटा मेज पर रखते हुए मेरी ओर देख-कर मुस्कुराने लगी। वह मुझसे कुछ बात करना चाहती थी, पर मैंने उसे मुँह नहीं लगाया। मैं चुप ही रही।

"आधे घंटे बाद मेरे पति आए। उन्होंने कुछ क्षण दूर खड़े रहकर मेरी ओर देखा। पर मेरी दृष्टि उन पर न उठ सकी। मैं जानती थी कि यह वही लड़का है जो आज से एक साल पहले मेरे साथ क्लास रूम में बैठा करता था, जिसे मैं चिकोटियाँ काटा करती थी, जान-बूझकर तंग किया करती थी। हम कई बार इकट्ठे घूमने-फिरने भी गए थे। पर न जाने आज मुझ में कहाँ से लज्जा आ टपकी। मेरा विचार है कि एक कुलीन पत्नी के संस्कार ही उस समय मुझमें उदय हुए थे। पर स्वभाव से ही मैं छुई-मुई की भाँति सिकुड़ी जा रही थी। उन्होंने कमरे का दर-

वाजा बन्द कर लिया । मेरा हृदय धक् धक् करने लगा । वह धीरे-धीरे चलकर मेरे पास आए और मेरे ही समीप पलंग पर बैठकर मधुर स्वर में बोले, 'सरला !'

"मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, झेंपकर और भी ग्रीवा झुका ली । उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरा । मेरे शरीर का अणु-अणु सिहर उठा । उन्होंने पुनः कहा, 'बोलोगी नहीं सरला ! मेरी ओर देखोगी भी नहीं ?'

"मैं भला उनकी बातों का क्या उत्तर देती ? उन्हें बरजोरी मेरा मुख अपनी ओर कर लेना चाहिए था । मुझे गुदगुदा कर मेरी लज्जा दूर कर देनी चाहिए थी । मन में सभी कुछ चाहती हुई भी नारी अपने मुख से इन बातों को नहीं कह सकती, चाहे वह कितनी ही छोटी प्रकृति की क्यों न हो । पर वे भले व्यक्ति मुख से तो सब-कुछ कहते परन्तु करते कुछ भी नही थे । मेरा मन उमंग में आ चुका था, मेरा मन गुदगुदाने लगा था । मैं चाहती थी कि वह मुझे तंग करें, गुदगुदाएँ, मेरी बेनी पकड़कर खींचें, मेरे शृंगार को बिगाड़ दें । मेरे मचलने या निहोरा करने पर अथवा मेरे ना-ना करने पर भी वह मेरा सब कुछ छीन लें, लूट लें । परन्तु वह कुछ भी नहीं कर पा रहे थे । उनका कोरी बातचीत का प्रदर्शन मुझे अखरने लगा ।

"मुझे ऐसे भीरु व्यक्ति से पहले कभी भी वास्ता नहीं पड़ा था । मुझे मेक्स की याद आ गई, जॉन की याद आई जो मुझे देखते ही मेरे भावों को परख लेते थे । मेरी ऊपर-ऊपर की नखरेबाजी अथवा हीले-बहाने देखकर वे और भी शेर हो जाते थे और मेरी मनचाही करते थे । पर यहाँ तो देखने में हृष्टपुष्ट, सुन्दर और सुडौल मेरे पति मेरे सामने याचना कर रहे थे, भिक्षा-सी माँग रहे थे; पर भिक्षा ग्रहण करने का सामर्थ्य उनमें प्रतीत नहीं हो रहा था । मेरे मन में एकाएक विचार उठा क्या यह नपुंसक तो नहीं हैं ? यह विचार उठते ही मैंने कड़ी दृष्टि से उनकी ओर देखा । मेरे अनजाने में ही मेरी दृष्टि में कुछ रूखापन और तिरस्कार आ गया था । मैं एक मिथ्या भावनाओं के चक्कर में पड़ गई थी । मेरी दृष्टि

में कठ आहट पाकर वह सहम गए और कुछ विचलित-से होकर मेरा मुख देखने लगे। वह मेरे इस अकारण रोष का कुछ भी कारण नहीं समझते थे। उनका मुख उतर गया। जैसे कोई व्यक्ति पानी की आशा से कुएँ पर जाय परन्तु कुएँ को सूखा देखकर निराश हो जाये, उस समय ऐसी ही दशा उनकी थी। उन्होंने तब भी उत्साह से काम न लिया। वह मेरी प्रकृति को कॉलिज के समय से ही जानते थे कि मैं अपनी ही मनमानी करना जानती हूँ। वह पुरुष थे। वह यदि उस समय अपने पौरुष से काम लेते तो सम्भवतः मेरी यह दशा न होती जो आज है। पर उनकी आदर्शवादिता ने मुझे विपरीत मार्ग पर धकेल दिया। मुझे मैक्स और जान पुनः स्मरण हो आए। उनका डरपोकपना मुझे खल उठा, मेरा मन वितृष्णा से भर गया। मैंने उनकी ओर से मुख फेर लिया।

"उन्होंने साहस बटोरकर कहा, 'नाराज हो सरला ?'

"मैंने क्रोध में उन्हें फटकार दिया। 'सोने दीजिए, मुझे नींद आ रही है।' पर दुर्भाग्य ही समझो बेटी ! मेरा तिरस्कार पाकर भी उनका पुरुषत्व न जागा। वह मेरे पलंग से उठ गए और यह कहते हुए, कमरे में रखे हुए सोफे पर जाकर लेट गए, 'मैं तुम्हें नाराज नहीं करना चाहता सरला ! तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूँगा।'

"मेरे मन मे जो उनके विषय में ओछी प्रवृत्ति उठी थी, वह दृढ होने लगी। मैं सोच रही थी, यह विवाह के योग्य नहीं थे। मेरे माता-पिता ने मुझे इनसे विवाह कर मेरा जीवन बर्बाद कर दिया। मेरा मन रो उठा। मेरे विवाहित जीवन की पहली रात ही मुझे काटने लगी। मैं मन में व्यथा का भार लिए मुख छिपाकर लेट गई, न जाने कब सो भी गई थी। वह रात भर जागते रहे या सोते रहे, इसका मुझे ज्ञान नहीं था। प्रातःकाल एक दासी ने आकर जगाया और स्नानागार की ओर ले चली।"

नानी की उपरोक्त बात कोरी बात ही नहीं थी, इसमें तथ्य भी था। नानी इतनी दोषी नहीं थी, जितनी हम उसे समझ रही थीं। उसके स्थान

वाज"

पर हम लड़कियों में से यदि कोई होतीं तो हमें भी उस पुरुष पर ऐसी ही शंका हो आती । यौन सम्बन्धी बातों में पुरुष ही पहल किया करते हैं । इसी लिए नारी अबला है । नारी अपने हृदय में सब कुछ चाहती हुई भी अपनी कामना पूर्ति के लिए कभी भी पुरुष से याचना नहीं करेगी । यह उसका प्राकृतिक स्वभाव है । उस समय पुरुष को ही युक्ति और शक्ति से काम लेना पड़ता है । पुरुष को ही नारी का हृदय टटोलना पड़ता है । जो अनजान पुरुष ऐसा नहीं करते, वे कायर या डरपोक ही कहलाते हैं । नारी ऐसे पुरुष पर क्रुद्ध हो उठती है, उसका तिरस्कार कर देती है ।

एकाएक मुझे विचार हो आया कि नानी क्या पुरुष के इसी अत्याचार का उल्लेख तो नहीं कर रही ? मेरे मन ने कहा, अवश्य यही बात है । नारी पुरुष के प्रेम का अत्याचार चाहती है । पुरुष का तिरस्कार नहीं चाहती है । मेरी आँखें जैसे खुल-सी गईं । मेरे मस्तिष्क में प्रकाश हो आया । मैं समझ गई कि वास्तव में नारी पुरुष के प्रेम का अत्याचार चाहती है । कामोन्माद में प्रवृत्त होकर जो पुरुष अपनी पत्नी पर अत्याचार करते हैं, पत्नी उन्हीं से प्रेम करती है । कोरा प्रेम जताने वाले अथवा भावना में वह जाने वाले पुरुष को प्रेम नहीं करती । पर अभी भी दूसरा प्रश्न मेरे सामने उपस्थित था, वह यह कि नकटी नानी का पति ऐसा डरपोक या भीरु था, तो आज उसके स्मरण मात्र में वह आँसू क्यों बहा रही थी ?

मुझ से रहा न गया । मैंने नानी से पूछा, 'नानीजी ! आपकी वर्तमान दशा का बहुत कुछ दायित्व आपके पति पर है । फिर आप उनके लिए इतनी दुःखी क्यों हो रही हैं ? जो आपके दुःख का कारण है उसी के लिए आप दुःखी हैं ?'

नानी ने मेरी ओर देखकर कहा, "यह बात सत्य नहीं बेटी ! मैं पहले कह चुकी हूँ, समय और समय में बहुत अन्तर होता है । उन दिनों जो बात मैं नहीं समझती थी उसे आज समझ रही हूँ । वास्तव में न तो उनमें पौरुष हीनता ही थी और न ही भीरुता । वह था उनका नारी के

प्रति आदर, नारी के प्रति वास्तविक प्रेम, जिसे मैं आज समझ पाई हूँ। विद्यार्थी जीवन में ही वे मुझे अपने हृदय में स्थान दे चुके थे। उन्होंने स्वयं ही अपने घर में कह-सुनकर मुझसे विवाह करने का हठ किया था। उन्होंने स्वयं अपने पिता से कहकर मेरे पिताजी को विवाह के लिए प्रेरित किया था।

"वास्तविक प्रेम और यौन आकर्षण में बहुत अन्तर है। यौन प्रेम शरीर की भूख है। शरीर जिन जिन वस्तुओं से तृप्ति पाता है, उन्हीं उन्हीं से प्रेम करने लगता है। वह प्रेम नहीं स्वार्थ है। प्रेम का सम्बन्ध तो हृदय से है। दो अधूरे हृदयों का मिलकर पूर्ण होने की तीव्र इच्छा-वृत्ति का नाम ही प्रेम है। तुम पूछ सकती हो कि हृदय तो उस समय भी हम दोनों में थे, तब प्रेम क्यों नहीं हुआ। सो यह बात नहीं है बेटी! दर्पण निर्मल रहने पर ही उसमें स्वच्छ प्रतिबिंब पड़ता है। ऐसे ही, हृदय निर्मल होने पर ही एक दूसरे को पहचाना जा सकता है। मेरे हृदय पर तो वासनाओं का रंग चढ़ा हुआ था। उन दिनों मैं प्रेम अथवा विवाह को यौन प्रवृत्तियों की पूर्ति का साधन मात्र ही समझती थी। उन दिनों मैं उन्मत्त थी। मांस मदिरा इत्यादि खाने-पीने से मुझ में रजोगुण प्रधान था। मैं रजोगुणी प्रवृत्तियों में ही विचर रही थी। मेरा सत्त्वगुण आच्छादित हो चुका था। धर्म-कर्म की कोई बला मुझ में थी नहीं, मैं स्वच्छंद थी।

"माता-पिता के लाड़-प्यार ने मुझे हर अच्छे या बुरे कार्य के लिए छूट दे रखी थी। क्या मेरे पिता नहीं जानते थे कि मैं मेक्स के साथ आधी-आधी रात तक घूमती फिरती हूँ, डांस पार्टियों में जाती हूँ, मेक्स के साथ नृत्य करती हूँ? सब कुछ जानते थे। वे मुझे डाँट सकते थे। युवा होने से पहले ही मेरा विवाह कर किसी के हाथों में सौंप सकते थे ताकि फल पकने से पहले ही उसका भोक्ता अपने अधिकार में ले लेता। कदाचित तुम लोग समझो कि यह प्रथा ठीक नहीं, बाल विवाह स्त्री पुरुष के लिए सुखकर नहीं। स्त्री और पुरुष की विचारधारा या प्रवृत्ति एक न होने पर उनका सारा जीवन नरक तुल्य हो जाता है। किन्तु मेरी दृष्टि

में अपने बच्चों को इस प्रकार छूट दे देना उचित नहीं। यदि कोई अबोध बालक आग से खेलना चाहे तो उसे डाँटना या समझाना तो प्रत्येक अभिभावक का कर्तव्य होता ही है। पर ये सब बातें आज ही सोच रही हूँ। उन दिनों इन्हीं छोटी-छोटी बातों को लेकर मैं अपने माता-पिता से लड़ पड़ती थी। मैं समझती थी कि मेरे अधिकारों पर डाका डाला जा रहा है। मुझे अंकुश मे रखना चाहते है, मुझे दासी समझते है। मैं विद्रोही हो जाती थी, बिगड़ उठती थी।"

नानी किसी बात को साफ नही होने देती थी। या तो हम सबकी बुद्धि इस योग्य नहीं थी कि नकटी की बाते हम समझ पातीं या फिर नकटी नानी ही बौखलाई हुई थी। वह यह नहीं सोचती थी कि एक बात कहकर पुनः उसी अपनी बात को काटे दे रही है। इस पर भी हमारी उत्सुकता बढ़ती जाती थी।

: १० :

नकटी नानी की कहानी हमारे लिए अधिक आकर्षक होती जा रही थी। हम सब लड़कियाँ अपने अन्य सब कार्यों को भूलकर नकटी को घेरे बैठी थीं।

वह कह रही थी—"अगले दिन स्नान आदि से निवृत्त होकर मैं पुनः अपने कमरे में आ गई। उस दिन भी कई पड़ोसिनें देखने और शकुन करने आने वाली थीं। मैंने जी भरकर अपना शृंगार किया। अपने आपको इतना सजाया, बनाया कि दर्पण में अपने रूप को देखकर मैं स्वयं ही मोहित हो गई। मेरे ससुराल की कुछ लड़कियाँ मेरे पास बैठी थीं। मेरी बालिका ननद मेरे पास खड़ी थी। उसका नाम मीना था। मेरे पति की रिश्ते-नाते की बहनें, भांजियाँ और भी न जाने कौन-कौन मेरे महकते यौवन और निखरे रूप को देखकर आश्चर्यान्वित हो रही थीं। कोई मेरे लम्बे काले केशों की प्रशंसा करती, कोई मेरे गोरे सुन्दर रंग को देखकर मोहित हो रही थ

"तुम में से कभी किसी लड़की ने मुझे उन दिनों देखा नहीं बेटी ! मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रही, न ही बात को बढ़ाकर कहने का ही मेरा स्वभाव है। वास्तव में ही मेरे नख-शिख बहुत सुन्दर और आकर्षक थे। उस जले रूप ने ही मुझे पतन के गहरे गड्ढे में धकेल दिया था। मधुमास में भँवरे जिस प्रकार खिले पुष्पों का सौरभ-धन लूटने के लिए उनके चारों ओर मंडराते फिरते हैं, उसी प्रकार रूप के दिवाने कई युवक मेरे संकेत मात्र पर अपना सर्वस्व होम करने को तैयार रहते थे।

"मैंने अपने आपको सजाया तो अवश्य था, पर जिनके लिए यह सब किया गया था, उन्होंने एक बार भी मेरे रूप-लावण्य की प्रशंसा नहीं की। मेरे पास आए, बैठे भी, दृष्टि भर मुझे देखते रहे पर मुख से उन्होंने एक शब्द न निकाला।

"फूल खिलता है अपना सौरभ धन लुटाने के लिए। फल पकता है किसी का भोज्य बनने के लिए। इसी प्रकार स्त्री का यौवन भी किसी पुरुष का उपभोज्य बनने के लिए ही खिलता है। फूल यदि डाल पर ही मुरझा जाए तो उसका क्या महत्त्व ? फल पककर यदि डाल पर ही सड़ जाए तो उसका भी क्या लाभ ? इसी प्रकार नारी का बनाव-शृंगार यदि कोई देखकर तृप्ति न पाए तो उसका भी क्या महत्त्व हो सकता है ? क्या नारी अपने आपको इसलिए सजाती है कि वह स्वयं ही स्वयं को देखे ? नहीं, कदापि नहीं। वह जो भी कुछ करती है पुरुषों के लिए ही करती है। भले ही वह पुरुष पति हो या कोई और। नारी में सब से अधिक आकांक्षा यदि किसी वस्तु की है तो अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुनने की है। नारी प्रशंसा की भूखी है। झूठी हो या सच्ची, प्रशंसा पाकर नारी अपनी लाज तक देकर अपना सर्वस्व अर्पण करके [illegible]
मूल्य चुकाती है। नारी को सब से अधिक उसी [illegible]
जो उसकी या उसके रूप तथा यौवन की प्र[illegible] से किसी ने कमरे का दर-

"मेरे पति ने मन-ही-मन भले ही [illegible]। मैंने तुरन्त ही चिट्ठी और
पर उनके मुख से एक भी प्रशंसा-वा[illegible]र दरवाजा खोल दिया। आनेवाले

हो रही थी। मेरा मन पुनः द्वेष से भर गया। रात की बात अभी पुरानी नहीं हो पाई थी। इस नई चोट से मैं तिलमिला उठी। मैं मन-ही-मन मैवस को खोजने लगी। काश! आज मैवस यहाँ होता और मेरा रूप-रंग देखकर भँवरे की भाँति मुझ पर अपने आपको उत्सर्ग कर देता।

"ऐसे ही विचार उस समय मेरे मन में उठ रहे थे। मैं अपने पति से विमुख होती जा रही थी। सौभाग्य से मेरी माता के साथ हैलन और जॉन भी मुझे मिलने आए। उनका बहुत आदर-सत्कार किया गया। हैलन मेरी बालसखी थी। उससे मेरा कुछ भी नहीं छिपा था। हैलन ने मुझे अंक में भरकर मेरे नेत्रों में देखते हुए मुस्कुराकर पूछा, 'रात तो आनन्द में बिताई न? सरला!'

"उसकी यह बात सुनकर मेरा मुख सूख गया। मन में व्यथा उमड़ आई। नव-विवाहिता युवती के लिए सुहागरात ही मधुर स्वप्नों की रात होती है। वही रात मेरी सूखी और नीरस निकल गई थी। मुझसे कुछ दूरी पर बैठा जॉन एकाग्र मन से मुझे घूर रहा था। यदि उसे तनिक भी समय मिलता तो वह भूखे बाघ की भाँति टूट पड़ता। परन्तु कमरे में सब कोई थे। मैंने उसकी ओर अधिक नहीं देखा। हैलन की बात का कोई उत्तर तो नहीं दिया, पर उससे मेरा कुछ भी छिपा न रहा। वह मेरी मुखमुद्रा से ही समझ गई।

"कुछ समय बाद हैलन और जॉन मेरी माँ के साथ चले गए। जाते-जाते जॉन ने मुड़कर मेरी ओर देखा था। मेरी दृष्टि भी उसी की ओर थी। नेत्र मिलते ही जॉन ने अपना निचला होठ दाँतों में दबा लिया। न जाने वह अपने मन में क्या ठान के गया था। शेष दिन सामान्य रूप से निकल गया। दहेज में आया सामान नौकरों ने यथा-स्थान लगा दिया।

आठ बजे मेरे श्वसुर साहब का चपरासी, जो ईसाई
एक पत्र मेरे हाथ में दे उसने अपनी जेब में
कर मेरे हाथ में रख दी। मैं आश्चर्य से
कुछ पूछूँ इससे पूर्व ही वह कमरे से

बाहर निकल गया। मेरा दिल धक-धक करने लगा। न जाने यह कैसी चिट्ठी है। इसमें क्या लिखा है और इस शीशी में भी क्या चीज है !

"उस समय मैं अकेली ही थी। मैंने उठकर कमरे का दरवाजा भिड़का दिया और सिटकिनी चढ़ा दी। पहले मैंने चिट्ठी खोलकर पढ़ी, लिखा था—

'डियर सरला !

तुम नहीं जानतीं रात मैंने किस प्रकार व्यथा में बिताई है। मैंने अपने आपको पहचान लिया है। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँगा। आज रात को तुम्हें मिलूँगा। किसी भी तरह शीशीवाली दवा की चन्द बूँदें किसी भी वस्तु में अपने पति के पेट में पहुँचा देना। घबड़ाना नहीं, यह विष नहीं है। केवल कुछ घण्टों के लिए तुम्हारे पति को यह दवा गहरी नींद में सुला देगी।

—जॉन'

"सच कहती हूँ मोहिनी बेटी ! जॉन की चिट्ठी पढ़कर मेरे प्राण सूख गए। जिस अपने पति को हम हिन्दू नारियाँ अपना पूजनीय अथवा परमेश्वर मानती हैं, जिसके शव के साथ हम हिन्दू नारियाँ अपने आपको चिता में जलाती आई हैं, उसी पति को मैं एक लफंगे अथवा बदमाश के कहने पर यह विष तुल्य दवा पिलाऊँ, इस विचार-मात्र से ही मेरा दिल काँप रहा था। मुझे जॉन पर घृणा हो आई थी। मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया, आज यदि जॉन ने यहाँ आने का दुस्साहस किया या किसी प्रकार का अमर्यादित कार्य किया तो उसे जेल भिजवाकर छोड़ूँगी। मैं ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की लड़की और मेरे पति सुप्रसिद्ध जज के लड़के। केवल मेरे संकेत मात्र से ही जॉन को वर्षों के लिए जेल में ठूँस दिया जा सकता था।

"मैं इन्हीं विचारों में लवलीन थी। बाहर से किसी ने कमरे का दरवाजा खटखटाया। मेरी तन्द्रा भंग हुई। मैंने तुरन्त ही चिट्ठी और दवावाली शीशी छिपा दी और उठकर दरवाजा खोल दिया। आनेवाले

मेरे पति थे, जिन्हें देखकर मेरे मन में एक हूक-सी उठी । कितनी सुन्दर और सौम्य मूर्ति थी उनकी ! उसी समय मेरे अन्तर के किसी कोने में से आवाज आई । हाँ, मूर्ति; निष्प्राण मूर्ति । मैंने मुस्कुराकर उनका स्वागत किया । वे आकर कौच पर बैठ गए । मैं पलंग पर जा बैठी । वह अपने मधुर नेत्रों से मुझे देखते रहे । मैं लजाती हुई ग्रीवा झुकाए बैठी रही; इतने में दासी हमारे लिए दूध और सूखा मेवा रखकर चली गई । उन्होंने उठकर दरवाजे की सिटकनी चढ़ा दी । और पुनः कौच पर आकर बैठ गए । दस बज चुके थे । मैं मन-ही-मन डर रही थी; न जाने जॉन कब आ जाय; यदि किसी ने उसे देख लिया तो क्या होगा ? मेरे पति ही यदि जान जाएँ कि जॉन मेरा पुराना भोक्ता है और यहाँ भी अपने अधिकार पर डाका डालने के लिए आनेवाला है तब क्या हो ? मेरा कितना अपमान हो ! मेरे माता-पिता का मारे लाज के सिर झुक जाएगा । हमारे कुलीन घराने की नाक कट जाएगी । मैं तो कहीं की भी न रहूँगी । फिर सोचती—अब करूँ क्या ? अनायास ही मन में विचार उठा कि आज भर जॉन को आने दूँ और आगे के लिए उसे डाँट दूँ, डरा-धमका दूँ । बस ऐसा ही करना चाहिए ।

"यह निश्चय कर मैं अभागिन, पापी नारी अपने देवतुल्य स्वामी को दवा पिलाने की बात सोचने लगी कि किस युक्ति से उन्हें दवा दी जाए । इनके सचेत रहते तो जॉन का यहाँ आना ठीक नहीं रहेगा, मेरी बहुत बदनामी होगी ? तो क्या करूँ, कैसे दवा पिलाऊँ ? मेरे पति कौच पर बैठे एकाग्र दृष्टि से मुझे देख रहे थे । मेरा हृदय काँप रहा था ।

"बहुत सोच-विचार के बाद मैं उठी और पानी पीने के बहाने मेज पर रखे लोटे के पास गई, पानी का लोटा उठाते समय जान-बूझकर उसे गिरा दिया । मेरे पति हँसने लगे । मैंने कृत्रिम क्रोध दर्शाते हुए उन्हें कहा, 'आप हँस रहे हैं और मेरा गला सूखा जा रहा है । लोटे में पानी की एक बूँद भी नहीं रही ।'

"मेरे पति ने उठते हुए कहा, 'घर में तो पानी की कमी नहीं है ।

लाओ लोटा दो, मैं अभी और पानी ले आता हूँ ।'

"यद्यपि पानी मुझे स्वयं जाकर लाना चाहिए था, पर मैं तो उन्हें कमरे से बाहर करना चाहती थी । इसलिए चट से लोटा उन्हें थमा दिया और वे दरवाजा खोलकर बाहर निकल गए । मैंने तत्परता से वह दवा की शीशी निकाली और एक गिलास में उसकी दो-तीन बूँदें टपकाकर एवं शीशी को छिपाकर पूर्ववत् खड़ी हो गई ।

"कुछ समय बाद मेरे पति लौट आए । मैंने मुस्कराते हुए उनके हाथ से पानी का भरा हुआ लोटा ले लिया और बोली, 'अकारण आपको कष्ट दिया । मैं स्वयं जाकर भी तो ला सकती थी ।'

"मेरे पति ने मेरी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया और पलग पर बैठ गए । मैंने लोटे में से दूसरे गिलास में पानी लेकर स्वयं एक घूंट पिया और पुनः गिलास को मेज़ पर रखती हुई बोली, 'मैं भी कितनी मूर्ख हूँ ! आपको पानी तक के लिए न पूछ सकी ।'

"यह कह मैंने जिस गिलास में दवा डाली थी, उस गिलास में पानी भरकर अपने पति को देते हुए कहा, 'लीजिए पहले आप पानी पीजिए । मैं बाद में पीऊँगी ।'

"मेरे पति ने मेरी बात सुनकर ध्यानपूर्वक मेरी ओर देखा । मैं काँप उठी और मन-ही-मन डर रही थी कि कहीं मेरी कुकृति यह समझ तो नहीं गए । पर नहीं, उनके विशाल नेत्रों में से स्नेह झलक रहा था । मैं गिलास आगे बढ़ाए खड़ी रही । उन्होंने मुस्कुराकर कहा, 'जीवन में पहली बार तुम अपने हाथों से मुझे पीने के लिए पानी दे रही हो । प्यास न होने पर भी मैं पीऊँगा ।

"उनकी यह बात सुनकर मेरा हाथ काँप उठा । हे भगवान् ! वे मुझ पर इतना स्नेह रखते थे और मैं उन्हें धोखा देने चल रही थी । मेरा मन रो रहा था । उन्होंने स्फूर्ति से मेरे हाथ से गिलास लेकर गटागट सारा जल पी लिया । मुझे झटका-सा लगा । मेरा मन उतर गया, जिसे देख मुस्कराते हुए मेरे पति ने कहा, 'तुम नाराज़ होना खूब

जानती हो सरला ! और जीवन में मेरा एक ही लक्ष्य है, तुम्हें हर समय सुखी देखूँ । मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुम्हें कभी नाराज नहीं होने दूँगा । तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सब कुछ करूँगा ।'

"मैं मन-ही-मन पछता रही थी । यह मैंने कैसा कुकर्म कर दिया । अपने हाथों से अपने पति को विष तुल्य पेय दे दिया । पर तीर कमान से निकल चुका था । मैं भी उन्हींके पास पलंग पर बैठ गई और उनके मुख की ओर देखने लगी । उनके नेत्र अलसाये जा रहे थे, पलकें मुँदी जा रही थीं । उन्होंने एक अँगड़ाई ली और साथ ही जम्हाई लेते हुए बोले, 'आज अकारण ही इतनी शीघ्र नींद आने लगी है ।'

"मैंने चट उत्तर दिया, 'सारा दिन के थके हुए हैं । नींद तो आनी ही चाहिए । आप लेट जाइए, मैं आपकी टाँगें दबा देती हूँ ।'

"आज मुझमें लज्जा या संकोच नाम मात्र को भी नहीं था । जॉन के आगमन का भय मेरे हृदय में गड़ रहा था । मैं चाहती थी कि मेरे पति शीघ्रातिशीघ्र सो जाएँ । मैं कुलटा स्त्रियों की भांति ऊपर-ऊपर से मीठी बातें करती हुई उनकी टाँगों पर हाथ फेरने लगी । उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी ओर खींचना चाहा, पर उनका शरीर सुस्त हो चुका था । दो ही मिनट बाद वे गहरी नींद में खुरांटे भरने लगे ।

"बारह अभी नहीं बजे थे । पलंग पर पड़े मेरे पति गहरी नींद में खुरांटे भर रहे थे, पर मेरी आँखों में नींद का नामोनिशान न था । रह-रहकर जॉन का आगमन मुझे काँटों की तरह गड़ रहा था । मैं चाहती थी, जो कुछ होने वाला है शीघ्र होकर टल जाय । इतने में लॉन की ओर वाली खिड़की को किसी ने थपथपाया । मेरा दिल धक्-धक् करने लगा । मैंने अपने सोते पति की ओर देखा और धड़कते कलेजे से खिड़की के पास गई । काँपते हाथ से सिटकिनी उतार दी ।

"खिड़की खुलते ही जॉन अन्दर कमरे में आ गया । मारे भय के मुझे पसीना छूटने लगा । जॉन ने आते ही मुझे अपने बाहु-पाश में बाँध लिया, चुम्बनों से मेरी सूरत बिगाड़ दी । मैं उसे डाँटने-डपटने की सब

बातें भूल गई। मुझ पर एक प्रकार का नशा-सा छा गया था, जिसके कारण मैं अन्धी हो चुकी थी। मैं और जॉन ने मिलकर उन्हें पलंग से उठाकर फर्श पर लिटा दिया। जॉन ने जो दवा दी थी, उसमें यही करामात थी कि उसके एक बार के सेवन से आठ घण्टे तक मनुष्य बे-खबर सोया रहता है।"

इतना कहते-कहते नकटी नानी के नेत्रों से अविरल अश्रुपात होने लगा था। वह रोती हुई कह रही थी, "मुझ चरित्रहीना का अपने पति के प्रति यह कैसा व्यवहार था बेटी! जो मेरी शय्या का स्वामी था, उसे उसके अधिकार से वंचित करके मैं एक अधर्मी और कापुरुष के साथ रंगरेलियाँ मना रही थी।"

इतना कहकर नानी रुक गई। उसकी व्यथा असीम थी, जिसे सुनकर हम सब लड़कियों का मन भारी हो रहा था। नकटी का व्यथा से व्याकुल हृदय मानो टुकड़े-टुकड़े हो चुका हो। कुछ समय रो लेने पर नकटी नानी का मन हल्का हो गया। तब मैंने पूछा, "नानीजी! आगे क्या हुआ?"

"होना क्या था बेटी! जॉन को प्रातः चार बजे मैंने निकाल दिया और उसे बाद के लिए वर्जित कर दिया कि इस प्रकार चोरी से कभी न आया करे। मैंने यह भी कह दिया कि मैं प्रतिदिन अपने पति को यह दवा नहीं पिला सकती। दवा की शीशी मैंने जॉन को लौटा दी। जॉन और मैंने पुनः उन्हें पलंग पर लिटा दिया। जॉन बहुत गिड़गिड़ाया, क्रुद्ध भी हुआ, पर मैंने एक न मानी। वह चला गया।"

: ११ :

"दूसरे दिन प्रातः मेरी माँ मुझे अपने घर ले जाने के लिए आ गई। मैं भी मायके जाने के लिए तैयार हो गई। मैं चार दिन अपने पिता के घर रहकर पुनः ससुराल लौट जाने वाली थी कि अनायास ही मेक्स का एक तार मिला कि तीन दिन पश्चात् वह बम्बई पहुँचने वाला

है। मैक्स ने आग्रहपूर्वक मुझे बम्बई बुलाया था। मैक्स मेरे बाल्यकाल का साथी विलायत से लौटकर देश आ रहा है यह जानकर मेरा मन पुलकित हो उठा। मेरे पिता तो जानते थे कि मैक्स और मैं बाल्यकाल के साथी हैं। मैक्स के माता-पिता स्वर्गवासी हो चुके थे। उसकी बहिन हैलन कुछ रुपये खर्च हो जाने के भय से अपने भाई के स्वागत के लिए बम्बई नहीं जा रही थी। हैलन के इस अभाव की पूर्ति मैंने की। मैं स्वयं मैक्स के स्वागतार्थ बम्बई जाने के लिए जॉन के साथ तैयार हो गई। अपने पति को मैक्स का परिचय देते हुए बम्बई जाने के विषय में मैंने पूछा। उन्होंने सहर्ष अनुमति दे दी। यद्यपि मेरी सास ने कुछ बाधा उपस्थित की। पर जब मेरे पति मुझे अनुमति दे चुके थे, तो मुझे किसी का क्या भय ?

"दूसरे ही दिन मैं जॉन के साथ बम्बई के लिए प्रस्थान कर गई। हम एक होटल में ठहरे। जॉन फिल्म अभिनेता था। फिल्मी अभिनेताओं से उसकी जान-पहचान थी। उसने फोन पर अपने मित्रों को बम्बई पहुँचने की सूचना दे दी। उसके मित्रों में से हमारे होटल में कई व्यक्ति आने-जाने लगे। जॉन उन सबसे मुझे परिचित करवाता और मेरा परिचय उन्हें देता। मेरे रंगरूप का जादू उन पर ऐसा छा जाता कि वे मेरी प्रशंसाओं के पुल बाँधने लगते। कोई मीनाकुमारी से अधिक रूपसी कहता, कोई पद्मिनी से अधिक कोमल। जॉन के मिलनेवालों में से एक उस्ताद भी थे जो म्यूजिक डाइरेक्टर थे। वह जॉन के गहरे मित्रों में से थे। मित्रता के नाते उन्होंने रात के भोजन के लिए हमें निमन्त्रण दे दिया जिसे जॉन ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मेरी इच्छा न रहते हुए भी जॉन के लिए मुझे उनका निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। वे मैरिन ड्राइव में एक किराए के फ्लैट में रहते थे।

"सायंकाल हम दोनों उनके घर पहुँचे। उन्होंने बड़े आदर भाव से हमारा स्वागत किया। खाने की मेज पर बैठते ही 'एक्सा नम्बर वन' की दो बोतलें और गिलास, बरफ, सोडा इत्यादि आ गए। उन्होंने अपने

हाथों से शराब पिलानी आरम्भ की। मेरा विचार है कि वे उस्तादजी मुझसे अधिक जॉन को सन्तुष्ट कर रहे थे और दिल खोलकर जॉन को पिला रहे थे। एकमात्र नम्बर वन का तीव्र नशा जॉन की नस-नस में समा गया। दो पेग मैंने भी लिए थे। स्वयं म्युजिक डाइरेक्टर साहब ने भी दो-तीन पैग चढ़ाए थे।

"जॉन तो एक प्रकार का मदहोश-सा हो कुर्सी पर ढासना लगाकर बैठ गया। सरूर मुझे भी आ रहा था, मेरा माथा भारी हो चुका था, नेत्रों में एक प्रकार की ठडक का-सा आभास मिल रहा था। मेरी पलकें बोझिल हो चुकी थीं, जैसे उन्हीं पर भार आ पड़ा हो। मेज पर खाना चुना गया, जो बहुत स्वादिष्ट और रुचिकर था। खाना खाने के बाद जॉन कुर्सी से उठा। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। वह गिरता-पड़ता सोफे पर जा बैठा और वहीं लेट गया। तब उस संगीत निर्देशक महाशय ने जॉन का ध्यान छोड़कर अपनी पूरी चेतना को मुझ पर केन्द्रित कर दिया। वह मेरे रंग-रूप की प्रशंसा करने लगा। उसके मीठे और चुने हुए शब्द मेरे हृदय को आलोड़ित करने लगे थे। मैं मस्त नयनों से उसकी ओर देख रही थी, वह मेरी आँखों में आँखें डालकर गुनगुना रहा था। उसकी मीठी आवाज़ मेरे कानों में अमृत की वर्षा-सी करने लगी। वास्तव में वह अच्छा कलाकार था। उसकी आवाज़ में मिठास थी और स्वर-ताल का ज्ञाता था।

"उसने मेरे यौवन और सुन्दरता की ऐसी प्रशंसा की कि मैं पानी-पानी हो गई। उसकी गजलें सुनकर तो मैं मस्त हो गई। वह संगीत निर्देशक महाशय लोटन कबूतर की भाँति मेरे चारों ओर गुटकूँ, गुटकूँ करने लगे थे। मुझसे प्यार और मुहब्बत की बातें करने लगे। उसने हाथ पकड़कर चूम लिया, आँखों से लगाया और छाती पर रख लिया। फिर तृषित दृष्टि से देखते हुए मुझसे याचना-सी करने लगा। उस महाशय की मीठी-मीठी बातों ने मुझे इतना मस्त कर दिया कि मैंने स्वयं ही कबूतरी की भाँति उनके आगे ग्रीवा झुका ली। पर जो आनन्द जॉन

के सम्पर्क में मुझे मिलता था, वह इस संगीत निर्देशक महाशय से न मिला। मैं प्यासी ही रह गई और ये महाशयजी निष्प्राण होकर एक ओर पड़ गए।

"दुर्भाग्य से जॉन उस तीव्र नशे की मदहोशी में भी हमारी इस कुकृति को जान गया। वह सोफे से उठा और संगीत निर्देशक के पास आकर उसे गन्दी-गन्दी गालियाँ बकने लगा। मदिरा के नशे में स्यार भी सिंह बन जाते है। सगीत निर्देशक महाशय भी जोश में आ गए और गालियों के उत्तर गालियों मे देने लगे। इस पर जॉन मार-पीट पर उतर आया। उसने क्रोध में भरकर एक कुर्सी उठा उस महाशयजी पर दे मारी। कुर्सी निर्देशक महाशय के सिर पर लगी, जिससे उनका सिर फट गया और रक्त की धारा बहने लगी। रक्त देखकर बड़े-से-बड़े शराबी का नशा भी हरिण हो जाता है। जॉन को भी चेत हो आया। निर्देशक महाशय मूर्छित हो चुके थे।

"जान के मन में भय समा गया कि कहीं निर्देशकजी समाप्त ही न हो गए हों। वह भयातुर होकर, बिना कुछ कहे कमरे से निकल भागा पर मैं अकेली वहाँ पर फँस गई। साथ के कमरे में मार-पीट हुई है, एक व्यक्ति घायल भी हुआ है, झगड़ा दो मतवालों में एक स्त्री के लिए हुआ है, ये सब बातें अड़ोस-पड़ोस के रहनेवालो ने जान ली थीं और पुलिस को सूचना भेज दी थी। पुलिस देखकर तो मेरे होश गुम हो गए। यह किस आफत में फँसाकर जॉन स्वयं निकल भागा? निर्देशक महाशय को अस्पताल पहुँचाया गया और मुझे पुलिसवाले अपने साथ कोतवाली में ले गए।

"मेरी उस समय की अवस्था को तुम लोग नहीं समझ सकोगी बेटी! मुझे तो जैसे काठ मार गया हो। मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर देने पर भी संभवतः रक्त की एक बूँद तक न निकलती। मै थर-थर काँप रही थी। अपने पति से दूर, अपने माता-पिता और घर से दूर, अपने देश से भी दूर, एक अनजाने बम्बई जैसे बड़े नगर में, जहाँ कहने को भी मेरा अपना

कोई नहीं था, वहाँ मैं ऐसी भीषण स्थिति में आ पड़ी। पुलिस मेरा नाम-धाम जानना चाहती थी, पर मैं किस मुख से कह सकती थी कि मैं एक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की पुत्री और प्रख्यात जज की पुत्रवधु हूँ। मुझे हवालात में बहुत तंग किया गया। मुझ पर छींटे कसे गए।

"एक स्त्री जिन अश्लील शब्दों को सुनने से पहले डूब मरना अधिक पसंद करेगी, वही शब्द मुझको कहे गए। पर मैं समझती हूं कि इसमें उन पुलिस वालों का इतना दोष नहीं था। जिस स्थिति में मैं पकड़ी गई थी, मेरी वह स्थिति किसी बाजारू औरत या वेश्या के अनुरूप ही थी। यदि उन पुलिस वालो ने मुझे एक चरित्रहीन स्त्री या वेश्या समझ कर ऐसे अपशब्द कहे तो इसमें उनका क्या दोष है ? मुझे मारा-पीटा तो नहीं गया किन्तु डराया-धमकाया अवश्य गया। परन्तु मैंने उनके एक प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। मैं तो डूबी ही थी पर अपने साथ अपने माता-पिता तथा पति के कुल को कलंकित करने की प्रवृत्ति मुझ में नहीं थी। पुलिस के कर्मचारी मुझे डराते-धमकाते रहे पर मैं केवल रोती रही।

"मैक्स आज जहाज से उतरने वाला था। मैंने मेक्स को अपने विषय में सूचित करने का निश्चय कर लिया और पुलिस इंस्पैक्टर को बुलाकर बता दिया कि आज मेरा एक मित्र लंदन से आने वाला है। साथ में यह भी बता दिया कि मैं अपने उस मित्र को लेने के लिए ही बंबई आई थी।

"इंस्पैक्टर तो मेरे विषय में पहले ही छानबीन करना चाहता था। उसने मेरी बात मानकर तत्परता से इस बात का प्रबंध कर दिया और सायंकाल होने से पहले ही मैक्स को लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मैं मेक्स को पाकर बहुत कुछ निश्चित हो गई। मैक्स को जॉन की सारी कार्रवाई कह सुनाई, जिसे सुनकर वह बहुत क्रुद्ध हुआ। पर जॉन उसके सामने नहीं था जिस पर वह अपना गुस्सा उतार लेता। मैक्स स्वयं में पर्याप्त व्यक्तित्व रखता था। कुछ वर्ष योरप में रहकर वह पूरा अँगरेज बन गया था। उसने न जाने क्या कह-सुनकर हवालात से मुझे छुड़वा लिया और एक अच्छे होटल में लिवा लाया। होटल के कमरे में जाते ही

मैं मैक्स से लिपटकर बच्चों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगी। मैक्स मुझे अपने चौड़े वक्षस्थल से सटाकर प्यार करने लगा था। अब मैं पूर्णतया निश्चिन्त थी। मैक्स को पाकर मेरे सारे दुःख दूर हो चुके थे।

"मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि जितना विश्वास, जितनी निष्ठा मुझे मैक्स पर थी, उसमें आधी भी मुझे अपने पति पर न हो पाई थी। मैं मैक्स के गले से लिपटी हुई खड़ी थी। मैक्स ने अपनी दोनों भुजाओं से मुझे जकड़ रखा था। उसके गरम गरम होंठ मेरे कोमल अधरों का रस-पान कर रहे थे कि अनायास ही दरवाजे को धक्का लगा और वह खुल गया। हम दोनों ने चौंककर उधर देखा। दहलीज पर खड़े हुए मेरे पति फटी-फटी आँखों से हम दोनों को देख रहे थे। उनके मुख का रंग पीला पड़ गया था। मैक्स उन्हें नहीं पहचानता था। पर मैं तो उनकी धर्मपत्नी थी। मुझ पर मानो पहाड़ टूट पड़ा हो। मैं चाहती थी कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ अथवा सागर या तालाब में जाकर डूब मरूँ। मैंने थरथराते और भयभीत शब्दों में उन्हें देखते हुए कहा, 'आप ?'

"मेरी बात सुनकर उन्होंने एक आह भरते हुए उत्तर दिया, 'हाँ, मैं ही हूँ सरला! क्षमा करना, मैं असमय में पहुँचा। किन्तु यह टेलीग्राम......

"इतना कहकर उन्होंने अपने कोट की जेब में से टेलीग्राम निकाला और मेरी ओर फेंक कर उलटे पाँव लौट गए। मेरा मन अनेक प्रकार की शंकाओं से धड़कने लगा। अब क्या होगा? क्या मेरा संसार लुट गया? क्या मैं जीवन भर के लिए त्यक्ता हो गई?

"यही सोचती हुई मैं किंकर्तव्य विमूढ़-सी खड़ी रही थी। मेरे पति ने एक बार मुड़कर भी मेरी ओर नहीं देखा था।

"मैक्स ने तार का कागज जो मेरे पति फेंक गए थे, उठाया और पढ़ा, तार मेरी ओर से लिखा था कि 'मैं संकट में हूँ शीघ्र आइए।'

"जिस होटल में मैं और जॉन ठहरे थे उसका पता और मेरा नाम

लिखा हुआ था । मैं समझ गई जॉन ने अपनी ओर से मेरी रक्षा का यही सरल उपाय निकाला था, पर उनकी इस दया ने मेरा सारा संसार चौपट कर दिया । मुझे कहीं मुँह दिखाने के योग्य भी न रखा । मैं समझ गई कि मेरे पति जॉन द्वारा मेरी ओर से लिखी गई इस तार को पाकर ही वायुयान द्वारा बंबई आ पहुँचे होंगे और होटल में पूछते पता लगाते यहाँ तक आ पहुँचे होंगे ।

"मैं हताश-सी कुरसी पर बैठ गई थी । मैक्स कुछ भी नहीं समझ पाया था । उसने मुझसे एक-एक कर सभी बातें जान लीं । मेरे विवाह की बात सुनकर मैक्स ने बहुत दुःख प्रकट किया । वह मेरे कारण इंगलेंड में एक मिस को छोड़ कर चला आया था, जो कुछ दिन उसके सम्पर्क में रहकर उससे विवाह करने को राजी थी और भारत आने को भी तैयार हो गई थी । मुझे विवाहित जानकर मैक्स को बहुत निराशा हुई, परन्तु मैंने उसे समझाते हुए कहा, 'दुःखी न होओ मैक्स ! भाग्य ने स्वयं ही रास्ता साफ कर दिया है । मेरे पति मुझे तुम्हारे आलिंगन में देख गए हैं । अब मैं उनके योग्य नहीं रही । मैं पहले भी तुम्हारी थी, अब भी तुम्हारी होकर रहूँगी ।'

"परन्तु मेरी इस बात से भी मैक्स प्रसन्न न हुआ । उसने उत्तर दिया, 'तुम्हारा कहना सत्य भी हो सकता है, सरला ! बंगाली समाज में प्रायः ऐसी बातें हुआ करती हैं । तनिक-सी भूल पर स्त्री को सदा के लिए त्याग दिया जाता है । इसी कारण तो बंगाल में मुसलमानों और इसाइयों की वृद्धि हुई है और वेश्याओं के कोठे भी आबाद हुए हैं । हमारा परिवार भी किसी अनाचार से पीड़ित हो हिन्दूधर्म को छोड़कर ईसाई बन गया था । परन्तु बिना वैधानिक कार्रवाई हुए मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकूँगा । पहले तुम अपने पति से तलाक़ ले लो । जब तुम पति से स्वतंत्र हो जाओगी तभी मेरा और तुम्हारा विवाह हो सकेगा ।'

"मैंने सोचकर उत्तर दिया, 'मैं उनसे किस प्रकार तलाक़ ले सकती हूँ ? उन पर कौन-सा अभियोग लगाकर तलाक़ पाने का प्रार्थना-पत्र दूँ ?

उन्होंने आज तक मेरा किसी भी प्रकार का अहित नहीं किया, बल्कि स्वयं मैंने ही उनको धोखा दिया है। वे स्वयं मुझे तलाक़ दें तो मैं उन्हें मनाही नहीं करूँगी। परन्तु मैं स्वयं उनके विरुद्ध कोई प्रार्थना-पत्र न भेजूँगी।'

"मेरी बात सुनकर मैक्स ने क्षुब्ध होकर कहा, 'जैसे भी हो तुम्हें अपने पति से तलाक़ लेना ही होगा सरला! तभी तुम्हारा और मेरा जीवन सुखी हो सकता है।'

"मैंने मैक्स की इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। मेरे लिए क्या श्रेयस्कर होगा, मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं, मेरा घर लौटना उचित है कि अनुचित? मेरे माता-पिता मेरी नीचता को जानकर मुझसे कैसा वर्ताव करेंगे? मेरे पति के साथ मेरी कैसे निभेगी? ये सब कुछ मैं भी न जान सकी थी।

: १२ :

"हम चार दिन तक बम्बई में रहे। जी भरकर वहाँ की सैर की। जो दर्शनीय स्थान थे वे सब हमने देखे। पर मेरे मन की व्यथा तनिक भी कम न हुई। जब मैं मैक्स के सम्पर्क में आती तो कुछ क्षणों के लिए सब कुछ भूल जाती। पर तत्काल ही मुझे चिन्ताएँ आ घेरतीं, करवटें बदल-बदलकर रात काट देती। मुझे बुरे-बुरे स्वप्न आते थे।

"चार दिन बाद हमने कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया। जैसे-जैसे कलकत्ता निकट होता गया, मेरा मन व्यथित और अधीर होता गया। अन्त में मैंने अपने आपको भाग्य के ऊपर छोड़ दिया। मैं चाहती थी कि जो कुछ होनेवाला है वह शीघ्र होकर टल जाय। मैंने यह दृढ़ निश्चयकर लिया कि मैं किसी के सामने नहीं झुकूँगी। किसी की याचना नहीं करूँगी। मुझसे क्रुद्ध होकर मेरे माता-पिता या पति मुझे घर से ही तो निकाल देंगे? मुझे इसकी चिन्ता नहीं थी। मेरा मैक्स मेरे साथ था। मैं निराश्रय नहीं थी।

"इसी उधेड़बुन में हम कलकत्ता आ पहुँचे। मैक्स ने अपने कलकत्ता पहुँचने की सूचना अपनी बहन हैलन को भेज दी थी। मैं यह जानना चाहती थी कि मेरे पति, मेरा जो कुछ देख गए हैं, उसकी उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई है। यह शीघ्र ही जान लेने के लिए मैंने अपने पति और अपने माता-पिता को सूचना दे दी थी। मेरे साथ होनेवाले उनके व्यवहार का आभास मुझे कलकत्ता स्टेशन पर ही मिल जाने वाला था। अपने प्रति उनके व्यवहार से ही मैं समझ लेती कि मेरे पति और मेरे परिवार वालों के मन में मेरा क्या स्थान है। पर कलकत्ता स्टेशन पर केवल मेरे ही माता-पिता नहीं आए, बल्कि मेरे पति, अपनी माँ और छोटी बहिन मीना के साथ मेरी प्रतीक्षा में प्लेटफार्म पर खड़े थे। मुझे देखते ही उन सब के मुख खिल उठे, मीना मुझसे लिपट गई। रंज अथवा क्रोध का आभास मात्र भी मुझे न मिला।

"मैं सबसे मिली, पर उनकी ओर नेत्र उठाकर देखने का साहस न हुआ। मैं स्टेशन पर आनेवाले सबका अपने प्रति सहृदय व्यवहार देखकर यह तो समझ गई कि मेरे पति ने मेरे विषय में किसी से कुछ भी नहीं कहा। यह जानकर मैं मन-ही-मन लज्जा से पानी-पानी होने लगी। मेरा मन चाहने लगा कि मैं उनके पाँवों पर अपना माथा टेककर उनसे क्षमा माँग लूँ। ऐसा देवता पति पा लेना मेरे लिए कम सौभाग्य की बात नहीं थी। परन्तु मैं जो कुछ मन में सोचती थी, काश, उसे क्रियात्मक रूप में भी कर सकती। पर नहीं, मुझसे ऐसा न हो सका। मैं पढ़ी-लिखी आधुनिक वातावरण में पली-पनपी युवती, गँवार रमणियों की भाँति अपने पति के पाँवों पर अपना माथा न टेक सकी।

"हमारा सामान उतरवाया गया और बाहर कार में रखवा दिया गया। मैक्स को मेरे माता-पिता तो जानते ही थे, मेरे पति ने भी उसका अनादर न किया। हैलन अपने भाई को लेने के लिए आई हुई थी, पर जॉन नहीं आया था। संभवतः मेरे सामने होने का उसे साहस ही नहीं हुआ होगा।

"मैक्स और हैलन मेरे पिता की कार में बैठकर उन्हीं के साथ अपने घर चले गए। मैं अपने पति के साथ अपनी ससुराल मे चली आई। जिन आशंकाओं को अपने मन में लेकर मैं अधमरी-सी होती जा रही थी, यहाँ उनका आभास मात्र भी न मिला। नौकर-चाकर, सास-श्वसुर सभी मुझे आदर से मिले। यह देखकर मेरे मन में पति के लिए श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि आज से अपने पति की निष्ठावान पत्नी बनकर रहूँगी। मैं अपने कमरे में जा कपड़े इत्यादि बदल स्नानागार में चली गई। लौटने पर ज्ञात हुआ कि मेरे स्वामी कचहरी जा चुके हैं। उन दिनों वे भी वकालत की प्रैक्टिस किया करते थे। मैं भोजन इत्यादि करने के बाद अपने कमरे में जाकर लेट गई। मीना भी स्कूल जा चुकी थी। अकेले में सिवाय सोने के मेरे पास और कोई भी कार्य नहीं था। दिन मेरा सोकर कटा।

"सायंकाल मैं उठी और उनकी प्रतीक्षा करने लगी। मैंने मन-ही-मन बहुत प्रकार के संकल्प बना रखे थे। संध्या गहरी होने लगी। घर में बत्ती जल गई, पर वे लौटकर मेरे कमरे में न आए। मेरा मन कुछ चिंतित हो उठा। मेरे जीवन में यह पहला अनुभव था कि मैं किसी की प्रतीक्षा में अधीर हो रही थी। काश, वे आ जाते तो मैं अपने हाथों से उनके वस्त्र उतार यथास्थान रखती। उनका जूता उतारकर स्वयं ठिकाने पर लगा देती, उनका हाथ-मुँह धुलवाती, फिर अपने सामने बैठा-कर जलपान करवाती, यही मेरे मन की पूर्ण अभिलाषा थी, पर वे नहीं आए। नौकर से पूछने पर ज्ञात हुआ कि बाबू आए तो अवश्य थे परन्तु बाहर बैठक में ही अल्पाहार लेकर मीना को साथ ले घूमने निकल गए हैं।

"यह बात सुनकर मेरा मन जल उठा। जिनकी प्रतीक्षा में मैं अपने नयन बिछाए बैठी थी, जिनके लिए अपने हृदय में मधुर भावनाओं की मालाएँ गूँथे बैठी थी, वे घर पहुँचकर भी मुझे देखने तक न आए। उन्होंने मेरी उपेक्षा की। वे अवश्य मन-ही-मन मुझ से घृणा करते

होंगे। मेरे अन्तःस्थल में पुनः उच्छृंखल विचारों ने सिर उठाया। मेरा मन विद्रोही हो उठा। मैं आवेश में आकर बिना किसी से कुछ कहे या पूछे घर से निकल गई। मैंने अपने ऊपर, अपने पति का यह अत्याचार समझा। कोठी से बाहर निकल कर टैक्सी की और मैक्स के घर पहुँच गई। वह घर में ही था। मुझे देखते ही खिल उठा। मुझे बाहुपाश में कसकर मनमाना प्यार करने लगा। फिर गोदी में उठाकर मुझे सोफे पर बैठा दिया और बोला, 'मुझे आशा नहीं थी डार्लिंग! कि तुम इतनी शीघ्र आ जाओगी। सुसराल में कुशल तो है?'

"मेरा मन तो खीझ ही रहा था। मेरे मुख से अपने पति के विरुद्ध कुछ अनुचित शब्द निकलते-निकलते रुक गए। मैंने इसमें अपना ही अपमान समझा। किस मुख से मैक्स से कहती कि मेरे पति ने मेरा तिरस्कार किया है। मैंने इस बात को टाल देने के उद्देश्य से उत्तर दिया, 'घर में अकेली थी, जी नहीं लगा। तुम्हारे साथ थोड़ा बहुत घूम-फिर आने के उद्देश्य से चली आई हूँ।'

'अकेली क्यों थी? तुम्हारे पति क्या घर में नहीं थे?'

'वे किसी कार्यवश चले गए थे।'

'तो चलो कहाँ चलने का विचार है?'

'जहाँ कुछ समय मन बहल सके, वहीं चलो।'

'अच्छा', कहकर मैक्स उठा और कपड़े बदलकर मुझे साथ ले सड़क पर आ गया। वहाँ से टैक्सी में बैठकर हम फिरपो मे पहुँचे। उस दिन उस होटल में कोई फिल्मी अभिनेता ठहरा हुआ था, जिसके कारण होटल गहमागहम भरा हुआ था। पर हमें एक ओर दो सीटें खाली मिल गई। हमने वहाँ बैठकर डिनर लिया और कुछ पैग शैम्पियन के भी चढ़ाए। होटल का बिल चुकताकर सड़क पर आकर टैक्सी की और बुटैनिकल गार्डन की ओर निकल गए।

"रात चाँदनी थी। समय बहुत सुहावना प्रतीत हो रहा था। वहाँ पहुँच हम एक ओर खाली बेंच पर बैठ गए। मैक्स ने पुनः मुझे अपने

बाहुपाश में जकड़ लिया। अपना सब कुछ भूलकर हम दोनों एक दूसरे की इच्छापूर्ति करते रहे। समय अधिक हो चुका था। टैक्सी ड्राइवर हमें खोजता हुआ आया और वापिस लौटने अथवा दाम दे देने के लिए कहने लगा। उसकी बात सुनकर हमारी चेतना लौट आई। हम दोनों उठे और टैक्सी में बैठकर घर लौट आए। टैक्सी मेरे ससुराल वाले घर के बाहर रुकी। मैं टैक्सी से उतरकर सोच में पड़ गई। बाहर का फाटक बंद था। किसी को पुकार कर फाटक खुलवाने का मेरा साहस नहीं हुआ। मैक्स उसी टैक्सी में बैठा हुआ अपने घर चला गया था। मैं कुछ क्षण किंकर्तव्य विमूढ़-सी खड़ी रही। अनायास ही फाटक खुला। मैंने देखा फाटक खोलने वाला कोई चौकीदार या नौकर नहीं था। स्वयं मेरे पति थे। मेरा मन धक-धक करने लगा। मेरे मुख से मदिरा की गंध आ रही थी। पर मैं अचेत नहीं थी। उन्हें देखकर मैं एक बार तो डरी। मेरे पैर मुझे मन-मन भर के भारी प्रतीत होने लगे। कोठी में प्रविष्ट होने के लिए मुझ से पग तक भी न उठाया गया। मेरी ऐसी दशा देखकर उन्होंने कहा, 'आओ सरला! कब तक बाहर खड़ी रहोगी?'

"उनकी वाणी में क्रोध का लेश मात्र भी नहीं था। जैसे जो कुछ भी मैंने किया है अथवा जिस अवस्था में भी मैं हूँ, वे उसे कुछ महत्व नहीं दे रहे थे। पर मेरे मन में चोर था। मैं भयातुर हो रही थी, हृदय में शंका उठ रही थी कि वे कहीं कमरे में ले जाकर मुझे डाटें-डपटें या मारें नहीं। परन्तु बिना कोठी में प्रविष्ट होने के और कोई चारा नहीं था। सड़क पर खड़े रहकर तो रात काटी नहीं जा सकती थी। बाध्य होकर धड़कते कलेजे से मैंने पग बढ़ाया। वे फाटक बन्द करके मेरे पीछे-पीछे चले आए। मैंने कमरे में पहुँचकर कपड़े बदले और सोने का उपक्रम करने लगी। वे सोफे पर बैठे मेरा सभी कुछ देख रहे थे। मैं भी कनखियों से एकाध बार उन्हें देख लेती। जब मैं सोने लगी तो उन्होंने कहा, 'तुम्हारा भोजन मैंने यहीं मँगाकर रखवा लिया है सरला! खाओगी नहीं क्या?'

"उनकी बात मानों मेरे हृदय में तीर की तरह लगी। मैं मन-ही-मन यह सोचकर लजाने लगी कि इन्हें मेरा इतना ध्यान है, मेरी प्रतीक्षा में अभी तक जाग रहे हैं। मैं भूखी न सोऊँ इसलिए मेरा भोजन तक यहाँ मंगवा रखा है। मैं बहुत पछताई। जी में आया कि उनसे क्षमा माँग लूँ पर किसी के सामने ग्रीवा झुकाकर चलने अथवा गिड़गिड़ाने का मेरा स्वभाव नहीं था। मैं ऐसी बातों को कुसंस्कार समझती थी, अशिष्टता समझती थी। मैंने कुछ ही क्षणों में उन विचारों को झाड़-पोंछकर अलग कर दिया और स्वाभाविक वाणी में बोली, 'भोजन तो मैं कर आई हूँ।' उन्होने ग्रीवा उठाकर मेरी ओर देखा और एक दीर्घ आह भरते हुए हलकी-सी, फीकी-सी नीरस मुस्कुराहट में बोले, 'अच्छा! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा था। यदि तुम चाहो तो सो सकती हो। मैं थोड़ा कुछ अपने पेट में डाल लेता हूँ।'

"उनकी यह बात सुनकर मेरे हृदय में खलबली मच गई। मेरे लिए अभी तक भूखे बैठे हैं, यही आशा लेकर कि मेरे आने पर मेरे साथ बैठ कर खाएँगे। इतना प्रेम इन्हें मुझसे है, मुझ चरित्रहीना से। मेरा सब कुछ जानते हुए भी इन्होंने मुझसे घृणा तक नहीं की। कुछ कहा नहीं, डाँटा नहीं, मेरा अपमान तक नहीं किया। मैं मन-ही-मन विकल हो उठी, पर मुझसे इतना तब भी न हो सका कि उनसे क्षमा माँग लूँ या उनके साथ बैठकर दो कौर खा लूँ; बल्कि उल्टा उन्हीं को डाँटते हुए कहा, 'आप भी विचित्र व्यक्ति हैं, मेरी प्रतीक्षा में इतनी देर भूखे बैठे रहने से आपको क्या लाभ हुआ?'

"वे आश्चर्यवत् मेरा मुख देखने लगे। उनके नेत्रों में करुणा थी, स्नेह था, पर मुझे यह सब काँटे की तरह गड़ने लगा। मैं मन-ही-मन खीझ रही थी। मुझे उनकी सायंकाल वाली मेरी उपेक्षा भूली नहीं थी, घर पहुँचकर भी वे मुझे देखने नहीं आए थे। मैं आवेश में तो थी ही। पलंग का तकिया सरकाकर दूसरी ओर रखने लगी तो उसके नीचे सिनेमा के तीन टिकट दिखाई दिए। मैंने पूछा, 'ये टिकट कैसे हैं?'

'मैं कचहरी से लौटकर तुम्हारे, अपने और मीना के लिए सीटें सुरक्षित करवा आया था।'

"उनकी वह बात सुनकर मेरे मन को धक्का लगा। तो मेरे कमरे में न आकर वे सीट रिजर्व करवाने चले गए थे? मैंने कितनी बड़ी भूल की थी? मैं अपनी कृति पर पछताने लगी। मैं हैरान थी कि वे मुझे डाँटते या बुरा-भला क्यों नहीं कहते?

"मेरे दुराचरण के बदले मुझे उनका तिरस्कार मिलना चाहिए था, उनकी डाँट-डपट चाहिए थी, उनका प्यार या दया नहीं। वे उठकर यदि दो थप्पड़ मार देते तो मुझे शान्ति मिलती पर इसके विपरीत उनका स्नेह पाकर मेरे तन-बदन में आग लग गई।

"मैं धप-से पलंग पर लेट गई, मेरे नैन छलछला आए। मेरे हृदय में तीव्र वेदना थी। मैं नशे में तो थी ही, आँख लग गई। मैं नहीं जानती थी कि उन्होंने कुछ खाया था या नहीं। रात भर वे मेरे साथ पलंग पर सोये या नहीं या प्रथम रात्रि की भाँति सोफे पर पड़े रहे थे। मुझे इन सब बातों की चिन्ता भी नहीं थी।

: १३ :

"प्रातः जब मेरी आँख खुली, दिन अधिक निकल चुका था। वे मुझसे पहले उठकर नित्य कार्यों की निवृत्ति के लिए बाथरूम में जा चुके थे। मेरा मन शान्त हो चुका था। रात की बातें मुझे स्मरण थीं। मैं चाहती थी कि उनके लिए कुछ करूँ।

"स्त्री जब किसी पुरुष को अपना आप समर्पण करती है तो उस पुरुष के छोटे-से-छोटे कार्य को अपने हाथों से करना चाहती है। रात को सोने से पहले मैंने जो व्यथा पाई थी और प्रातः उठकर पलंग पर लेटे ही लेटे मैंने जो निश्चय किया था, उसका सारांश यही था कि मैं अपनी सेवा से अपने पति को संतुष्ट कर लूँगी। उनके मन में मेरे प्रति यदि कुछ बुरी भावनाएँ भी हैं तो मैं उन सबको अपने सेवा-कार्यों से

धो-पोंछ दूँगी । इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर मैंने पलंग से उठ सर्व प्रथम उनके कपड़ों इत्यादि की व्यवस्था करनी चाही। मैंने अपने मायके से मिला उनका अच्छे-से-अच्छा सूट निकाला, कमीज़ निकाल कर उसके बटन इत्यादि देखे । मुझे इन सब कार्यों में बहुत आनन्द मिल रहा था ।

"मैं प्रफुल्लित मन से सोच रही थी कि वे स्त्रियाँ कितनी सौभाग्यवती हैं जो अपने पति के लिए, उनके सब कार्य स्वयं अपने हाथों से करती हैं । यह सेवा ही तो पुरुष को नारी का गुलाम बनाती है । कुछ देकर ही कुछ पाया जाता है । आजकल की उच्छृंखल मनोवृत्ति वाली नारियाँ अन्य स्त्रियों को इन कामों में देखकर उन्हें गुलाम या दासी कहकर चिढ़ाती हैं, उन पर लाँछन लगाती हैं, पर वे क्या जानें कि प्रेम किसी के लिए मिटना ही सिखाता है, किसी को मिटाना नहीं । प्रम देना जानता है लेना नहीं। सर्वस्व त्याग ही प्रेम का लक्षण है । प्रेम के बदले प्रेम अथवा सेवा के बदले सेवा चाहना, यह सौदेबाजी है, यह स्वार्थ है, कोरा स्वार्थ । इसे प्रेम नहीं कहा जाता । स्वार्थ में ही दुःख, क्षोभ, मान, अपमान इत्यादि की भावनाएं रहती हैं । सच्चे प्रेम में ये कीटाणु नहीं होते । वह उतना ही निर्मल होता है जितना गंगाजी का जल ।

"हाँ तो मैं वस्त्र इत्यादि ठीक कर उनके बूट ले बैठी । अभी उन पर पालिश ही लगा पाई थी कि वे स्नानादि से निवृत्त होकर लौट आए और मुझे जूते पालिश करते देख आश्चर्य से बोले, 'अरे, यह तुम क्या कर रही हो सरला ? नौकर क्या मर गए हैं ? छोड़ो, छोड़ो । ये सब काम तुम्हारे नहीं हैं ।'

"इतना कहकर उन्होंने नौकर को आवाज दी । नौकर के आ जाने पर उसे डाँटते हुए बोले, 'अरे तुम लोगों से मेरे बूट भी साफ नहीं हो सकते ? इतने आदमी तुम लोग करते क्या हो सारा दिन ? उठाओ बूट और पालिश करके लाओ ।'

"नौकर बेचारा उनकी डाँट सुनकर सूख-सा गया । उसे यह भी

कहने का साहस न हुआ कि साहब प्रतिदिन यह सब काम हम ही तो करते हैं।'

"पर मेरा मानो सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। मेरे मुख पर जैसे किसी ने तमाचा मार दिया हो। मैं अपनी रुचि से उनके सेवा-कार्य में लगी थी। उन्होंने मुझे मेरे कर्तव्य से वंचित कर दिया। मेरा अभिमान जाग उठा, पतिसेवा का बुखार उतर गया। मैं उठ गई। वे मेरी ओर देखकर मुस्कुराते हुए बोले, 'यह सब छोटे काम यदि तुम अपने हाथों से करने लगोगी सरला! तो ये नौकर-चाकर कामचोर हो जाएँगे।'

"इतना कह उन्होंने अपना ट्रंक खोलकर पहनने के वस्त्र निकाले और पहनने लगे। मेरे निकाले कपड़ों की ओर उन्होंने देखा तक नहीं। मेरे तन-मन में मानो आग लग गई। मुझे अपने पर, अपनी छोटी प्रकृति पर घृणा हो आई। मैं अपने आपको अपमानित समझने लगी। मैं सोचने लगी थी क्या मैं इतनी छोटी हो गई हूँ कि मैं उनके जूते साफ करने बैठ गई थी? ऐसी छोटी बुद्धि मुझमें कहाँ से आ गई? मैंने एक बार उन्हें देखा और कमरे से बाहर निकलकर बाथरूम की ओर चली गई। मेरे स्नानादि से निपट कर आने से पहले ही वे जा चुके थे। मेरे लिए सिवाय कमरे में अकेले रहकर या सोकर दिन काटने के और कोई कार्य नहीं था। मैं सारा दिन मन-ही-मन क्षुब्ध और तनी हुई बैठी रही। बैठे बैठे मेरा मन उकता चुका था। सायंकाल उनके लौटने से पहले ही मैं सजधज कर कोठी से बाहर निकल गई। जले मन को लेकर मैत्रस के घर जाने की प्रवृत्ति भी मेरी न हुई। मैं अपनी सहेली शोभा के घर की ओर चल दी। मैंने टैक्सी की और कुछ ही समय में वहाँ जा पहुँची। शोभा घर में अकेली ही नहीं थी, दस-बारह अन्य लड़कियों का वहाँ जमघट भी था और उन्हीं में हमारे कॉलेज की प्रोफेसर मिस चित्रा भी उपस्थित थीं। मुझे देखते ही शोभा प्रसन्नवदन मेरी ओर लपकी और हँसती हुई बोली, 'अरे सरला! तुम? आज इधर कैसे रास्ता भूल पड़ीं? तुम्हारे पतिदेव ने तुम्हें छुट्टी कैसे दे दी?'

"मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया, 'मेरे पति ने मुझे क्या बाँधकर रखा है, जो उनके छुट्टी देने पर ही घर से निकलती ?'

"मेरी बात सुनकर प्रोफेसर चित्रा ताली बजाती हुई बोली, 'बहुत अच्छे, बहुत अच्छे !! स्त्री स्वयं अपने आपको यदि किसी की दासी स्वीकार न करे तो किसी की सामर्थ्य नहीं जो स्त्री को दासी बनाकर रख सके। यही भावना हम सब में होनी चाहिए। तभी स्त्री जाति सुखपूर्वक जी सकती है।'

"मैंने शोभा से पूछा, 'पर आज यहाँ है क्या शोभा ? कहीं अपने विवाह का निमन्त्रण तो नहीं दे रखा इन सबको ?'

"जब से तुम ब्याही हो, तुम्हारी सूरत तक देखनी कठिन हो गई है सरला ! सौभाग्य से ही आज इधर आ निकली हो। हमें तुम्हारी बहुत आवश्यकता थी।'

"मैंने विस्मय में पूछा,'मेरी आवश्यकता ? किसलिए ? क्या बात है ?'

'आओ बैठो, सभी कुछ बताती हूँ। पहले इन सबसे तुम्हारा परिचय करवा दूँ।'

"यह कहकर उसने एक-एक लड़की से मुझे परिचित करवाया और उन सबको मेरा परिचय दिया। सभी लड़कियाँ उसकी एम० ए० की सहपाठिनी थीं। फिर उसने कहा, 'प्रिंसिपल मिस चित्रा की प्रेरणा से हमने एक "नारी कल्याण संस्था" बनाई है, जिसका उद्देश्य पिछड़ी भारतीय नारी को सन्मार्ग पर लाना और उन्हें मनुष्य बनाना है। उन्हें पुरुषों की दासता से मुक्त करवाना ही हमारा मुख्य ध्येय है। हम चाहती हैं कि तुम भी इस कल्याण-कार्य में सहयोग दो।'

"मैं तो पहले ही ऐसा कोई मन-बहलाव का कार्य चाहती थी, जिसमें लगी रहकर मेरा समय निर्विघ्न व्यतीत हो जाया करे। मैंने चट से उत्तर दिया, 'मैं तुम सब के इस शुभ कार्य में सक्रिय भाग लेने को तैयार हूँ। मुझे भी तुम लोग अपनी संस्था की सदस्या बना लो।'

"मेरी बात सुनकर सब लड़कियों ने हर्ष से हल्की-सी करतल ध्वनि

की। मिस चित्रा ने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा, 'मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी सरला ! स्त्री-जाति के कल्याण की भावना प्रत्येक सुशिक्षित भारतीय नारी में होनी चाहिए। तुम भला इस शुभ कार्य से किस प्रकार पीछे रह सकती थीं।'

"मैंने कहा, 'पर मैं तो कुछ नहीं जानती प्रोफ़ेसर चित्रा ! कि मुझे क्या करना होगा ? इसलिए आप ही मेरा पथ-प्रदर्शन करें।'

"शोभा ने कहा, 'सर्वप्रथम तो हमें कुछ धन एकत्रित करना चाहिए। बड़े-बड़े धनाढ्य परिवार की महिलाओं को अपनी संस्था का सदस्य बनाना चाहिए। तत्पश्चात् स्त्रियों के कल्याणार्थ किसी योजना को निश्चित कर क्रियात्मक रूप में कार्य करना चाहिए।'

"सब लड़कियों ने शोभा का समर्थन किया। वह पुनः कहने लगी, 'सर्वप्रथम हम स्वयं आपस में ही कुछ चन्दा एकत्रित करें। तदनन्तर अन्यों के घर जाने-आने की बात सोचें। क्योंकि आने-जाने में जो टैक्सी इत्यादि पर व्यय होगा, वह किसी एक के सिर का बोझ न बने।'

"यह कह उसने स्वयं अपने पर्स में से दस-दस के दो नोट निकालकर मेज पर रख दिए। अन्य लड़कियों में से किसी ने दस, किसी ने पाँच रुपये निकालकर रख दिए। मैंने अपना पर्स खोला और उसमें से पाँच नोट दस-दस के निकालकर मेज पर रख दिए। प्रोफ़ेसर मिस चित्रा ने इतना मात्र कहकर जान छुड़ा ली, 'क्षमा करें, मैं घर से इस कार्य के लिए तैयार होकर नहीं आई थी।'

"हमने दूसरे दिन के कार्यक्रम का निश्चय कर लिया कि कल से ही धनाढ्य घरों की पत्नियों से मिलकर उन्हें अपनी संस्था को चन्दा देने और सदस्या बनने के लिए प्रेरित करेंगी। यही निश्चय हुआ था। इसी प्रकार इधर-उधर की बात-चीत में लगभग दो घण्टे का समय व्यतीत हो गया और एक-एक करके सभी लड़कियाँ विदा हो गईं। पर शोभा ने मुझे और प्रोफ़ेसर चित्रा को रोक रखा था।

"मिस चित्रा, जिन दिनों मैं कॉलेज में पढ़ती थी, उन दिनों गणित

की प्रोफेसर थीं। उनकी आयु लगभग तीस को पारकर चुकी थी, पर अभी तक अविवाहित थीं। शोभा ने हमें चाय इत्यादि पिलाई। कुछ समय औपचारिक बातचीत होती रही। तदनन्तर हम तीनों वायु-सेवन के लिए घर से निकल पड़ीं। हमने टैक्सी पकड़ी। धर्मतल्ला, भवानीपुर घूम-फिरकर हम तीनों अलग हुईं और अपने-अपने घर की ओर चल दीं। मेरे घर पहुँचने तक रात्रि के दस बज चुके थे।

"मैं बँगले के बाहर तक ही पहुँच पाई थी कि किसी ने पीछे से मुझे पुकारा। मैंने घूमकर देखा, जॉन था। मेरी दृष्टि अभी जॉन की ही ओर थी कि अनायास ही फाटक खुलने का चड़-चड़ शब्द हुआ। मेरा हृदय काँप गया। मैंने एक बार फाटक की ओर देखकर, पुनः अपने पीछे जॉन को देखा, पर वह अँधकार में कहीं विलीन हो चुका था। मेरी जान में जान आई। इतने में मेरे पति की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी, 'आ जाओ सरला!'

"मेरा हृदय पुनः धक-धक करने लगा, पर मैं जी कड़ाकर के लॉन में से होती हुई अपने कमरे की ओर चल दी। वे मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उनकी यह ढिठाई मुझे बहुत भद्दी लग रही थी। इतने नौकर-चाकर अथवा चौकीदारों के होते हुए भी वे स्वयं फाटक खोलने क्यों आते हैं? इसीलिए न कि वे मुझे लज्जित करें, मुझे अपमानित करें। मैं क्रोध में उबल रही थी। कमरे में प्रविष्ट होते ही मैंने मुड़कर क्षुब्ध होते हुए उन्हें कहा, 'यह आपकी कैसी आदत है? आप स्वयं क्यों मेरे लिए जागते रहते हैं? क्या घर के नौकर-चाकर मुझे फाटक नहीं खोल सकते?'

"मेरी डाँट सुनकर भी वे कुछ क्रुद्ध नहीं हुए, केवल मुस्कुरा भर दिए। उनकी इस मुस्कुराहट ने मेरे जलते हृदय पर मानो पेट्रोल छिड़क दिया। मैं भड़क उठी और कड़ककर बोली, 'आप इस प्रकार मेरी हँसी क्यों उड़ाते हैं; मेरा अपमान क्यों करते हैं? मुझे जलाने के लिए ही आपने मेरे साथ विवाह किया है। मैं किसी की दासी बनकर रहने नहीं आई। मेरे माता-पिता आपसे अधिक धनवान हैं। मैं किसी कंगाल घर की पुत्री नहीं हूँ

जो आप मुझे सताने पर तुल गए हैं ।'

"न जाने मैंने अपने आवेश में उन्हें क्या क्या कहा ! उन्हें नीच और कापुरुष कह डाला, पर उनके माथे पर बल तक न पड़े । वे वैसे ही मूर्तिवत् मेरे सामने खड़े रहे । उनके नेत्रों में क्रोध नहीं था, केवल दया थी, जो मुझे सहन नहीं हो रही थी । मेरे नेत्र भर आए । मैंने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । मुझे इस प्रकार न देखो । नहीं चाहिए तुम्हारी दया, नहीं चाहिए तुम्हारा प्यार । तुम मुझसे घृणा करो, मुझे पीटो, घर से बाहर निकाल दो । तुम सब कुछ जान-बूझ कर भी मुझसे प्रेम बनाए बैठे हो । मुझे ठुकरा क्यों नहीं देते ? मेरी बोटी-बोटी कटवाकर फिकवा क्यों नहीं देते ? मैं सत्य कहती हूँ । वह सब मुझे इतना असह्य नहीं होगा, जितना कि तुम्हारा प्रेम । मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । मुझ पर यह दया न दिखाओ ।'

"मेरा इतना गिड़गिड़ाना, क्रुद्ध होना, बक-झक करना सब व्यर्थ गया । उनके मन पर मानो किसी बात का स्पर्श तक न हुआ । वे उसी प्रकार करुणा दृष्टि से मुझे देखते रहे । मेरे अन्तर में बवंडर-सा मच उठा । मैं हित-अहित को भूल गई । उनकी दयादृष्टि मेरे हृदय को बींध-सी रही थी । मैंने नीच, कापुरुष, नपुंसक कहते हुए अपना पर्स उनके मुख पर दे मारा, पर वे तनिक भी विचलित न हुए । मैं सर्व प्रकार से पराजित हो गई और उन्हीं के गले से लिपटकर बच्चों की भाँति बिलख-बिलखकर रोने लगी । उन्होंने मुझे अपने बाहुपाश में ले लिया और अपना कोमल कपोल मेरे सिर पर टेक दिया । स्नेह और ममता से मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए रुँधे गले से बोले, 'मैं जानता था तुम स्वयं ही एक दिन समझ जाओगी सरला ! मेरे क्रुद्ध होने की तो इसमें कोई बात ही नहीं । मैंने तुम्हें सुखी रखने का वचन दिया है और यथाशक्ति इसका पालन करूँगा ।'

"उनके ये शब्द सुनकर मारे रुलाई के मेरा कलेजा उछलकर मुँह को आने लगा । मैं उनके चौड़े वक्षस्थल पर अपना मुख रगड़ने लगी ।

मानो मैं उनके विशाल और शान्त हृदय में समा जाना चाहती थी। नेत्र उनके भी भर आए थे। वे पुनः कोमल वाणी में बोले, 'अब चुप हो जाओ। घर वाले यदि सुन लेंगे तो न जाने क्या सोचने लगेंगे। चलो खाना खा लो।'

"यह कह उन्होंने मुझे एक कुर्सी पर बैठा दिया और जिस मेज पर थाल में खाना परोस रखा था, उसको सरका कर मेरे आगे कर दिया और मेज की दूसरी ओर कुर्सी डालकर स्वयं उस पर बैठ गए। उन्होंने परसे हुए खाने पर से तौलिया उठाया और स्वयं हाथों से भोजन का एक ग्रास मेरे मुँह की ओर बढ़ा दिया। मेरी हँसी निकल गई, जिसे देख वे भी हँस दिए। मैंने अपना मुख खोल दिया और उन्होंने हाथ का नेवाला मेरे मुख में डाल दिया। मैं आनन्द-विभोर हो उठी। अन्त में मुझे उन्होंने क्षमा कर दिया है, मुझे अपना लिया है। मैं मन-ही-मन प्रफुल्लित हो उठी थी। मेरे सामने आज स्वर्ग का सुख भी हेय था। मेरे मन से भय, ग्लानि, द्वेष इत्यादि सबका लोप हो चुका था। मैं हल्की हो चुकी थी। मैं चाह रही थी कि अपना सर्वस्व उनके चरणों पर उत्सर्ग कर दूँ। मैं—मैं न रहकर उन्हीं में विलीन हो जाऊँ।

"हम दोनों ने साथ-साथ भोजन किया। आज जैसी मधुरता मुझे भोजन में कभी नहीं मिली थी। भोजनोपरांत वे पलंग पर जा बैठे। मैंने उठकर अपने कपड़े बदले। वे अपलक दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे। मैंने कपड़े बदलते समय जान-बूझकर अपने अंग-प्रत्यंग उन्हें दिखाए। और फिर उनके पास पलंग पर जा बैठी। मैंने उनके कंधे का आश्रय ले लिया। उन्होंने अपनी छाती से चिपकाते हुए मेरी ठोड़ी को कोमलता से ऊपर को उठाया और प्रेम में सराबोर दृष्टि से मुझे देखकर मेरे कोमल अधरों पर अपने अधर रख दिए। मैंने अपने नेत्र मूँद लिए। मुझ पर एक प्रकार का नशा-सा छा गया था। मेरा अंग-अंग सिहर उठा था। उन्होंने मुझे इस प्रकार कसकर आलिंगन किया कि मेरा शरीर पिसने लगा, पर मैं प्रसन्न थी।

"उस आलिंगन में कितनी मिठास, कितना सुख और तृप्ति भरी थी ! मैंने अपने मुँदे नेत्र खोलकर एक बार उनकी ओर देखा। उनके नेत्र भी मुँदे जा रहे थे, जिनमें मस्ती छलक रही थी। उनका पौरुष जाग उठा था। आज मेरा नारी जीवन सफल होने वाला था। मैं वास्तव में अपने पति की अर्द्धाङ्गिनी बन रही थी। मेरा रोम-रोम खड़ा हो गया, हृदय स्पन्दन करने लगा। इतने में खट-सा शब्द हुआ। हम दोनों ने चौंककर उस ओर देखा। लॉन में पड़ने वाली खिड़की की सिटकिनी गिरी और एक मानवाकार खिड़की के पल्ले खोलकर अन्दर प्रविष्ट हो रहा था। वह जॉन था। उसे देखते ही मेरी सारी मस्ती हरिण हो गई। वे मुझे छोड़कर पलंग से उठ गए और एक बार व्यथित दृष्टि से मुझे देखते हुए कमरे से बाहर चले गए। मुझे मानो किसी ने स्वर्ग से उठाकर नरक में धकेल दिया। जॉन ने उन्हें नहीं देखा था। उसकी सारी चेतना अभी बाहर की ओर थी ताकि उसे चोरों की भाँति कमरे में आते बाहर से कोई देख न ले। जॉन ने मुझे भी अभी तक नहीं देखा था। मैं अपने पति के प्यार से ठुकराई हुई, अभिभूत-सी हुई अपने पलंग पर पड़ी हुई थी।

"जॉन ने धीरे से खिड़की को थपथपाया। मेरे नेत्रों में मानों खून उतर आया। जॉन ही वह व्यक्ति था, जिसने मुझे पतन की ओर अग्रसर किया था। दवा खिलाकर जिसने मेरा सतीत्व लूट लिया था। जो मुझे बम्बई में असहाय छोड़कर भाग आया था और आज भी उसी राहु ने मेरे उदय होते हुए भाग्य-सूर्य को आच्छादित कर लिया। मेरा सुहाग मुझसे छीन लिया था। मैं उसके रक्त की प्यासी हो उठी। हित, अनहित का मेरा ज्ञान लोप हो गया था। मैं भड़ककर उठ बैठी। जॉन वहीं मेरी प्रतीक्षा में खिड़की के पास खड़ा था। मैं नागिन की भाँति फुफकारती हुई उसके पास जा पहुँची। क्रोध से मेरा शरीर काँप रहा था। मेरी उग्र मूर्ति देखकर जॉन सहम गया। उसने डरते-डरते कहा, 'सरला !'

"मेरा हाथ उठा और मैंने पूरी शक्ति से उसके गाल पर तमाचा दे मारा। वह तिलमिला उठा और नेत्र फाड़-फाड़कर मेरी ओर देखने लगा। मेरे नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। यदि भगवान् ने मुझे शक्ति दी होती तो मैं वहीं उसे भस्म कर देती। पर मेरी जसी चरित्र-हीना नारी में इतनी शक्ति कहां थी? फिर भी मैंने जॉन को डाँटकर निकल जाने का संकेत किया। न जाने मेरे हृदय में इतनी दृढ़ता कहाँ से आ गई थी। मेरी वाणी को इतना बल कहां से मिला। जॉन मेरी आज्ञा का विरोध न कर सका और जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार चुपके से चला भी गया।

"मैंने खिड़की बंद करके सिटकनी चढ़ा दी और लौटकर पलंग पर आ बैठी। क्रोध के आवेश में मेरे नेत्र जल रहे थे। मेरी साँस फूली हुई थी। मैंने एक गिलास पानी पिया, जिससे मेरा चित्त कुछ शान्त तो हुआ पर साथ ही अपने पति पर खेद होने लगा। मैं सोच रही थी, कितने कायर और डरपोक हैं वे! मेरी रक्षा करने की अपेक्षा मुझे उस भेड़िये की दया पर छोड़कर हिजड़ों की भांति कमरे से बाहर निकल गए। वे सोच रहे होंगे कि मैंने जान-बूझ कर जॉन को बुलाया होगा। मुझे वह इतनी नीच और गई गुजरी समझते हैं। वे यह क्यों नहीं सोचते कि वे स्वयं कायर और दुर्बल हैं। यदि पुरुष थे तो उसका सिर काटकर अलग कर देते, उसे पुलिस के हाथ सौंप देते। ऐसा कुछ तो उनसे हो नहीं सका, उलटे मुझे ही घृणा से ठुकराकर चले गए, जसे मैं ही दोषी हूँ।

"उस रात मैं जी भरकर रोई। सारी रात पलंग पर करवटें बद-लते ही बिता दी। मैं चाहती थी कि वे आते और मैं उन्हें सत्य सत्य बता देती पर उन्होंने मेरी बात तक न पूछी जिसके कारण मैंने अपने आपको अपमानित समझा। विना किसी अपराध के मुझे अपराधी समझा जा रहा था। मैं यह सह न सकी। मेरा मन पुनः विद्रोही हो उठा।

"प्रातः होते ही मैं कपड़े इत्यादि पहनकर अपने पिता के घर चली गई।"

: १४ :

नानी की बातें सुनकर हम सब लड़कियों में से कोई भी निष्कर्ष न निकाल सकी कि नानी और उसके पति में अधिक दोषी कौन है। पहले मैं यही सोच रही थी कि नकटी नानी किसी पुरुष के अत्याचार का शिकार हुई है। फिर उसकी प्रारम्भिक कथा सुनकर यह समझने पर बाध्य हुई थी कि सारा दोष नकटी नानी का ही है। उसी की उच्छृंखल प्रवृत्तियों ने उसे ऐसी पतित अवस्था तक पहुँचा दिया है। परन्तु बाद में यही भास होने लगा कि नही, सारा दोप नानी का ही नहीं माना जा सकता। माना कि उससे भूलें हुई पर भूलें किससे नहीं होती ? सभी कुछ-न-कुछ भूल कर ही जाते हैं, नानी से भी हुई।

मैं समझती हूँ कि नकटी नानी अपने आपको उस वातावरण से अलग कर लेना चाहती थी और अपनी की हुई भूलों के लिए पश्चाताप के आँसू भी बहाती रही थी। परन्तु उसके पति ने ही उस पर अधिकार नहीं रखा था। इसी कारण नानी का पतन हुआ।

अनायास ही मुझे ध्यान आया कि यह मैं अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध कैसी बात सोच रही हूँ। पति का अधिकार तो हम चाहती ही नहीं। पुरुषों के उसी अधिकार को मिटाने के लिए ही तो हमने इस नारी कल्याण संघ की स्थापना की थी। यदि सारे पुरुषों का अधिकार नारियों पर से उठ जाए, नारी स्वच्छंद हो जाए तो क्या हम सब की ऐसी ही दशा नहीं होगी जैसी नकटी नानी की है ? नकटी नानी अपने ऊपर पति का अंकुश भी चाहती थी, और स्वतंत्रता भी। यद्यपि उसका पति उसके स्वच्छंद विचरण में बाधक नहीं बना तब भी नकटी नानी उसे कोसती आई है। उसे भीरु, डरपोक, कायर और भी न जाने क्या क्या विशेषण देती आई है और यदि उसका पति उस पर अधिकार रखता, अपनी इच्छा अनुसार नकटी नानी को चलाता, उसके एक-एक पग पर अपना अंकुश रखता, तब भी नानी उसे अत्याचारी, दंभी अथवा रूढ़िवादी कहकर लांछन लगाती। पर वास्तव में नानी चाहती क्या है ? पति पर अपना अधि-

कार या अपने ऊपर पति का अधिकार ?

इसी उलझन में मेरा माथा चकरा गया। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था कि नारी का हृदय क्या चाहता है ? मैंने स्वयं अपने हृदय को भी टटोलकर देखा। दोनों ही बातें परस्पर प्रतिकूल बैठती थीं। यदि मेरा कोई पति होता और वह मेरे स्वच्छन्द विचरने पर प्रतिबन्ध लगाता तो अवश्य ही मैं सह न सकती। यदि वह मुझ पर से अंकुश उठाकर नकटी नानी की तरह निरंकुश विचरने देता तो अवश्य ही मैं भी किसी ऐसी विडम्बना में फँसकर पतन को प्राप्त हो चुकी होती। तो फिर क्या चाहिए नारी को ? इस स्थल पर पहुँचकर मेरा मस्तक भन्ना उठता, आगे कुछ भी सुझाई न देता।

नकटी की जीवन-कथा से और कुछ-कुछ अपने अनुभवों से इतना तो मैं समझ चुकी थी कि नारी बहुत ही हलके मन की होती है। उसका हृदय कोमल होता है। नारी का स्नायु-मण्डल दुर्बल होता है। हम नारियाँ ऊपर-ऊपर से चाहे कितना भी चिल्लाती रहें कि हम पुरुषों के कन्धे-से कन्धा मिलाकर चल सकती हैं परन्तु कार्यक्षेत्र में पुरुष अपने लम्बे-लम्बे पग भरता हुआ सर्वदा ही नारी को पीछे छोड़ जाता है। नारी उसकी कभी भी बराबरी नहीं कर सकती। शारीरिक हो चाहे बौद्धिक, सभी क्षेत्रों में नारी सर्वदा पुरुष से न्यून है। यह बात मैं आज मुक्त-कण्ठ से कह रही हूँ। क्योंकि मैं अनुभव प्राप्त कर चुकी हूँ। कभी-कभी ऐसा भी विचार उठता है कि सभी नारियाँ नानी की भाँति विचारों वाली नहीं हो सकतीं, सभी कुपथगामिनी नहीं बन सकतीं। पर कुपथ पर अग्रसर होना क्या अपने ही वश की बात है ?

अँगुली के केवल पोर मात्र से बिजली का तार छू लेते ही सारे शरीर में बिजली का करेंट व्याप जाता है। इसी प्रकार घर के बाहर पाँव रखने मात्र से ही नारी का सतीत्व लूटने वाले लुटेरे उस पर टूटते हैं। नारी बेचारी अबला कहाँ तक उनके प्रहारों को सह सकेगी ? कोयले के गोदाम में जाने पर कोई कहाँ तक अपने आँचल को बचाकर रख

सकता है ? तो क्या नारी घर से निकलना ही छोड़ दे ? सर्वदा घर की चार दिवारी में ही बन्द रहे ? दम घुट-घुटकर मर न जाएगी बेचारी ।

मैं यदि कभी तितली बनकर, सज-धजकर घूमने निकल जाती हूँ तो सर्वप्रथम मेरे भाई ही मुझे टोक देते हैं । मुझे बुरा अवश्य प्रतीत होता है पर मैं सोचती हूँ कि मैं इतनी आकर्षक बनकर जाती किसके लिए हूँ ? उन्हीं नारी-लोलुप पुरुषों के लिए ही न, जो मुझे देखकर मेरी प्रशंसा करते हैं, मेरे रूपरंग और बनाव-ठनाव के गीत गाते हैं और मुझसे उस की गई प्रशंसा का मूल्य भी प्राप्त करना चाहते हैं । कब तक मैं उन्हें धता बताती रहूँगी । अन्त में किसी दिन फँस भी तो सकती हूँ ।

मेरे भाई मुझे जब मेरे स्वच्छन्द विचरण के लिए टोका करते थे तो मैं उन्हें उत्तर दिया करती थी कि साफ-सुथरी बनकर न जाने से यदि बाज़ार में मुझे कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? इसका साफ़ अर्थ यही हुआ कि मैं जानती हूँ, बाजार जाने पर मुझे अवश्य देखने वाले देखेंगे, इसीलिए मैं सज-धजकर जाती हूँ ताकि मैं उन्हें अच्छी और सुन्दर प्रतीत होऊँ और वे मेरी प्रशंसा करें । यह प्रशंसा की भूख ही नारी के पतन का सबसे बड़ा कारण है ।

चार बज चुके थे । हम सब लॉन में बैठी थीं, पर लॉन में कब धूप आई और निकल गई । हममें से किसी को भी इसका ध्यान नहीं था । भोजन के नाम पर हमने प्रातः चाय के साथ जो थोड़ा-बहुत लिया था, वही सबके पेट में था, पर हमें भूख भी तो नहीं लगी थी । नकटी नानी के किस्से में हमें ऐसा ही रस मिल रहा था । नानी ग्रीवा झुकाए बैठी थी । ग्रीवा उठाकर उसने मेरी ओर देखकर कहा, 'गला सूख रहा है बेटी ! थोड़ा पानी मिलेगा !'

"मिलेगा क्यों नहीं नानी !" यह कहकर मैंने रामू नौकर को पुकारा । उसके पहुँचने-न-पहुँचने तक सभी लड़कियों ने पानी की इच्छा प्रकट कर दी । मेरी चेतना जब नानी की ओर से हटकर पानी की ओर गई तो मैं स्वयं भी तृषा का अनुभव करने लगी ।

रामू के आने पर मैंने उसे बाजार से बरफ और लेमोनेड लाने के लिए भेज दिया और स्वयं उठकर अपनी माँ के घर में गई। माँ कोई-न-कोई ऐसी खाद्य वस्तु सर्वदा बना रखती थीं। किसी मेल-जोल वाले के आ जाने पर नौकर को बाजार नहीं दौड़ाना पड़ता था। घर में से ही कुछ पकवान इत्यादि देकर आगन्तुक को सन्तुष्ट कर दिया जाता था। जब मैं माँ के कमरे में पहुँची तो वह गीता पढ़ रही थीं। मैंने पूछा, "माँ ! कुछ खाने-पीने के लिए है ?"

माँ ने ग्रीवा उठाते हुए मेरी ओर देखा और पूछा, "किसके लिए चाहिए ?"

मैंने कहा, "मेरी सहेलियाँ अभी तक बाहर बैठी हैं, कुछ जलपान करना चाहती हैं।"

माँ उठीं, और रसोई में जाकर एक बड़ी प्लेट में तली हुई नमकीन, दूसरी में कुछ मिठाई ले आईं और मुझे देते हुए बोलीं, "आज प्रातः से ही तुम सहेलियों को लिए बैठी हो। उन्हें अपने घरों में क्या कोई काम नहीं है ?"

मैंने हँसकर उत्तर दिया, "काम रहने पर भी आज वे जा न सकीं माँ ! आज प्रातः ही एक नकटी भिखारिन द्वार पर भीख माँगने के लिए आ गई थी। उसकी बातचीत से ज्ञात हुआ कि वह किसी कुलीन घर की महिला है। दुर्भाग्य ने उसे ऐसी पतित अवस्था में पहुँचा दिया है।"

माँ ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा, "किसी कुलीन घर की महिला और नकटी भिखारिन, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? कुलीन घर की महिला मर जाने पर भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाती और फिर तुम उसे नकटी बता रही हो। जिसकी नाक ही कट गई हो, वह अपने आपको कुलीन घर की महिला कैसे कह सकती है ? देश भर के नदी-नाले उसके लिए क्या सूख गए थे ?"

माँ की बातों का भला मैं क्या उत्तर देती। अन्त में मैंने इतना ही कहा, "विश्वास न हो तो चलकर देख लो, बाहर लॉन में बैठी है।"

माँ ने उपेक्षा दर्शाते हुए कहा, "मुझे क्या लेना है उसे देखकर ?" फिर कुछ रुककर बोली, "कहाँ की रहने वाली है ?"

"बंगालिन है, कलकत्ते की रहने वाली। अपने आपको ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की पुत्री बताती है। बहुत पढ़ी-लिखी है।"

माँ ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा, "क्या कहा ? ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की पुत्री ?"

"हाँ माँ।"

"अपना नाम भी बताया है उसने।"

"साफ-साफ तो नहीं बताया। अपने किस्से में अपने आपको सरला के नाम से सम्बोधित करती है।"

"सरला !"

मैं माँ का मुख देख रही थी। मेरे देखते-ही-देखते माँ के मुख पर कई भाव बदले। वह किसी गहरे सोच में डूब गई। मैंने विस्मित होते हुए पूछा, "तुम क्या उसे जानती हो माँ ?"

मेरा प्रश्न सुनकर माँ चौंक-सी उठी और बोली, "नहीं, नहीं, मैं उसे नहीं जानती। अब उसे जानकर भी मुझे क्या करना है ? नहीं, मैं नहीं जानती। तू जा। तेरी सहेलियाँ रास्ता देख रही होंगी।"

माँ के मनोभावों को मैं समझ न सकी। दोनों प्लेटें नौकरानी द्वारा उठवाकर बाहर लॉन में चली आई। सभी लड़कियाँ मेरी प्रतीक्षा में थीं। मेरे साथ नौकरानी और उसके हाथ दो प्लेटों में कुछ खाद्य-सामग्री देखकर, रास्ते में ही सबकी सब उस बेचारी नौकरानी पर टूट पड़ीं। नौकरानी को मेज पर प्लेटें रखने का समय ही न मिला। वह उसके हाथ में ही खाली हो गईं।

वैसे तो यह धाँधली मेरे लिए अरुचिकर न थी, पर नानी को उसमें से कुछ भी खाने को न मिला। मैंने सबको कृत्रिम डाँट बताते हुए कहा, "यह तुम लोगों का कैसा अन्याय है जी ! नानी बेचारी ऐसी ही रह गई और तुम लोग बकरियों की भाँति चरने लगीं।"

मेरी बात को सुनकर सबको इस भूल का आभास हुआ। कइयों ने अपने भाग में से नानी को देना चाहा पर नानी ने अस्वीकार करते हुए कहा, "नहीं, नहीं, मेरा ख्याल न करो। मैं प्रातः ही अधिक खा चुकी हूँ। मैंने तो केवल पानी माँगा था।"

इतने में रामू लेमोनेड ले आया। मैंने स्वयं उठकर सर्वप्रथम लेमोनेड नानी को दिया। नानी ने गिलास को मुँह से लगाया। काँच के गिलास में से नानी का बिना नाक का मुख इस प्रकार दिखाई दे रहा था जैसे किसी बालक ने तरबूज के छिलके पर वनमानुष का मुख चित्रित किया हो।

लेमोनेड पी चुकने के बाद नानी ने तृप्ति की एक साँस ली और कहने लगी, "तुम सब दिन भर से यहीं बैठी हो। तुम लोगों को अन्य कोई कार्य भी तो हो सकता है। कब तक बकझक सुनती रहोगी। कहो तो बन्द करूँ इस पापमयी जीवन-गाथा को?"

"नहीं, नही, नानीजी! हम आपकी कथा सुनकर ही अन्यत्र जाएँगी। हमें करने को है ही क्या है।"

मैंने और मेरे साथ-साथ रमा ने भी कहा था। अन्य सब लड़कियों ने मेरा समर्थन किया। शीला बोली, "हाँ नानीजी! आप क्रुद्ध होकर मायके चली गईं तब क्या हुआ?'

वह कहने लगी, "मैं जल-भुनकर मायके तो चली गई थी परन्तु रात के कुछ क्षण जो मुझे उनके वक्ष पर सिमटे रहने के लिए मिले थे, वे क्षण पुनः-पुनः स्मरण होकर मेरे मन को विचलित कर देते। उनके बाहुपाश की कस मुझे जितनी सुखकर प्रतीत हुई थी, उतनी मैक्स और जॉन की भी न थी। पर मेरा अभिमान मुझे नीचा नहीं होने दे रहा था। मायके आने का कारण मैंने माँ को कुछ नहीं बताया। पिताजी के सामने ही नहीं होती थी। मैं प्रातः ही उठकर घर से निकल जाती और शोभा व अन्य अपनी नारी कल्याण समिति की सदस्यों के साथ बड़े-बड़े घरों में चन्दा माँगने निकल जाती। विशेषकर मेरा परिचय पाकर सब चन्दा देने वाली महिलाएँ प्रभावित होतीं और खुले हाथों चन्दा देतीं।

ऐसी शंका किसे हो सकती थी कि एक गण्यमान्य जमींदार की पोती और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की लड़की, जिसका श्वसुर जज हो और पति बैरिस्टर, वह धोखाधड़ी से कुछ पैसे प्राप्त करने के लिए हाथ फैला रही होगी।

"हम जितनी लड़कियाँ चन्दा उगाहने जातीं, किराये की टैक्सियाँ करतीं और होटलों में खातीं। दिन भर का खर्चा निकालकर हमारे पास चन्दे की रकम में से चौथाई ही कठिनता से बच पाता।

"तीसरे ही दिन जब मैं रात को लगभग दस बजे घर लौटी, मैक्स मेरे साथ था। वह सायंकाल मुझे घुमाने-फिराने के लिए ले गया था। बँगले में पाँव रखते ही मैंने देखा, बरामदे में मेरे पति मेरे पिताजी के साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। मेरे हृदय की धड़कन तीव्र हो गई। मुझे ऐसी आशा न थी। मैंने थोड़ी मदिरा पी रखी थी। मैक्स के साथ रहते मेरे खाने-पीने और मौज-मजे में किसी प्रकार की कमी नहीं रहती थी। मैं तृप्त होकर ही घर लौटती थी। मेरे मुख से मदिरा की गंध अवश्य आ रही होगी, यह सोच मैंने अपना रूमाल निकाल कर अपने मुख पर रख लिया। मैक्स मेरे साथ-साथ बरामदे में बैठे मेरे पति और पिताजी के निकट तक आया। उसने औपचारिक रूप से दोनों का अभिवादन किया। मेरे पिता और पति ने भी मुस्कराकर उसे उत्तर दिया परन्तु मैं डरी हुई, सहमी हुई-सी अपने मुख को रूमाल से दबाए एक ओर खड़ी थी। मेरे पिता ने मुझे देखते हुए कहा, 'क्या बात है बेटी! मुख दबाकर क्यों खड़ी हो?'

"पिता का प्रश्न सुनकर मैं सटपटा गई। मुझ से झूठ बोलते नहीं बन रहा था और सत्य कहना भी उतना ही क़ठिन था। मेरी असह्य दशा देखकर मेरे पति ने तुरंत उत्तर दिया, 'दाँत पुनः दुखने लगा होगा इनका।' तब मेरी ओर देखकर बोले, 'दवा लगवाई कि नहीं?' इतना कह वह पुनः पिताजी से बोले, 'ऊपर का दाँत इसे बहुत कष्ट देता है।'

"उनकी बात पर विश्वास करके मेरे पिताजी ने मुझ से कहा, 'जाओ

बेटी ! आराम करो ।'

"पिताजी जी की बात सुनकर मेरे प्राण लौट आए, हृदय का भय कम हो गया पर उनका यह झूठ जो मेरी रक्षा के लिए ही उन्होंने कहा था, मेरे कलेजे में तीर-सा जा लगा । उन्हें क्या अधिकार है मेरी सहायता करने का ? क्यों उन्होंने मेरे लिए अपनी आत्मा के विरुद्ध झूठ बोला । मुझ पर अनुग्रह जताकर अपने ऐहसानों का बोझ लादकर मुझे लज्जित करना चाहते हैं । पर मैं उनकी कब परवाह करती हूँ ? वे भद्र होंगे तो अपने घर के होंगे । मैं किसी भिखारी की कन्या नहीं हूँ, मैं कोई ग्रामीण या अशिक्षित दूध पीती बच्ची नहीं हूँ, जो वे दयावश मेरी सहायता करने के लिए चले आए हैं ।

"इस प्रकार न जाने कितना समय मैं अपने पलंग पर लेटी-लेटी इन्हीं विचारों में खोई रही और अंत में सो गई । प्रातः जब मेरी आँख खुली तो मेरे विस्मय का ठिकाना न रहा, जब मैंने अपने पति को फर्श पर बिछी दरी पर सोते हुए देखा । वे इस प्रकार टाँगें सिकोड़कर और बाजुओं में मुँह छिपाए सो रहे थे जैसे कालीघाट के कंगले ठंड से बचने के लिए सड़कों पर सोए होते हैं । रात भर वे इसी प्रकार पड़े रहे होंगे । ठंड में अकड़ते रहे होंगे । यह जानकर मेरे नेत्र भर आए । मुझे उन पर दया आने लगी । परन्तु तुरंत ही मन ने तर्क छेड़ दिया । उन्हें किसने इस प्रकार सोने के लिए बाध्य किया था ? क्या वे मेरे साथ पलंग पर नहीं सो सकते थे ? मेरा स्पर्श मात्र भी क्या इन्हें गड़ने लगा है ? मैं इनकी दृष्टि में क्या इतनी हेय हो गई हूँ ? अवश्य ही मुझे अपमानित करने के लिए उन्होंने ऐसा किया होगा । ऐसी बातें सोचकर मेरा मन विद्रोही हो उठा ।

"मैंने चट से उठकर कमरे का दरवाजा खोल दिया, जिसकी खड़खड़ाहट से उनकी आँख खुल गई । वे भी शीघ्रता से उठकर सावधान हो गए । पर मैंने उनकी ओर देखा तक भी नहीं और अभिमान से ग्रीवा उठा कर बाथरूम की ओर चली गई । मेरा मन विद्वेष से भरा हुआ

था। मैं जो कुछ भी सोचती उनके विरुद्ध ही सोचती। उन्हें नीचा दिखाने के विषय में ही भूमिकाएँ बाँधती। मेरा अपना मन कलुषित था। मैं स्वयं बुरी थी। पाप का आवरण मेरे नेत्रों पर पड़ा हुआ था। जिस रंग में मैं स्वयं थी, वैसा ही उन्हें समझने लगी थी। उनकी दया मुझे पाखंड प्रतीत होती। उनका स्नेह मुझे धोखा दिखाई देता।

"स्नानादि से निवृत होकर जब मैं बाथरूम से निकली तो उन्हें चाय की मेज पर अपनी प्रतीक्षा में बैठे पाया। मुझे देखते ही वे हँसकर बोले, 'स्नान नहीं कर सका सरला! तबियत कुछ सुस्त प्रतीत होती थी। हाथ-मुँह धोकर तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हूँ। आओ अल्पाहार से छुट्टी पा लो। तुम्हें घर पहुँचाकर किसी अन्य काम पर लगूँगा।"

"उनके स्वास्थ्य की बात सुनकर एक बार तो मेरे मन में धक्-सी हुई पर वह अधिक समय तक टिक न सकी। उनकी इस बात को भी मैंने कोरी बात ही समझा। वैसी ही क्षुब्ध-सी हुई। अल्पाहार के लिए उनके साथ बैठ गई। मैंने उनकी उपेक्षा करते हुए स्वयं अपने ही लिए चाय का एक कप तैयार किया और पीने लगी। वह टुकर-टुकर मेरे मुँह की ओर देख रहे थे। मैंने छिपी दृष्टि से एक बार उनकी ओर देखा। उनका मुख उतरा हुआ था, रंग पीला हो रहा था। पर मैंने किसी भी बात को महत्त्व न दिया। वे पुनः मुस्कुराते हुए बोले, 'मैं भी एक कप चाय की आशा में बैठा हूँ सरला! क्या मेरे लिए एक कप चाय भी नहीं बना सकोगी?'

"उनकी इस बात से मुझे अपने अशिष्ट व्यवहार पर लज्जा हो आई। मैंने बिना कुछ कहे चाय बना दी। हम दोनों पति-पत्नी पास-पास बैठे हुए भी मानो कोसों दूर थे। हम उसी प्रकार चाय पी रहे थे जैसे किसी स्टेशन के टी स्टॉल पर खड़े होकर दो अपरिचित यात्री चाय लेते हैं। अल्पाहार लेकर मैं उठ खड़ी हुई। वे बोले, 'शीघ्र तैयार हो लो। कार बाहर खड़ी है। हमें पहुँचाकर कार को कहीं अन्यत्र भी जाना है।'

"मैंने उनकी ओर देखा, कुछ कहना भी चाहती थी पर कह न सकी।

घर में ही अपने पति से लड़-झगड़कर अपने माता-पिता की दृष्टि में मैं छोटी होना नहीं चाहती थी। मैंने चुपचाप उनके साथ चल देना ही उचित समझा। जैसा कुछ कहना-सुनना होगा वह उन्हीं के घर जाकर कह-सुन लूँगी, यह सोचकर मैं कमरे में गई और कपड़े पहनकर तैयार हो आई। वे उठे और मेरी माँ से विदाई लेकर चले आए, पर मैंने किसी को आवाज तक न दी और उनके साथ बाहर आकर कार में बैठ गई। वे भी मेरे साथ बैठ गए, न तो मैंने ही कुछ कहा, न ही उन्होंने अपना मुख खोला। ड्राइवर ने कार स्टार्ट की और मेरी ससुराल के घर की ओर न ले जाकर वह हमें भवानीपुर की ओर ले चला। इस बात से मुझे विस्मय तो अवश्य हुआ पर मैंने कुछ पूछा नहीं।

"भवानीपुर पहुँचकर कार एक बड़ी कोठी के आगे रुकी। मैं आश्चर्य से चारों ओर देखने लगी। ऐसी बात नहीं थी कि मैंने भवानीपुर पहले कभी देखा न हो। कालीघाट आने जाने में भवानीपुर होकर ही आया जाता था। मेरे आश्चर्य का कारण वह बँगला था, जिसके दरवाजे पर हमारा पुराना नौकर चन्दू खड़ा हुआ हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। कार रुकते ही उसने आगे बढ़कर कार का दरवाजा खोला। मेरे पति ने स्वयं उतरकर मुझे भी उतरने का संकेत किया। मैं कार से उतरकर विस्मित-सी हुई उनके पीछे-पीछे बँगले में प्रविष्ट हुई। मैंने देखा मेरे दहेज का सम्पूर्ण सामान यहाँ पहुँच चुका था। अभी यथा-स्थान रखा नहीं गया था। अब मुझ से रहा न गया। मैंने उनसे पूछा, 'यह सब क्या है, यह सब सामान यहाँ कैसे आ गया और हम सब लोग भी यहाँ क्यों आए हैं?'

"उन्होंने मुस्कुराकर उत्तर दिया, 'मैंने अपने और तुम्हारे रहने के लिए यह अलग बँगला किराए पर ले लिया है।'

"उनकी बात सुनकर मुझे बहुत अचम्भा हुआ और मैंने पूछा, 'इससे आपका क्या प्रयोजन है?'

"उन्होंने कुछ रुककर उत्तर दिया, 'मैंने यही उचित समझा सरला! कि हम अलग रहें, क्योंकि इससे हम सुखी रहेंगे। उस घर में हम से मिलने

आने वालों को आने जाने में कष्ट होता था। यहाँ हम स्वतंत्रता पूर्वक रह सकेंगे।'

"उनका संकेत जॉन की ओर था, जिसे समझ कर मेरे तन मन में आग लग गई। क्रोध के आवेश में मेरे होंठ फड़फड़ाने लगे। मेरे मुँह से बात तक निकलनी कठिन हो गई, पर अन्दर ही अन्दर मेरा रक्त खौल रहा था। मैंने नेत्र तरेर कर उनकी ओर देखा। उनके मुख का रंग उड़ा हुआ था। हो सकता था कि मुझे चोट पहुँचाकर वे स्वयं ही कष्ट पाने लगे हों। बहुत रोकने पर भी मैं अपने पर नियंत्रण न रख सकी। मेरे मुख से निकल गया, 'बहुत अच्छा किया आपने। अब किसी को खिड़की फाँदकर आने जाने की आवश्यता नहीं रहेगी।'

"इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही मैं अन्यत्र जाने लगी, पर उनके मुख पर इतना कड़ा तमाचा मारकर भी मेरा मन शान्त नहीं हो पाया था। मैंने जाते जाते मुड़कर एक ठोकर और लगाई। बोली—'अपने उन मित्रों को यहाँ का पता-ठिकाना लिख भेजूँ क्या?'

"मेरा यह प्रहार उनके हृदय पर जा पड़ा। अस्वस्थ तो वे पहले ही थे। इस कड़ी चोट को सहने योग्य उनकी अवस्था नहीं थी। उनकी दशा बिगड़ गई। मुख का रंग पीला जर्द हो गया था। माथे पर ठंडा पसीना आने लगा था। सामने खड़ी मैं उनकी यह तिलमिलाहट एक कसाई की भाँति देख रही थी। मेरे होठों पर पिशाचों की-सी हँसी थी। परन्तु न जाने विधाता ने उन्हें लोहे का हृदय दिया था या पत्थर का? क्षण भर में उन्होंने अपने पर नियंत्रण पा लिया और बहुत सरस ढंग से बोले, 'हाँ, उन्हें सूचित कर दो, यही उचित है।'

"इतना कहकर मेरे ही तीर से मेरे हृदय को छलनी करते हुए वे अन्यत्र चले गए। मैं विकल हो उठी और एक कमरे में जहाँ पलंग रखा हुआ था, जाकर तकिए में मुँह छिपा फफक-फफक कर रोने लगी। मेरा रुदन सुनकर वे आए। मैंने दरवाजा बंद कर लिया था। वे खटखटाते रहे; पर मुझे दरवाजा नहीं खोलना था, न ही खोला और पड़ी-पड़ी

रोती रही।

"दोपहर सिर पर आ गई। रो-धोकर मेरा मन हल्का हो चुका था। मैं उठी। नौकर से पूछकर स्नानागार में गई, मुख पर ठंडे जल के छींटे दिए और बाहर निकली। सामने रसोइया महाराज खड़ा था। मेरे पूछने पर उसने कहा, 'साग सब्जी क्या बनेगी मा जी! यही पूछने के लिए आया हूँ।'

"मैंने डाँटते हुए उत्तर दिया, 'मुझसे क्या पूछते हो, अपने साहब से जाकर पूछो।'

"डाँट सुनकर रसोइया महाराज अवाक् हुआ मेरा मुख देखता रहा। मैं सोने वाले कमरे मे जाकर पलंग पर बैठ गई। इतने में चन्दू ने कमरे में आकर कहा, 'साहब आपको बुलाते हैं बहूजी!'

"मैंने मन में निश्चय कर लिया था कि अपने अपमान का कड़े-से-कड़ा प्रतिशोध लूँगी। इसी भावावेश में मैंने उत्तर दिया, 'तुम्हारे साहब क्या यहाँ नहीं आ सकते?'

"उस दिन वह पहला ही दिन था जब घर के किसी दास के सामने मैंने अपने पति का तिरस्कार किया था। चन्दू आश्चर्य-चकित-सा हुआ मेरा मुख देखता खड़ा रहा। तब कुछ सोचकर नम्रता से बोला, 'नहीं आ सकते बहूजी! इसीलिए आपको वहाँ बुलाया है। उनकी तबियत अधिक खराब हो चुकी है। चलकर तनिक देख लेतीं तो......।'

इसके आगे चन्दू के मुख से कुछ न निकला।

"अपने पति की तबियत की बात सुनकर मेरा मन पसीज गया, रोष कुछ कम हुआ। मैं उठकर उनके पास तक गई। देखा वे फर्श पर ही एक दरी बिछाए लेटे हुए छटपटा रहे हैं। आँखें कबूतर की तरह लाल हो रही थीं उनकी। मुख पर मानों रक्त की बूँद तक नहीं रही थी, नेत्रों के नीचे काले गढ़े पड़ गए थे। मुझ कुलक्षणी ने तब भी उनको सहानुभूति के दो शब्द तक न कहे। वे करुणा भरी दृष्टि से मुझे देख रहे थे। मैं ग्रीवा झुकाए खड़ी हुई थी। चन्दू मेरे पीछे खड़ा हुआ था। उन्होंने दुर्बल

वाणी में चन्दू से कहा, 'तुम जाओ चन्दू, बहूजी का सामान यथास्थान लगा दो।'

"चन्दू के जाने के बाद मुझ से बोले, 'नौकरों के सामने मुझे अपमानित न करो सरला ! जो खाना चाहो, बता दो। आधा दिन बीत गया है, भोजन कब करोगी ?'

"उनके शब्दों में इतनी याचना थी, जिन्हें सुनकर मेरा रोम-रोम सिहर उठा, पर मैं भाग्य जली तब भी उनके पास बैठकर उनके माथे तक को भी न सहला सकी।"

अपनी कथा कहते-कहते नकटी भिखारिन के नेत्रों से झड़ी बरसने लगी। यह उसके पश्चात्ताप के आँसू थे। एक एक अश्रुकरण में उसका व्यथित हृदय पिघल कर बाहर आ रहा था। हम सब श्रोताओं के नेत्र भी भर आए थे। स्त्री हृदय बहुत कोमल होता है। वह हर्ष और शोक के समय विवश हो जाती है। स्त्री के अन्तःस्थल में इतना गहरा पन नहीं कि वह किसी भी भाव को अपने अन्तर के किसी भी कोने में छिपाकर अथवा दबाकर रख सके। वह प्रत्येक बात को उगल देती है। किसी को भी पचा नहीं सकती। इसी से स्त्री कोमल और लावण्यमयी बनी रहती है। वह हलकी रहती है। यदि/वह भी पुरुषों की भाँति प्रत्येक बात को अपने हृदय की तहों में छिपाकर रख ले तो उसके हृदय की कोमलता नष्ट हो जाय, उसका हृदय भी पुरुषों की भाँति कड़ा हो जाय, सुदृढ़ हो जाय, नीरस हो जाय।

: १५ :

नानी कह रही थी, "मेरे जैसी उजड्ड, मूर्ख और जड़ नारी अन्यत्र कहाँ मिलेगी, जो अपने नेत्रों के सामने अपने सुहाग को, अपने पति को, अपने देवता को तड़पता देखकर भी न पसीजी। इतना ही नहीं, उनको सान्त्वना देने के विपरीत मैंने कुढ़ते हुए कहा, 'खाना मुझ अकेली को ही तो नहीं खाना है और भी तो खाने वाले हैं ?'

उन्होंने मुस्कुराकर उत्तर दिया, 'तुम्हारे सिवाय और कौन है सरला ! जिसकी रुचि या अरुचि जानने की आवश्यकता हो ? यदि मेरी बात सोच रही हो सो मैंने तो बाल्यकाल से ही अपने आपको माँ की इच्छा पर चलाया है। पर अब यहाँ माँ नहीं आवेगी, तुम्हें ही मेरा भार वहन करना होगा। तुम्हारी रुचि ही मेरी रुचि होगी और आज तो अस्वस्थ होने के कारण मैं कुछ खा भी नहीं सकूंगा।'

"उनकी इस माँग को भी मैंने ठुकरा दिया। मेरा अभिमान न गला। मैं समझ न सकी कि उन्होंने वास्तव में अपना हृदय खोलकर मेरे सामने रख दिया है। मैं उनकी इन बातों को कोरी चापलूसी समझकर और भी तनकर बोली, 'मैं इस योग्य नहीं कि किसी का भार वहन कर सकूँ। यदि आप माँ के पास रहना चाहते हों तो मुझ अकेली को भी यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा। आप प्रसन्नता से माँ के पास जाकर रह सकते हैं।

"इतना कहकर मैं उनके अन्तःस्थल पर दहकते अंगार बिखराती हुई, उनके प्यार को पाँव तले रौंदकर, उनकी आशाओं पर पानी फेरकर, उनकी भावनाओं का गला घोंटकर और घावों पर नमक छिड़क कर घर से बाहर निकल आई और टैक्सी करके शोभा के घर की ओर चल दी।

"आज प्रातः किसी रियासत के एक राजकुमार के पास चन्दा माँगने के लिए शोभा के साथ मुझे जाना था। मुझे आने में बहुत विलम्ब हो चुका था। शोभा मेरी प्रतीक्षा में घर के बरामदे में चहल-कदमी कर रही थी। मुझे देखते ही बोली, 'वाह सरला ! क्या इसी प्रकार संस्था चलाओगी ? मैं अपने सारे प्रोग्राम कैंसिल करके तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ी हूँ और तुम अब आई हो आधा दिन बिताकर।'

"क्षमा करना शोभा ! आज ऐसी ही विडम्बना में फँस गई थी, जिसके कारण विलम्ब हो गया। हमने अपने रहने के लिए एक नया मकान भाड़े पर लिया है। वहाँ पहुँचते ही मेरे पति बीमार हो गए हैं। मैं तुम्हें सूचित करने आई थी कि संभवतः मैं तुम्हारे साथ न चल सकूँ।

मेरा उनके पास रहना आवश्यक है ।'

"मैंने उपर्युक्त बातें केवल शोभा के क्रोध को शान्त करने के अभिप्राय से कही थीं । वास्तव में बहुत विलम्ब से पहुँचने का यह कारण हो सकता है सो ऐसी बात नहीं थी, क्योंकि अपने बीमार पति को तो मैं स्वयं ही तड़पता छोड़कर आई थी । यदि कुछ विलम्ब हो भी गया था तो उनके साथ लड़ने-झगड़ने में ही, उनकी सेवा करने में नहीं । मैंने आज तक अपने और अपने पति में चलते संघर्ष को किसी के सम्मुख नहीं कहा था । यहाँ तक कि हम दोनों पति-पत्नी के मनोभावों को अभी तक हमारे माता-पिता भी नहीं जान सके थे । मैं तो मन की स्वयं चोर थी । इस विषय में किसी को कुछ कहकर अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मारती । इसलिए मैं मुख खोलने से भी डरती थी, पर उन्होंने भी आज तक किसी से कुछ नहीं कहा था । वे मेरे सारे प्रहार सह रहे थे, परन्तु मुख से सी तक नहीं निकालते थे । महान थे वे, महान था उनका व्यक्तित्व ।"

नकटी के पुनः आँसू बहने लगे । पर हम सब चुपचाप उसका मुँह ताकती रहीं । हम सब यही चाह रही थीं कि नकटी अपना किस्सा कहती रहे और हम सुनती रहें । नकटी नानी फिर बोली, "मेरा विचार था कि शोभा मेरी हँसी उड़ाएगी । मुझे पति की दासी या सेविका कहकर चिढ़ाएगी, पर मेरी बातों का प्रभाव शोभा पर उलटा पड़ा । उसने खेद प्रकट करते हुए कहा, 'मैंने कुछ अनजाने में ही कड़े शब्द कह दिए हैं सरला ! क्षमा करना । यदि ऐसी स्थिति थी, तुम्हारे पति अस्वस्थ थे तो किसी नौकर द्वारा ही सूचित कर दिया होता । मुझे फोन पर भी कह सकती थी । उन्हें ऐसी हालत में छोड़कर तुम्हारा यहाँ आना उचित नहीं हुआ । तुम्हें शीघ्रातिशीघ्र उनके पास पहुँच जाना चाहिए ।'

"शोभा की बात सुनकर मुझे तो जैसे काठ मार गया हो । मैं अभिभूत होकर उसका मुख देखने लगी । अब मेरे मुख से यह भी निकलना कठिन था कि मैंने जो कुछ पहले कहा है, वह पूर्ण सत्य नहीं, फिर भी

मैंने बात को बनाने के उद्देश्य से कहा, 'वे कुछ ऐसे अधिक अस्वस्थ नहीं शोभा ! तिस पर घर में नौकर-चाकर सभी कोई तो हैं। मेरे न रहने से भी उन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी। चलो, हम राजकुमार साहब के यहाँ चलें।'

"शोभा विस्मय से मेरा मुँह देखते हुए बोली, 'यह तुम क्या कह रही हो सरला ! बीमारी को न्यून या अधिक होने में कौन-सा समय लगता है और फिर बीमार पति को कहीं नौकरों के भरोसे छोड़ा जाता है ? आज के सब प्रोग्राम कैंसिल। जाओ लौट जाओ। जब तक तुम्हारे पति पूर्णतया स्वस्थ नहीं हो जाते, तब तक के लिए तुम्हें छुट्टी।'

"शोभा की बात सुनकर मैं असमंजस में पड़ गई। घर जाने में मेरी तनिक भी रुचि नहीं थी। इस दोपहरी के समय अन्यत्र कहीं जाऊँ भी तो कहाँ ? शोभा को और कुछ कहते नहीं बनता था। मैं स्वयमेव चाहे कितनी भी कलंकिनी और दुश्चरित्रा थी, पर बाहर वालों की दृष्टि में मेरा आदर था, मान था। मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि न हो तो चलो मैक्स को साथ लेकर कहीं घूमने-फिरने चला जाए। मैक्स अभी तक बेकार ही था। इंग्लैंड से इंजीनियर हो जाने पर भी उसे कहीं अच्छी सरकारी या किसी प्राइवेट कंपनी में काम नहीं मिला था। छोटी छोटी कंपनियों में वह काम नहीं करना चाहता था। इसी से वह अभी तक बेकार था। मेरे पर्स में अभी भी दिन भर के खाने-खर्चने के लिए पर्याप्त रुपए थे, जिनसे मैं और मैक्स आज दिन भर भली प्रकार से मन-बहलाव कर सकते थे। यह सब निश्चयकर मैं मैक्स के घर जाने के लिए शोभा के घर से लौट पड़ी। मैंने अभी दो पग ही बढ़ाए थे कि शोभा ने पुकारकर कहा, 'ठहरो सरला ! मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। तुम्हारा नया घर भी देख आऊँगी और तुम्हारे पतिदेव के दर्शन भी हो जाएँगे।'

"उसकी यह बात सुनकर मेरे तो होश उड़ गए। घर देख आना तो कोई बड़ी बात नहीं थी, पर जिस अवस्था में अपने पति को मैं छोड़

आई थी वह किस प्रकार अपनी एक सहेली को दिखाई जा सकती थी ? शोभा उनकी अवस्था और मेरी उनके प्रति उपेक्षा को देखकर मेरे लिए अपने मन में क्या धारणाएं बनाएगी, मुझे कितनी छोटी प्रकृति की समझेगी ! पर मैं स्वयं को शोभा की दृष्टि में छोटा होने देना नहीं चाहती थी। मैं मन-ही-मन पछता रही थी कि अकारण मैंने अपने पति की अस्वस्थता का वर्णन क्यों कर दिया ? मैंने शोभा के इस संकल्प को टालने के अभिप्राय से कहा, 'नहीं, नहीं शोभा ! इस दुपहरी के समय में तुम क्यों कष्ट करती हो ? और वे भी तुम्हें देखकर प्रसन्न नहीं होंगे। वे स्वभाव के बहुत रूखे हो चुके है; अधिक मेल-जोल पसंद नहीं करते और बड़ हलके मन के हो चुके हैं। जो कुछ मुँह में आता है, बिना सोचे समझे बक देते हैं। यदि उनके मुख से कुछ अनुचित निकल गया तो तुम्हें कष्ट होगा और घर की बात कहती हो तो वह तुम्हें फिर कभी दिखा दूँगी। इस दुपहरी में तुम्हें परेशान होने की क्या आवश्यकता है ?'

"मैंने ये सब बातें शोभा के अपने साथ घर जाने के संकल्प को तोड़ने के अभिप्राय से कही थीं। पर मेरी बात सुनकर न जाने शोभा को कहाँ उसमें छिद्र मिल गया। वह हँसकर बोली, 'मैं तुम्हारे उनको छीन कर नहीं ले आऊँगी सरला ! अगर वे वैसे ही होते, जैसी तुम उनकी प्रशंसा कर रही हो तो तुम इतना विलम्ब करके कभी न आतीं और आकर भी उनकी सेवा में पहुँचने के लिए इतनी उतावली न होती। चलो, मैं उनकी किसी बात का बुरा न मानूँगी।'

"इतना कहकर शोभा मेरे साथ-साथ चलने लगी। मैं मन-ही-मन मरी जा रही थी, भगवान ने यह कैसी विडम्बना मेरे माथे पटक दी ? मुझसे न चलते बनता था न रुकते। लाचार होकर मुझे शोभा के साथ-साथ चलना पड़ा। सड़क पर आकर हमने टैक्सी की और भवानीपुर की ओर चल दीं। रास्ते भर मेरे मुख से कोई बात न निकली। मेरी चुप्पी शोभा के लिए मेरे पति-प्रेम की सूचक बन गई। वह मेरी ओर देखती हुई बोली, 'पति के लिए बहुत चिन्तित हो सरला ! इतना प्रेम

उनसे करती हो ? तुम धन्य हो !'

"शोभा की बात मेरे हृदय पर दहकते हुए अंगारे की भाँति जा लगी। पर मैं उत्तर भी देती तो क्या ? मुझे रुलाई-सी आ गई। मेरी यह रुलाई शोभा ने पति के लिए मेरा अगाढ़ प्रेम समझा और उसने प्रेम से मेरे मुख को अपनी ओर घुमाते हुए कहा, 'वह व्यक्ति बहुत भाग्यवान् है सरला ! जिसे तुम्हारी जैसी सती, साध्वी और प्रेममयी पत्नी मिली।'

"मुझ पर यह दूसरा तीर छोड़ा गया था, जो मेरे कलेजे को बींधकर आर-पार हो गया। मैं ही जानती थी कि मैंने अपने पति से कितना प्रेम किया है और कितनी घृणा। मेरा मन तिलमिला उठा। सम्भव था कि आवेश में मेरे मुख से कुछ निकल जाता, पर विधाता की ओर से मेरी रक्षा हुई। टैक्सी के सामने से एक बालक भागकर निकल रहा था। टैक्सी चालक को एकदम ब्रेक लगानी पड़ी, जिससे झटका खाकर हम सब की चेतना उधर हो गई। शोभा का मन भी मेरी ओर से हट गया था। इतने में हम अपनी कोठी के सामने पहुँच गई। मैंने टैक्सी रुकवा ली और हम दोनों टैक्सी से निकलीं। शोभा ने टैक्सी का किराया दिया और मेरे साथ कदम बढ़ाती हुई कोठी में प्रविष्ट हुई।

"मैं मन-ही-मन भयभीत हो रही थी कि कोठी के अन्दर पहुँचकर न जाने क्या हो ? मेरे पति किस हालत में हों ? यदि वे वैसे ही पड़े हुए मिले, जिस दशा में मैं उन्हें छोड़ गई थी तो उन्हें देखकर शोभा क्या सोचेगी ? मैं शोभा को मुँह दिखाने लायक भी रहूँगी या नहीं ? पर जो होने वाला था, उसे कौन टाल सकता था। मैं शोभा को अपने पति के पास न ले जाकर सोने वाले कमरे में ले गई। मेरे जाने के बाद चन्दू ने उस कमरे को सुचारु रूप से सजा दिया था। सभी सामान यथास्थान रखा जा चुका था। पलंग पर मसहरी लगी हुई थी पर पलंग रिक्त था। इससे पहले कि शोभा मुझसे कुछ पूछे, मैंने कृत्रिम आवेश में चिल्लाना आरम्भ कर दिया, 'चन्दू ! चन्दू !!'

"मेरी आवाज सुनकर चन्दू भागा हुआ आया और मेरे सामने खड़ा होकर मेरा मुख देखने लगा। मैंने डाँटते हुए पूछा, 'साहब कहाँ गये ?' वह विस्मित-सा मेरा मुख देखने लगा। वह कुछ उत्तर दे कि इससे पहले मैंने पुनः डाँटा, 'मेरा मुख क्या देख रहा है ? साहब कहाँ गए है ? बताता क्यों नही ?'

"मेरी उग्र मूर्ति और फटकार सुनकर भय और आश्चर्य से उस वृद्ध के मुख से सत्य बात भी न निकल सकी। उसने केवल उस कमरे की ओर संकेत मात्र कर दिया, जिसमे मेरे पति थे। मै आँधी की भाँति उस कमरे की ओर गई, जहाँ पर उन्हे तड़पता और कराहता हुआ छोड़कर चली गई थी। शोभा मेरे साथ-साथ थी। भय और क्रोध ने मेरे अभिनय को पूरा उतरने मे सहायता की। हमारे पीछे-पीछे चन्दू भी वहाँ तक पहुँच गया था।

"मेरे पति अधमरे से होकर उसी भाँति फर्श पर पड़े हुए थे। मैंने जाकर उन्हे भी डाँटना आरम्भ कर दिया—'यह क्या ? तुम यहाँ आकर इस प्रकार क्यों पड़ गए हो ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? तुम मुझे जीने क्यों नही देते ? एक ही बार मेरे टुकड़े-टुकडे करके फेक क्यों नहीं देते ?'

"रुलाई से मेरा गला रुँध गया और मैं फूट-फूटकर रोने लगी।

"उस दिन का मेरा रोना और बिलखना कृत्रिम नही था बेटी ! उसका कारण होने वाली ग्लानि और अपमान का भय था। यदि मेरे पति या चन्दू एक शब्द भी मेरे विरुद्ध कह देते कि मै स्वयं ही तो उन्हें ऐसी हालत मे छोड़कर चली गई थी तो मै जन्म भर शोभा को मुँह दिखाने योग्य न रहती। मै रोई और बिलखी तो अपने लिए थी, अपने अपमान के भय के कारण, पर शोभा पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। वह मेरी उस विकलता और रुदन को पति के प्रति मेरा प्रेम और स्नेह समझने लगी। मेरे पीछे खड़ी हुई शोभा उनका मुँह देख रही थी।

"अपने पति का जैसा चित्र मैंने शोभा के सामने खीचा था, उसमें

और इस सौम्य, शान्त, सुन्दर मूर्ति में तनिक भी समानता नहीं थी। यद्यपि आज वे अस्वस्थ थे, उनका मुख म्लान पड़ चुका था, पर मैं आज भी दावे से कह सकती हूँ कि उन जैसा व्यक्ति हजारों में एक हो सकता है। शोभा उन्हें देखकर स्थिर दृष्टि से देखती ही रही। मैं फूट-फूटकर रो रही थी। मुझे व्यथित देखकर उनका हृदय तड़प उठा। उन्होंने दुर्बल वाणी में कहा, 'मुझसे क्या कोई भूल हो गई है सरला!'

"उनकी मधुर और मीठी बात सुनकर शोभा विस्मय से मेरा मुख देखने लगी। वह मन-ही-मन सोच रही थी कि क्या अपने पति की इसी बातचीत को मैं कड़ुवी और असभ्यतापूर्ण कहती थी, पर मैंने किसी को भी अधिक सोचने का समय न दिया और उसी प्रकार रोती हुई बोली, 'तुम आरम्भ से ही भूलें करते आ रहे हो। तुम सबके सामने मुझे अपमानित करना चाहते हो। तुम यही चाहते हो कि तुम्हें ऐसी दशा में देखकर सब लोग यही समझें कि मैं तुम्हारी देखभाल नहीं करती, तुम्हारी सेवा नहीं करती। यही चाहते हो न तुम? इसलिए इस रुग्ण शरीर को लेकर ठण्डी जमीन पर केवल एक दरी बिछाकर आ लेटे हो।'

"मेरे पति मेरे अभिप्राय को समझ गए और मन-ही-मन मुस्कुराकर बोले, 'भूल हो गई सरला! क्षमा करो। पलंग पर सोते-सोते कुछ गरम प्रतीत हुआ, इसी कारण इस फर्श पर आ लेटा हूँ। यह कह वे उठकर बैठ गए। उनके नेत्र ताप से लाल सुर्ख हो रहे थे, मुख का रंग पीला पड़ चुका था, हाथ-पाँव अशक्त हो चुके थे। उन्होंने उठकर खड़ा होने के लिए मेरा आश्रय चाहा, पर मैंने उन्हें उठाने की कोई चेष्टा नहीं की। उन्होंने इधर-उधर देखा, सम्भवतया उठने के लिए किसी का आश्रय चाहते थे।

"शोभा उनके सामने खड़ी थी। वह उनके लिए अपरिचित न थी, किन्तु अन्य थी। वह स्वयं ही हिम्मत करके उठ खड़े हुए। परन्तु खड़े होते ही उनका माथा चकरा गया, आँखों के सामने अंधेरा छा गया। वह चक्कर खाकर गिरने ही जा रहे थे कि शोभा ने तत्परता से आगे बढ़-

कर उनका सारा भार अपने कन्धे पर ले लिया। मैं नेत्र फाड़-फाड़कर शोभा की ओर देखने लगी। जो मेरा कर्तव्य था, वह मैंने पालन नहीं किया। पर विधाता मेरे अनुकूल थे। मेरी हर नीचता अथवा कर्तव्य-विमुखता शोभा की दृष्टि में पति के प्रति मेरे अथाह प्रेम का सूचक बनता गया। वह मेरी ओर देखकर बोली, 'इतनी चिन्तित न होओ सरला ! भावनाओं में बहकर कर्तव्य को न भूलो। ऐसी अवस्था में तो तुम्हें मन को कड़ा कर लेना चाहिए। यदि इनके दुःख से दुःखी होकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाओगी तो इनकी सेवा कौन करेगा ? जाओ जाकर बिछौना ठीक कर दो। मैं इन्हें लेकर आती हूँ।'

"मैं कमरे से बाहर निकलकर सोने वाले कमरे में आई। पलग पर बिछा बिछौना मैंने पुनः अपने हाथ से झाड़कर बिछाया। शोभा धीरे-धीरे अपने कन्धे का आश्रय दिये उन्हें ले आई और उन्हें पलंग पर लिटाते हुए मुझसे बोली, 'इनकी हालत ठीक नहीं है सरला ! विलम्ब न करो और शीघ्रातिशीघ्र किसी डॉक्टर को बुला लाओ। इनके शरीर का ताप एक सौ पाँच डिग्री से कम नहीं है।'

"शोभा की बात सुनकर मेरे प्राण सूख गये। मैंने आज तक किसी भी अस्वस्थ व्यक्ति की सेवा नहीं की थी और न ही इस विषय में कुछ जानती थी। मै किंकर्तव्य-विमूढ़-सी खड़ी हुई शोभा का मुँह देखने लगी। शोभा ने क्षुब्ध होकर कहा, "अभी तक यहीं हो सरला ! जाओ शीघ्रता से किसी डॉक्टर को बुला लाओ।'

'कौन-से डॉक्टर को बुला लाऊँ शोभा ! मैं तो यहाँ किसी को भी नहीं जानती।'

शोभा बिगड़कर बोली, 'तुम भी अजीब लड़की हो सरला ! सड़क पर जाकर किसी से पूछ-ताछ करो। जो भी निकटवर्ती अच्छा डॉक्टर हो उसे बुला लाओ।

"शोभा की घबराहट देखकर मैं भी अपने पति की चिन्तित अवस्था का अनुभव करने लगी। उनके अमंगल का ध्यान कर मेरा हृदय तड़प

उठा। मैं चन्दू को लेकर शीघ्रता से सड़क पर गई और पास ही एक दुकान पर डॉक्टर का साइन-बोर्ड देख उसे बुला लाई। डॉक्टर साहब आए। मैंने कमरे में जाकर देखा, पलंग के चारों ओर मच्छरदानी लगा दी गई थी। उनका सिर अपनी गोदी में रखकर शोभा, पानी में भिगो-भिगो कर अपना रुमाल उनके सिर पर रख रही थी। शोभा को तन-मन से उनकी सेवा करते देख मुझे ईर्ष्या हो आई, पर इस समय मैं कुछ कह नहीं सकती थी।

"डॉक्टर ने नाड़ी देख परीक्षा करते हुए कहा, 'यह कहीं सर्दी खा गए हैं।'

"डॉक्टर की बात सुनकर मुझे बीती रात का स्मरण हो आया। वे मेरे ही घर में, मेरे कमरे के ठंडे फर्श पर रात भर पड़े रहे थे। यह जानकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए। चिन्ता तो शोभा को भी हुई, पर उसने साहस नहीं छोड़ा था। डाक्टर पुरजा लिखकर दे गया। मैंने चन्दू को भेजकर दवा मँगवा लेनी चाही। शोभा ने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, 'तुम स्वयं जाओ सरला! पढ़ी-लिखी हो, देख-भालकर असली दवाई लाओगी। नौकर के भेजने से दाम भी चौगुने लगेंगे और दवा भी अच्छी नहीं मिलेगी।'

"मन के न चाहने पर भी मुझे स्वयं जाना पड़ा। लगभग आधा घंटे बाद जब मैं लौटी, दवा की शीशी मेरे हाथ में थी। मैंने दहलीज पर पाँव रखते ही देखा। शोभा का एक हाथ मेरे पति अपने दोनों हाथों में लिए हुए अपनी छाती पर सटाये नेत्र मूँदकर पड़े हुए थे। शोभा अपने दूसरे हाथ से उनका माथा सहला रही थी। यह दृश्य देखकर मेरा रक्त खौल उठा। जिस पति का मैंने आज तक तिरस्कार दिया था, जिसको मिट्टी का एक ढेला मात्र समझकर मैं अपने पाँवों के तले रौंदती आ रही थी, आज उसी अस्वस्थ पति के पास अन्य युवती को बैठी देखकर मारे ईर्ष्या के मेरा रोम-रोम जलने लगा। शोभा मेरे पति को स्नेह और प्यार की दृष्टि से क्यों देख रही है? उसे मेरे पति के शरीर को स्पर्श

करने का क्या अधिकार है ? वह कौन होती है मेरे पति के माथे को सहलाने वाली ?

"मेरे नेत्रों पर अज्ञानता का पर्दा पड़ा हुआ था । मैं वस्तुस्थिति को न जानते हुए अपने पति और शोभा को नीच और चरित्रहीन समझने लगी और मन-ही-मन कहने लगी, 'बड़े बगला-भगत बनते थे । देखने में कितने सीधे-सादे सत्यवादी लगते थे । आज पोल खुल गई । मैं यदि पतिता हूँ तो वे भी दूध के धोए हुए नहीं हैं । वे सिंह की खाल में छिपे हुए भेड़िया हैं । मैं अकारण ही आज तक इनसे डर-डरकर मरती रही हूँ । शोभा में क्या है जो मुझमें नहीं ? किस वस्तु में शोभा मुझ से अधिक आकर्षक है, जिस पर उनका मन रीझ गया है ? और यह शोभा निर्लज्ज, कुलक्षणी, चरित्रहीना इनके अस्वस्थ होने की बात सुनकर कुम्हला गई थी । आज तक छिप-छिपकर मिलते रहे होंगे, मुझे धोखा देते रहे होंगे । तभी तो इनका भार शोभा ने अपने ऊपर ले लिया था ।

"मेरे ऐसे नीच विचार मुझे ही तिल-तिल जला रहे थे । ईर्ष्या के आवेश ने मुझे अंधा कर दिया । मैंने चिल्लाकर कहा, 'शोभा !'

"मेरी चिल्लाहट सुनकर शोभा चौंक उठी । उसने मेरी ओर देखा । पर यह क्या, उसके मुख पर तनिक भी तो भय नहीं था; इस बात की तनिक भी लज्जा नहीं थी कि उसकी भद्दी बात मैंने पकड़ ली है । पर वह मुस्कुरा क्यों रही है ? मैं आश्चर्य से उसका मुख देखने लगी ।

"शोभा ने अपना हाथ उनके हाथों में से धीरे-धीरे छुड़ा लिया और धीरे-धीरे पलंग से उठकर मेरे पास आई । होठों पर उँगली रखकर चुप रहने का संकेत करती हुई मुझसे बोली, 'इनका बुखार कम हो गया है । इनकी इच्छानुसार, इनके माँगने पर मैंने औषधि इन्हें दे दी है । अब ये सो रहे हैं । बिना इनके जागे औषधि देनी उचित नहीं ।'

"शोभा ने आगे बढ़कर मेरे हाथ से दवाई की शीशियाँ ले लीं और एक मेज पर रख दीं । मैं मूढ़ों की भाँति उसका कार्य देखती रही और समझ न सकी कि शोभा ने उनके माँगने पर कौन-सी औषधि उनको दी

है, जिससे उनका ताप कम हो गया और वे सो गए हैं ।

"शोभा मेरी ओर देख-देखकर मुस्कुराती रही, पर मेरे कलेजे पर साँप लोटते रहे । मैं ग्रीवा झुकाए चुप-चाप खड़ी थी । न जाने शोभा को क्या सूझी कि एकदम मुझसे लिपट गई और मेरा मुख चूमकर बोली, 'सौभाग्यवती हो सरला ! इतना प्रेम करने वाला पति तुम्हें मिला, जो अपनी मूर्च्छित अवस्था में भी तुम्हीं से बातें करता है ।'

"मैं विस्मय युक्त हो शोभा का मुँह देखने लगी । वे मूर्च्छित अवस्था में भी मेरा चिंतन करते रहे हैं, यह जानकर मेरे हृदय की सारी ग्लानि, ईर्ष्या और क्षोभ मिट गए । समय पाँच बजे का हो गया था ।

'मैं अब चलती हूँ सरला ! तुम अपने पति के उठने के बाद डाक्टर की व्यवस्थानुसार इन्हें दवा देती रहना । मैं कल प्रातः पुनः आकर समाचार लूँगी ।'

"लगभग आठ बजे उनकी आँख खुली । उन्होंने मुझे पुकारा । यह तीन घंटे किस प्रकार व्यतीत हो गए थे, मैं स्वयं भी समझ न पाई । उनके पुकारने पर मैं उठी । उन्होंने मुझसे पीने के लिए पानी माँगा । मैंने कहा, 'पहले आपको दवा लेनी होगी ।'

"दे दो ! ' कहकर उन्होंने मेरी ओर स्नेह से देखा । मैंने उन्हें दवा की मात्रा तैयारकर पिला दी और पुनः लौटकर सोफ़े पर बैठने चल रही थी कि उन्होंने मेरा आँचल पकड़ लिया । मैंने मुड़कर उनकी ओर देखा । वह स्नेह से बोले, 'सचेत होने से तो यही अच्छा था कि मैं अचेत ही पड़ा रहता सरला ! तुम्हारे प्यार का हाथ तो मेरे माथे पर फिरता रहता । तुम्हारे मधुर अधरों का स्पर्श तो मैं अपने माथे पर अनुभव करता रहता ।'

"उनकी यह बात सुनकर मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा । मुझे वह दृश्य स्मरण हो आया, जो कुछ ही समय पूर्व मैंने अपनी आँखों से देखा था । मैं सोचने लगी क्या मेरा हाथ समझकर ही यह शोभा के हाथ को अपने हृदय से लगाए पड़े थे ? क्या अपने मस्तक पर होते हुए चुम्बन

को मेरे अधरों का स्पर्श समझकर ही यह तृप्ति पा रहे थे ?

"पर मेरे दुर्भाग्य ने अभी मेरा पीछा नहीं छोड़ा था बेटी ! उस समय पुनः मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। मुझे शोभा पर क्रोध हो आया, जिसने मेरे अधिकार पर छापा मारा था। मुझे उनका मस्तक भी मलिन प्रतीत होने लगा, जिस पर शोभा के चुम्बन का स्पर्श हुआ था। मैंने इन सब बातों में उन्हीं का पाखंड समझा। ईर्ष्या ने मेरी आँखों पर परदा डाल दिया था। मैं रूखे स्वर में बोली, 'आपकी बीमारी का इलाज हो चुका है न ! आप आराम से सोते रहिए। मुझे यह खोखली बातें पसंद नहीं, जो आप मुझे सुनाना चाहते हैं।'

"मेरी हल्की-सी फटकार सुनकर उन्होंने मेरी ओर देखा। मैंने अभिमान से मुख फेर लिया। मेरा विचार था कि वह अनुनय-विनय करेंगे, मुझे मनायेंगे, माथे पर हाथ फेरने के लिए मुझे बाध्य करेंगे। किन्तु उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, 'ठीक है, जहाँ तुम्हें सुख मिले वहीं बैठो सरला !'

"काश, वे मुझे मेरी कलाई पकड़ कर खींचते हुए आग्रह करते या मेरी उपेक्षा वृत्ति से क्रुद्ध होकर मुझे कुछ भला-बुरा कहते। मुझे आज्ञा देते कि मैं उनके पैर दबाऊँ। यदि एक बार भी वह अपने पति होने के अधिकार का प्रयोग करते तो मैं उनके तलुए भी चाटने पर राजी हो जाती। पर उनकी उपर्युक्त बात सुनकर मेरा अभिमान पुनः जाग उठा। द्वेष ने पुनः सिर उठाया, ईर्ष्या ने पुनः नेत्र खोले। मैं झटके से अपना आँचल सम्हालती हुई कमरे से बाहर निकल गई। मेरे मन की ज्वाला दहक उठी थी, जिसमें हुई जलकर मैं स्वयं ही भस्मीभूत होने लगी।

"मैं उन्हें उसी अवस्था में छोड़कर कोठी से बाहर निकल गई। उनकी यह दया या आदर्शवादिता मुझे काँटों की तरह गड़ती थी। इससे मैं अपने आपको बहुत छोटा अनुभव करने लग जाती थी, मैं अपने आपको तिरस्कृत समझने लगती थी। तब मेरा अभिमान सिर उठाता था और मेरे मन में उनके प्रति द्वेष उमड़ आता था। मैं चाहती थी कि वे मनुष्य

बनकर ही मेरे सामने आएँ, देवता बनकर नहीं। मैं मनुष्य हूँ। वे भी मनुष्य बनें। एक मनुष्य यदि भूल करता है तो दूसरा मनुष्य उसे क्षमा कर देता है। जैसी भूलें मैं करती आ रही थी, वे उन सबको क्षमा भी कर चुके थे। मैं चाहती थी कि वे भी कुछ ऐसी भूलें करें ताकि मैं भी उन्हें क्षमा करूँ और उनके अपने सिर पर आ पड़े अनुग्रह का बोझ कुछ हल्का करूँ, पर वे किसी भी बुराई में पड़ने से कोसों दूर भागते थे, जो मानव-समाज के विरुद्ध है। उनका देवपना ही मुझे सबसे अधिक खटकता था।

: १६ :

"मैं इन्हीं भाव-तरंगों में सड़क पर आ गई और टैक्सी पकड़कर मैक्स के घर जा पहुँची। मेरी उद्विग्नता का उपचार मैक्स भलीभाँति जानता था। जब मैं टैक्सी में उसकी कोठी के बाहर पहुँची तो वह कहीं जा रहा था। वह मुझे देखकर रुक गया। मैंने संकेत से ही उसे टैक्सी में बैठने के लिए कहा। वह प्रसन्न वदन मेरी बगल में आ बैठा और गले में बाँह डालकर बोला, 'कल सारा दिन तुम कहाँ रहीं'?'

"मैंने उत्तर न देकर तिरछी दृष्टि से उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। उसने मुझे अपनी ओर खींचकर बाजुओं में भींच लिया और मेरे मचलने अथवा ननु न च करने पर भी वह जी भरकर मुझसे प्यार करने लगा। उसने यह भी न सोचा कि हम चलती हुई टैक्सी में बैठे हैं। गनीमत यही थी कि समय रात का था और सुनसान सड़क पर आ-जा रहे थे। अन्त में हम दोनों एक होटल में पहुँचकर डिनर के लिये बैठ गये। मेरे मन की सारी ग्लानि, सारा क्रोध अथवा चिन्ता दूर हो चुकी थी। हमने थोड़ी-बहुत मदिरा भी पी। मदिरा के नशे में मुझे शोभा का ध्यान हो आया, जिसने आज मेरे पति के माथे का चुम्बन लिया था। मुझे गुस्सा अपने पति पर आने लगा था। मैं सोच रही थी—जब उन्हें अपने माथे पर किसी के चुम्बन का आभास मिला था, तो उन्होंने

आँखें खोलकर शोभा की ओर क्यों नहीं देखा ? और शोभा को दुतकार क्यों नहीं दिया ? अवश्य ही वे सचेत थे और उन्होंने जान-बूझकर मुझे जलाने के लिये शोभा से प्यार पाया होगा ।

"यह सोचकर मेरे मन में एक उच्छृङ्खल भाव उठा कि मैं भी क्यों न उन्हें जलाऊं ? मैं भी अपनी जलन का पूरा प्रतिशोध उनसे क्यों न लूं ? मदिरा का नशा मुझ पर हावी होता जा रहा था और उसी झोंक में अपने पति को सताने का मेरा संकल्प दृढ़ होता जा रहा था । मैं और मैक्स होटल से डिनर लेकर बाहर निकले और टैक्सी में बैठकर मैंने ड्राइवर को भवानीपुर चलने को कहा । थोड़ी देर में मैं मैक्स को साथ लिये हुए अपने घर आ पहुँची । दरवाजा खुला था, कमरे की बत्ती जल रही थी । मैं नशे में मदहोश हो चुकी थी । मैक्स के भी पाँव लड़खड़ा रहे थे । बिना उचित-अनुचित का ध्यान किये मैं मैक्स को उसी कमरे में ले आई, जिसमें मेरे पति पलंग पर लेटे हुए थे । हम दोनों को कमरे में प्रविष्ट होते देखकर मेरे पति उठकर पलंग पर बैठ गये । मैक्स ने नशे की झोंक में लड़खड़ाती जबान से मुझसे पूछा, 'हू इज दिस मैन ? डार्लिंग !'

"मैंने भी उसी प्रकार लड़खड़ाती जबान से उत्तर दिया, 'तुम चिन्ता न करो मैक्स ! यह मेरे पति हैं ।'

"मेरी बात सुनकर मैक्स विस्मित होता हुआ बोला, 'पति मीन्स हसबैन्ड, योर हसबैन्ड ! ओ आ हा हा''''''ओ, आ, हा हा ।'

"मैं उस समय नशे में इतनी अंधी हो चुकी थी कि मुझे तनिक भी ज्ञान नहीं था कि मैं कितना बड़ा अनर्थ करने चल रही थी । अपने वीर धीर पति के सामने एक लम्पट प्रेमी को खड़ाकर देना गिरी-से-गिरी स्त्री भी सोच तक नहीं सकती, जो मैंने किया । मेरे पति उसी प्रकार शान्त किन्तु दृष्टि में व्यथा लिए हुए मेरी ओर देख रहे थे । मैक्स उसी प्रकार ओ, आ, हा हा करता हुआ मेरे पति के पास जाकर पलंग पर बैठ गया और कुछ देर झुककर उनका मुख देखने के बाद पुनः खिलखिलाकर हँसता हुआ बोला, 'जेंटलमैन ! यू गैट अवे । मोस्ट जेंटलमैन गैट अवे ।'

यह कहता हुआ मैक्स पुनः ठहाका लगाकर हंसने लगा।

"मैक्स की इस कुकृति से मेरे पति के नेत्रों में खून उतर आया। न जाने उनके नेत्रों में कितनी शक्ति थी कि मेरी दृष्टि उनके साथ मिलते ही मेरा सारा नशा हरिण हो गया और मैं थर-थर कांपने लगी। मैक्स उसी प्रकार मेरे पति का मजाक उड़ा रहा था। अनायास ही उसकी खिलखिलाहट एक चीख में परिवर्तित हो गई। मैंने देखा मेरे पति का एक घूंसा खाकर मैक्स पलंग के दूसरी ओर लुढ़ककर जा गिरा था। मेरे पति भी पलंग से नीचे उतर आए। मैक्स का नशा भी उतर गया। उसके मुख से रक्त बह रहा था। संभवतः उसके कुछ दांत टूट गए थे।

"वह क्रोध में बड़बड़ाता और गालियाँ बकता हुआ अपने भारी डीलडौल वाले शरीर को झुलाता, मुक्का तानता हुआ मेरे पति की ओर लपका, पर वे उसी प्रकार शान्त खड़े थे। मैक्स ने मुक्का तानकर उन्हें मारा। पर यह क्या? मैंने देखा, उल्टा मैक्स ही पछाड़ खाकर फर्श पर जा गिरा है और मेरे पति वैसे ही शान्त खड़े हैं। मैक्स ने अपने आस्तीन से मुख से बहते रक्त को साफ किया और पैंट की जेब में से सात इंच लम्बा चाकू निकालकर उन पर वार करने के लिए तैयार हो गया।

"मैक्स के हाथ में चमचमाता चाकू देखकर मेरी चीख निकल गई। मेरे पति के मुख का रंग भी कुछ फीका पड़ गया, पर वे विचलित नहीं हुये। उन्होंने चट से पलंग पर पड़ी हुई चादर उठा ली। मैक्स के उन पर झपटने से पहले ही वह चादर मैक्स के मुँह पर दे मारी और इतने ही समय में स्फूर्ति से अपने मेज की दराज में से पिस्तौल निकालकर सामने खड़े हो गए। क्रोध से बिफरे हुए सिंह की भांति मेरे पति मैक्स की ओर बढ़े। मैक्स उनके हाथ में पिस्तौल देखकर थर-थर काँपने लगा। मैंने अपने पति की ऐसी रुद्र मूर्ति आज तक नहीं देखी थी।

"वे चाहते थे कि एक ही बार में मैक्स का काम तमाम कर दें। पर मैं चिल्ला उठी और लपककर उनके आगे खड़ी हो गई। मेरे नेत्रों में से भय छलक रहा था; आँसू तैर रहे थे। मेरे पति का तना

हुआ हाथ ढीला पड़ गया। हाथ की पिस्तौल उन्होंने पलंग पर फेंक दी। उनकी ग्रीवा झुक गई। वे व्यथा से पीड़ित हँसी हँसते हुए यह कहकर चले गए, 'यदि तुम भी यही चाहती हो सरला! तो मैं चला जाता हूँ।' "

इतना कहकर नकटी नानी चुप हो गई। हम सब लड़कियों का शरीर काँप रहा था, रोम-रोम खड़ा हो गया था। जैसे हम किसी सिनेमा हाउस में बैठीं किसी करुणाजनक दृश्य को देख रही हों। नकटी भिखारिन के चुप हो जाने से उसकी वाणी का अभाव हमारे कानों में खटकने लगा। इतने में शीला ने कहा, "अन्त में तुमने उसे बचा ही लिया न! इससे तो यही सिद्ध हुआ कि तुम मैक्स से ही प्रेम करती थीं, अपने पति से नहीं?"

नानी बोली, "यदि आज सोचती हूँ, तो नहीं ही करती थी बेटी! मेरा प्यार मेरे पति पर ही था, परन्तु वह मेरी चेतना से बाहर था। मेरे अचेतन के किसी कोने में पड़ा पनप रहा था। अब तुम यह पूछना चाहती होगी कि यदि ऐसी बात थी तो मैं मैक्स को बचाने के लिए उतावली क्यों हो उठी थी? सो मैं तुम्हें उन्हीं के चरणों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं मैक्स की मृत्यु से भयभीत नहीं हुई थी। मुझे भय उन्हीं का था। मैक्स की हत्या कर उन्हें भी स्वयं फाँसी के तख्ते पर झूलना पड़ता। मैं उनके हाथ से किसी की हत्या करवाकर हत्यारा नहीं बनने देना चाहती थी। यही भावना उस समय मुझमें प्रबल थी।"

नकटी की यह बात सुनकर हम सब पुनः एक बार आश्चर्यचकित होकर उसका मुँह देखने लगीं। मैं सोच रही थी कि यह भी विचित्र नारी है! प्यार पति से और समर्पण मैक्स के चरणों में। मैं कई बार उपन्यासों में पढ़ चुकी थी कि प्यार देकर ही प्यार पाया जाता है, पर नानी अपने पति से प्यार करती हुई भी उसे जलाती रही है। यह कैसी विचित्र बात है! प्रेम क्या किसी को जलाने या कष्ट देने के लिए प्रेरित करता है? पर नहीं, ऐसा है नहीं। प्रेम को तो सभी अमृत कहते हैं। नकटी का प्रेम तो विषाक्त कहा जा सकता था। संभवतः इसे ही राक्षसी

प्रेम कहते हों। परन्तु मैंने आज से पहले न तो राक्षसी प्रेम के विषय में सोचा ही था और न ही किसी के मुख से उसकी व्याख्या ही सुनी थी। परन्तु अपनी माँ के मुख से सुन रखा है कि सर्पिणी प्रेम के आवेश में आकर अपने बच्चों को स्वयं ही खा जाती है।

माँ का कहना है कि प्रेम, जो अतीव प्रगाढ़ प्रेम है, वह भी एक प्रकार का उन्माद है, व्यक्ति उस प्रेम में आकर संज्ञाहीन हो जाता है। मुझे स्वयं पर बीती घटना स्मरण हो रही है कि बाल्यकाल में जब मम्मी मुझसे प्रेम करने लगती थी तो मेरे कोमल कपोलों को चूमा करती थी और कभी-कभी दाँत काट देती थी। जैसे वह मुझे चबा जाना चाहती हो, मुझे अपने में ही विलीन कर लेना चाहती हो। उसके इस अत्याचार से मैं चिल्ला उठती तब उसे चेतना आती और वह मुझे छाती से लगाकर प्यार से फुसलाकर चुप करवाती।

मेरी एक विवाहिता सहेली भी यही शिकायत किया करती थी कि उसका युवक पति जब प्रेम के आवेश में बह जाता था तो उस पर अत्याचार करता था। मेरी सहेली अपने पति के उस अत्याचार से दुखी होकर मायके भाग आया करती थी, पर वह एक दिन भी रह नहीं सकती थी। दूसरे दिन वही अत्याचार सहने के लिए अपने पति के पास पहुँच जाती। मैं सोच रही थी कि सम्भवतः नकटी नानी का भी अपने पति से ऐसा ही प्रेम हो।

नानी कहने लगी, "उनके कमरे में से निकल जाने के बाद मैंने मैक्स की ओर देखा। मैक्स का सारा शौर्य और शिष्टाचार धुल-पुछ चुका था। उसका मुख किसी हिंसक पशु से कम डरावना प्रतीत नहीं हो रहा था। वह अशिक्षित जंगलियों की भाँति मेरे पति को गालियाँ बक रहा था। अपने पति के विरुद्ध ऐसे अपशब्द सुनकर मेरा मन जल उठा। मैं क्रुद्ध हो उठी और मैक्स को डाँटती हुई बोली, 'अब क्या बकवाद कर रहे हो मैक्स ! जिनका तुमने अपमान किया है उन्होंने यदि तुम्हें कुछ थोड़ा दण्ड भी दिया तो रोते क्यों हो ?'

—९

"मेरी बात सुनकर मैक्स और भी क्रुद्ध हो उठा और उठकर मुझ पर झपटा। उसने मुझे अपने अंकुश में भर लेना चाहा, किन्तु मैं तड़पकर एक ओर निकल गई। मैक्स फिर बड़बड़ाने लगा, 'मैं उस पशु से अवश्य बदला लूंगा सरला! तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।'

"मैंने रोष में भरकर मैक्स को उत्तर दिया, 'तुम अपनी खैर मनाओ मैक्स! आज मेरे कारण प्राण बच गए। याद रखो दुबारा उनका सामना करोगे तो जान से हाथ धो बैठोगे। आज मुझे मालूम हुआ कि तुम कितने नीच और स्वार्थी हो। मुझसे तुम यह चाहते हो कि मैं अपना सुहाग उजाड़कर तुम्हें प्रसन्न करूं?'

'मगर मेरा जो अपमान...... ।'

"उसकी बात पूरी होने से पहले ही मैंने डपटकर कहा, 'बकवाद बन्द करो। मैं उनके विरुद्ध कुछ भी सुनना नहीं चाहती। जाओ, चले जाओ यहां से।'

"मेरी फटकार सुनकर मैक्स मेरे मुख की ओर देखने लगा। वह समझ ही नहीं रहा था कि आज मुझे क्या हो गया है। वह मेरी कमजोरी को जानता था। मुझे प्रसन्न करने के लिए उसने पुनः मुझे अपने बाजुओं में भर लेना चाहा किन्तु आज मैं दुर्बल नहीं थी, मुझे अपने स्वामी पर गर्व था। मैं निराश्रय या निराधार नहीं थी। आज मुझे विश्वास हो गया था कि मेरे लिए मेरे पति का आश्रय उस चट्टान की तरह दृढ़ और मज़बूत है जो भयानक-से-भयानक आँधी और तूफान में भी मेरी रक्षा कर सकता है। मैं मैक्स की पकड़ में न आई। मैक्स अपने अभ्यासानुसार मुझ पर बल-प्रयोग करने लगा। उस समय मेरा हृदय किसी भी सती साध्वी अथवा पतिव्रता स्त्री से शुद्धता और पवित्रता में कम नहीं था। मैक्स के हाथ एक बार पुनः मुझे पकड़ने के लिए आगे बढ़े। मैंने झटका देकर अलग कर दिया। वह क्रोध में पशु बन गया और मुझे गालियाँ देने लगा। वह चाहता था कि मुझसे बलात्कार करे, परन्तु मेरा मन उस समय उतना ही पवित्र था जितनी प्रज्वलित अग्नि की लपटें। मैं

उसकी छाया से भी छू जाने पर अपने सतीत्व की हानि समझती थी।

"तुम सब मन में हँसोगी और सोचती होगी कि सौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली। पर मैं तुम लोगों से सत्य कहती हूँ कि उस समय मैं पूर्ण भारतीय नारी बन गई थी। सच ही तो है, मन की ही पवित्रता या पतिव्रता सत्य है। यह पंचभौतिक शरीर तो केवल एक खोल मात्र है। जिस प्रकार मैला कपड़ा धुलकर साफ हो जाता है वैसे ही मन भी मनुष्य का पवित्र हो सकता है और मन पवित्र हो जाने पर तन की सारी मैल स्वयमेव कट जाती है। मन से ही साधु और चोर होते हैं। तन तो केवल उपकरण मात्र है। तीक्ष्ण छुरी से किसी की हत्या भी की जा सकती है, और डॉक्टर लोग किसी व्यक्ति के सड़े-गले मांस को काटकर उसे जीवन दान भी दे दिया करते हैं। छुरी तो छुरी है न अच्छी है न बुरी। अच्छा बुरा तो उसका प्रयोग हो सकता है। छुरी केवल उपकरण मात्र है। इसी प्रकार शरीर भी उपकरण मात्र है। मन उसका प्रयोग करने वाला है। इसीलिए मन की पवित्रता से तन का मल स्वयं ही कट जाता है।"

नानी की यह बात सुनकर मेरे मन में एक अज्ञात भय-सा उठ खड़ा हुआ, पर मैं कोई सन्निपातग्रस्त रोगिणी तो नहीं थी जो अपने मन की शंका को सत्य मान लेती, परन्तु मेरा मन यह जानने के लिए उतावला हो उठा कि नानी ने मैकन के साथ कैसा बर्ताव किया। मैंने नानी से कहा,"तुम यह सब उपदेश बाद में देना नानीजी! आगे कहो क्या हुआ?"

नानी का रंग फीका पड़ गया। उसने धीरे से कहा, "होना क्या था बेटी! मैकन का अत्याचार मैं सह न सकी। लाचार होकर मैंने उसे गोली मार दी और वह वहीं ढेर हो गया।"

हम सब लड़कियाँ काँप उठीं। ऐसी ही शंका मेरे मन में उठी थी। मैंने शीघ्रता से पूछा, "परन्तु तुम बच कैसे गईं ? नानीजी !"

वह बोली, "पिस्तौल का धमाका सुनकर मेरे पति और नौकर-चाकर सभी एकत्रित हो गए। मैं हाथ में पिस्तौल लिए वैसी ही खड़ी थी। मेरे

पति सबसे पहले कमरे में आए। मेरे हाथ में पिस्तौल और मेरे सामने मैक्स को खून से लथपथ सिसकता देखकर उन्होंने कहा, 'यह तुमने क्या कर डाला सरला ?'

"मैंने उनकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। उनका मुख पीला हो चुका था, उनके नेत्रों में से भय छलक रहा था, पर मेरा मन दृढ़ था। मैं उस समय अपने में आत्म-गौरव अनुभव कर रही थी। मैंने निःसंकोच उत्तर दिया, 'जो आप करना चाहते थे वह मैंने अपने ही हाथों से कर दिया है।'

'यह तुमने बहुत भूल की है सरला ! पुलिस के हाथों से मैं तुम्हें कैसे बचाऊँगा।'

"मैंने शान्त मन से उत्तर दिया, 'मैं बचना भी नहीं चाहती। मुझ जैसी अपवित्र चरित्रहीन नारी के लिये ऐसा दंड ही उपयुक्त है। केवल तुमसे एक बात चाहती हूँ, बोलो, पूरी करोगे ?'

"मेरे पति प्रश्न भरी दृष्टि से मुझे देखने लगे। मैंने कहा, 'तुम जैसा देवता पाकर भी तुम्हें जितना मैंने जलाया, दुखाया है उस सब के लिए मुझे क्षमा कर दो। यदि तुम ऐसा न कर सके तो मुझे नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।'

"इतना कहकर मैं उनके पाँवों से लिपट गई और उनके बूटों पर अपना माथा रगड़ने लगी। मेरे नेत्र बरस रहे थे और हृदय स्पन्दन कर रहा था, परन्तु वे मूर्तिवत् कुछ समय खड़े रहे। फिर प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते हुये बोले, 'चिन्ता न करो सरला ! प्राण देकर भी यदि तुम्हारी रक्षा कर सका तो करूँगा। तुम्हें आँच तक नहीं लगने दूँगा।'

"इतना कहकर उन्होंने चट से मेरे हाथ से पिस्तौल छीन लिया और तनकर खड़े हो गये। मैं उनकी मनोभावना समझकर थर-थर काँपने लगी।

"ऐसी घटनाओं की सूचना वायु में मिलकर पुलिस के कानों तक पहुँच जाती है। पुलिस के पहुँचने में देर न लगी। दरवाज़े पर खड़े हुए

व्यक्ति पुलिस को देखकर इधर-उधर भागने लगे। तब मेरे पति ने मुझसे कहा, 'पुलिस आ रही है सरला! यदि तुमने एक बात भी अपने मुख से निकाली तो मैं स्वयं को गोली मार लूँगा। तुम्हें मेरे सिर की कसम है यदि तुमने जबान खोली तो।'

"उनकी यह बात सुनकर मुझे तो जैसे काठ मार गया हो। मैं विमूढ़-सी होकर उनका मुख देखने लगी। इतने में पुलिस आ पहुँची। कमरे में प्रविष्ट होते ही पुलिस के कर्मचारी ने कमरे का फोटोग्राफ ले लिया। मैक्स सामने फ़र्श पर मरा पड़ा था, गोली उसके माथे पर लगी थी। मेरे पति हाथ में पिस्तौल लिये सामने खड़े थे। मै भयातुर होकर एक ओर खड़ी हुई पत्ती की भाँति काँप रही थी। सिपाहियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। एक अधिकारी ने अपनी जेब से रूमाल निकालकर उनके हाथ से पिस्तौल ले लिया और उन्हें हथकड़ी पहना दी। उस समय मेरी कैसी दशा थी, मैं स्वयं उसकी व्याख्या नहीं कर सकती। उनके हाथों में हथकड़ी देखकर मैं पागल हो उठी और सत्य बात कहने ही वाली थी कि उनकी तीव्र दृष्टि मुझ पर पड़ी, पर मैंने इसकी कुछ परवाह न की। मैं उनकी दी हुई सौगन्ध तोड़ने पर भी तैयार हो गई। अब पिस्तौल भी उनके हाथ में नहीं रहा था कि जिससे वे स्वयं को गोली मार लेते। पर भाग्य जो न करे वही थोड़ा है। मैं इतनी उद्विग्न हो चुकी थी कि मेरे शरीर का रक्त माथे पर चढ़ आया। जिससे मेरा सिर चकरा गया और मैं मूर्च्छित होकर फ़र्श पर जा गिरी।"

इतना कहकर नानी प्रलाप करने लगी। नकटी की वेदना ने हम सब लड़कियों को सन्न कर दिया। हम सभी लड़कियाँ आँसू बहा रही थीं। हममें से कइयों की हिचकी बँध गई।

: १७ :

कुछ समय हमारा यह रुदन-द्वन्द्व चलता रहा। अन्त में शान्त होकर नानी बोली, "क्या कहूँ लड़कियो उनका वह बलिदान आज भी

मेरे कलेजे में शूल की भाँति गड़ रहा है। काश मैं उनके बदले में अपने आपको उत्सर्ग कर पाती उनके लिये अपना सर्वस्व मिटा सकती तो मेरे मन को शान्ति मिलती, पर बाजी उन्हीं के हाथ में रहनी थी, उन्हीं के हाथ में रही। मैं चारों ओर से मात खा गई। परन्तु मेरे दुर्दैव ने तब तक भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा था।

"जब मेरी आँख खुली मैंने अपने आपको पलंग पर लेटे पाया। मेरी सासजी और माँ, मेरे पास बैठी आँसू बहा रही थीं। उनसे मुझे विदित हुआ कि मेरे पति ने थाने में पहुँचते ही अपने बयान दे दिए थे कि हत्या उन्हीं के हाथों हुई है। पिस्तौल का लाइसेंस भी उन्हीं के नाम का था। पिस्तौल में एक गोली कम थी जो मैक्स का पोस्टमार्टम करने पर उसके माथे में से निकाली गई थी। मेरे पति पर केस चला। उनके कोई बैरिस्टर मित्र यहाँ लखनऊ से भी केस लड़ने के लिए गए थे। उन बैरिस्टर साहब की पत्नी भी उनके साथ थी।

"मैं न तो अपनी माँ के घर जाने पर राजी हुई और नहीं अपनी ससुराल में। मैंने उस मकान को अपना देव मंदिर समझा और उसी में रहने का निश्चय कर लिया। यहाँ लखनऊ से गए हुए मेरे पति के बैरिस्टर मित्र भी सपत्नीक मेरे पास ठहराए गए। वे बैरिस्टर साहब स्वयं तो सज्जन पुरुष थे ही परन्तु उनकी पत्नी तो साक्षात् देवी थीं। उन दिनों उन्हीं की कृपा से मैं जीवित रही। उनके उपदेश मुझे नवजीवन देते, नवचेतना प्रदान करते। उन्हीं के कहने पर मैं पूजा, पाठ इत्यादि करने लगी।

"केस चल रहा था, पहली पेशी में ही मेरे पति ने मेरे सभी अपराध अपने सिर पर ले लिए थे। वे स्वयं मेरे लिए अपने आपको मिटा देना चाहते थे, परन्तु उनके जो बैरिस्टर मित्र थे, उन्होंने यही प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि मैक्स मदिरा के नशे में हमारे घर में जबरदस्ती घुसकर उपद्रव मचाने लगा था। मैक्स ने मुझसे अनुचित व्यवहार करना चाहा। मेरे पति के मना करने पर भी मैक्स ने चाकू से उन पर प्रहार

किया था। तभी मेरे पति ने अपनी रक्षा के उद्देश्य से उस पर फायर किया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मेरे पति का मैक्स की हत्या करने का विचार नहीं था। फलस्वरूप स्वयं मैक्स ही अपनी मृत्यु का जिम्मेदार है।

"मेरे पिता और उनके पिता स्वयं उनका भी मेल-मिलाप उस समय काम आया। सरकारी वकील ने नाम मात्र की जिरह की। वैसे तो मेरे पति निर्दोष ही थे परन्तु फिर भी उन्हें दो वर्ष का कारावास दंड हुआ।

"मैं उन दिनों छिप-छिपकर इतनी रोई कि जिसका मैं विवरण नहीं दे सकती। उन्हें दंडित हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि मेरी तबियत खराब रहने लगी। मेरा जी मिचलाता और वमन आदि होता। बैरिस्टर साहिब की पत्नी अभी तक मेरे साथ ही रह रही थी। उन्होंने मेरे लक्षण देखकर मुझे समझा दिया कि मेरे पेट में बच्चा है। उनकी यह बात सुनकर मेरे प्राण सूख गए। अनायास ही यह विपत्ति कहां से मुझ पर टूट पड़ी, जिसके विषय में मैंने आजतक कभी सोचा भी नहीं था। मुझे चिन्ताओं ने घेर लिया। मैं मन-ही-मन बौखला उठी।

"मैं यह भी नहीं जानती थी कि मेरे पेट में किसकी संतान है, मैक्स की या जॉन की अथवा उस संगीत निर्देशक की जो बबई में मुझे मिला था। अपने पति के विषय में तो मैं जानती थी कि उनका सम्पर्क आज तक मेरे साथ नहीं हुआ था। मैं मारे लाज के मरी जा रही थी, यदि मेरे पति यह बात सुनेंगे तो अपने मन में क्या सोचेंगे, वह मुझसे कितनी घृणा करने लगेंगे, जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राण तक निछावर कर देने चाहे हैं, उन्हीं देव तुल्य पति को मैं यह पाप-पंकज कैसे थोपूँ ? मुझ पर यह कैसी विडम्बना आ पड़ी। मुझे चार महीने से ऊपर हो चुके थे। मैंने कभी भी इस ओर ध्यान नहीं दिया था। मेरी ऐसी शोचनीय अवस्था देखकर बैरिस्टर साहब की पत्नी ने ढाढ़स बँधाया और मुझे सर्वदा प्रसन्न रहने के लिए कहा। परन्तु मेरी प्रसन्नता तो मुझसे कोसों दूर भाग चुकी थी। मैं तो यही चाहती थी कि इस पाप-पंकज के खिलने से

पहले ही किसी नदी या तालाब में डूब मरूँ।

"बैरिस्टर साहब की पत्नी ने मेरी माता और मेरी सास को भी इस विषय में अवगत करा दिया। सभी परिवार वाले यह सुसमाचार सुनकर प्रसन्न हो उठे थे। पर जब वे जेल में पड़े हुए सुनेंगे तो उन पर कैसी बीतेगी? मैं इस बात को सोचकर मरी जा रही थी। यदि यह रहस्य मुझ तक ही सीमित रहता तो मैं अवश्य ही किसी डॉक्टर या नर्स के पास जाकर अपने आपको इस कलंक से मुक्त करवा लेती, परन्तु अब तो दोनों परिवारों में यह बात फैल चुकी थी। हारकर मैंने अपने आपको भाग्य के हाथों में छोड़ दिया।

"समय पाकर मेरे गर्भ से कन्या हुई। सम्पूर्ण घर में प्रसन्नता की लहर व्याप गई। पर मैं अन्दर-ही-अन्दर तड़प रही थी। कन्या सुख-सुविधा में पलने लगी, उसका लालन-पालन सुचारु रूप से होने लगा। उसका नामकरण संस्कार समारोह के साथ मनाने का कार्यक्रम निश्चित होने लगा। परन्तु फिर यह निश्चय किया गया कि मेरे पति जब अपना दण्ड भुगतकर लौट आवें तभी इस समारोह को धूमधाम से मनाया जाए। उनकी मुक्ति में अभी एक माह शेष था। जैसे-जैसे उनकी मुक्ति के दिन निकट आते जा रहे थे वैसे-ही-वैसे मुझ पर चिन्ताओं का बोझा लदा जा रहा था। जब से वे बन्दी हुए थे तब से लेकर आज तक का समय उनकी निष्ठावान पत्नी बनकर मैं अपने ससुराल में रही। जो हमने अलग मकान लिया था बैरिस्टर दम्पति के लौट जाने पर वह छोड़ दिया गया था। मैंने अपना घूमना-फिरना पूर्णतया छोड़ दिया था। मैं घर से एक पग भी बिना आवश्यक कार्य के नहीं निकलती थी।

"मैं प्रातः और सायंकाल अपनी सास के ठाकुरद्वारे में जाकर भजन-पूजन करती, नियम से रहती और कभी-कभी व्रत-उपवास भी करती। अनायास ही मुझे कभी अपना अतीत जीवन स्मरण हो आता तो मैं मन-ही-मन भगवान् से क्षमा-प्रार्थना करती और जी भरकर रो लेती थी। मेरे इस रुदन को सास अथवा श्वसुर मेरी पति-निष्ठा और पति के प्रति

प्रगाढ़ प्रेम या पति के वियोग की व्यथा समझते । वे मुझे सान्त्वना देते, मेरी हर इच्छा को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहते थे, पर मेरी व्यथा का यह उपचार नहीं था । मेरे मन में एक ही जलन थी जिसमें मैं अन्दर-ही-अन्दर जलकर भस्मीभूत हुई जा रही थी कि कौन-सा मुख लेकर अपने पति को यह कन्या दूँगी । सारा परिवार चाहे जो कुछ भी समझे, परन्तु उनसे अथवा मुझसे तो यह नहीं छिपा था कि यह कन्या अनाचार की देन है ।

"प्रभु की पूजा में क्या जूठा पात्र प्रयोग किया जा सकता है ? उनके भोग में क्या किसी की जूठन रखी जा सकती है ? मैं वास्तव में ही उन्हें अपना भगवान्, अपना इष्ट समझती थी । फिर भला यह किसी की जूठन किस मुँह से अर्पण कर सकती थी ? मैं चाहे जैसी भी घृणित, पापिष्ठा, चरित्रहीन सही पर यह पाप मुझसे नहीं हो सकता था । मुझे यह भी विश्वास था कि मेरे पति मेरी अन्य भूलों की भाँति इस भूल को भी क्षमा कर सकते हैं । मेरे इस दुराचार को भी अपनी महानता के आवरण में छिपा सकते हैं । परन्तु मैं उन्हें ऐसा अवसर नहीं देना चाहती थी कि वे इस कन्या को देख-देखकर जीवनभर मेरे अतीत जीवन को स्मरण कर व्यथा का अनुभव करते रहें । नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकता । प्राण रहते मैं ऐसा नहीं कर सकती थी । मैंने मन-ही-मन यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि मैं उनके आने से पहले ही उनका घर छोड़ दूँगी ।

"दिन व्यतीत होते गए । दोनों परिवारों में उनके आगमन की बड़े चाव से प्रतीक्षा होने लगी । स्वामी से लेकर सेवक तक उनसे प्यार करते थे । उनके लिये प्राण तक न्यौछावर करने के लिये तैयार रहते थे । सभी लोग एक-एक करके दिन गिन रहे थे । घर सजाया जा रहा था । कन्या के नामकरण संस्कार के उपलक्ष में बहुत बड़े सहभोज का आयोजन हो रहा था । रिश्ते नाते और मेलजोल वालों को निमंत्रण भेज दिए गए थे । वह दिन आ गया जिस दिन सायंकाल उन्हें जेल से छुट्टी मिलने वाली थी । प्रातः ही से घर में विशेष चहल-पहल मच गई थी, परन्तु

मुझ अभागी का हृदय अन्दर-ही-अन्दर डूबा जा रहा था। इस पर भी गृह-त्याग का मेरा निश्चय अटल था।

"मैंने एक पत्र लिखकर डोरे में लपेट अपनी कन्या के गले में बाँध दिया और उस कन्या को छाती से लगा जी भर कर रोई जिसे मैं जन्म भर के लिये माता की गोद से वंचित कर रही थी मैंने अपने भूषण इत्यादि उतारकर अपने ट्रंक में रख दिए। घर की एक नौकरानी की मैली-सी पुरानी साड़ी मैंने छिपाकर रखी हुई थी। मेरे पति को ले आने के लिये मेरे पिता और ससुर जी कार में बैठकर चले गए। मैंने समय को अमूल्य समझा और अपनी साड़ी उतारकर वह पुरानी, मैली-कुचैली साड़ी पहन ली और कन्या को सुलाकर उसे सर्वदा के लिये मातृ-विहीन करके मन में व्यथा का भार लिये आँसू बहाती हुई कमरे से बाहर निकल आई। मैंने अपना मुख घूंघट से छिपा लिया था। सभी नौकर चाकर अपने कार्य में व्यस्त थे। मैं घूंघट काढ़े एक ओर दबकर खड़ी रही।

"इतने में फाटक के बाहर कार के रुकने का शब्द हुआ। घर के सारे प्राणी उमंगों में भरे हुए उनके स्वागत के लिये फाटक पर आए। वे कार से उतरे। उनका मुख पीला हो रहा था परन्तु नेत्रों में वही चमक जो सर्वदा उनके व्यक्तित्व का परिचय दिया करती थी, अब भी विद्यमान थी। घर के दास-दासियों ने उन्हें झुककर नमस्कार किया। मैं भी उस भीड़ में आगे बढ़ गई और उनके पाँव की धूल लेकर अलग हो गई। बीसों व्यक्तियों की भीड़-भाड़ में मुझे किसी ने भी न पहचाना। घर की दासी मात्र समझकर रहने दिया। वैसे भी सबकी चेतना उन्हीं की ओर थी। मुझ पर किसी का ध्यान न आया। सब लोग उन्हें घेरे में लेकर कोठी में प्रविष्ट हो गए। किन्तु मैं बाहर की बाहर ही खड़ी रही। धूलि-धूसरित जमीन पर जहाँ उनके पग चिह्न बने हुए थे मैंने एक बार पुनः वहाँ माथा नवाया और उनकी पगधूलि लेकर एक ओर बढ़ चली।

"उस दिन मेरे लिए उनके अन्तिम दर्शन थे। मैं नहीं जानती आज-

कल वे कहाँ हैं, कैसे हैं, वह मेरी कन्या जीवित है या नहीं ? उस दिन को आज सत्रह वर्ष पूरे हो चुके हैं। मैंने स्थान-स्थान की खाक छानी, देश विदेश घूमी, अनेक प्रकार के दुःख-सुख सहे। परन्तु मेरे इस जले हृदय को आज तक शान्ति नहीं मिली। मैंने जीवन की सारी आशाओं को, सारे सुखों को तिलांजलि दे रखी है। परन्तु एक लालसा अभी भी मेरे मन में ज्यों-की-त्यों है। भगवान् यदि उनके चरणों में एक बार सिर नवा देने पर मेरे प्राण हर ले तो मुझे मेरे तप का पूर्ण फल मिल जाता। परन्तु मैं आज तक यह नहीं जान पाई कि वे कहां हैं। सुना है कलकत्ता छोड़े उन्हें कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।"

यह कहकर नकटी नानी चुप हो गई। उसके नेत्र अविरल अश्रुपात कर रहे थे। मुख पर मानो स्वयं व्यथा मूर्तिमान होकर नृत्य कर रही थी।

: १८ :

नकटी नानी का किस्सा पूर्ण हुआ ही समझ में आता था। हममें से कई लड़कियों ने यही समझ लिया था कि नकटी नानी की कहानी पूरी हो गई। परन्तु शीला, जैसा मैंने पहले कहा है बाल की खाल निकालने वाली लड़की थी। उसने कहा, "पर नानीजी ! जो वास्तविक बात हमारे लिये जानने की थी वह तो आपने बताई ही नहीं। मान लिया कि आपका और आपके पति का किस्सा पूरा हो गया पर आपकी यह हीन दशा कैसे हुई ? आप पढ़ी लिखी थीं कहीं भी नौकरी कर सकती थीं, स्वयं कमा सकती थीं। न तो आपको भिक्षा माँगने की आवश्यकता थी और न ही ऐसी हीन अवस्था में रहने की संभावना की जा सकती है।"

हम उत्सुकता से नानी का मुख देखने लगीं। शीला की बात सुनकर नानी सोच में पड़ गई थी। कुछ समय पश्चात् एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई बोली, "आगे का हाल न सुनना ही अच्छा है बेटी ! मुझ पर जिस प्रकार बीती है किसी शत्रु को भी भगवान् ऐसे दिन न दिखाएं। मैं अपनी

इस वर्तमान दशा को प्रायश्चित्त समझकर ही झेल रही हूँ। मैं किसी को किस मुख से दोष दे सकती हूँ। यह सब मेरे कुकर्मों का फल ही मिल रहा है। आज तक अपने किए का ही दंड भोगती आ रही हूँ और अभी तक भोग रही हूं।"

मैंने कहा। "परन्तु नानी जी आपकी कथा के साथ-साथ हम सबकी शिक्षा भी अधूरी रह जाएगी। अपनी व्यथा कथा कहने में आपको कष्ट तो अवश्य होता होगा परन्तु हमारी भलाई के लिये आपको यह कष्ट भी सहन कर लेना चाहिये।"

नानी ने उत्तर दिया "यदि तुम सब यही चाहती हो तो कहूँगी बेटी!" कुछ रुककर पुन: कहने लगी। "उनके पाँवों की धूल लेकर मैं सीधी गंगाजी की ओर चल दी। आत्महत्या कर लेने का ही मेरा निश्चय था। मैं मैली कुचैली पुरानी साड़ी में अपने आपको छिपाए हुए पैदल ही गंगाजी की ओर चली जा रही थी। दिन अभी तक बाकी था मुझे रह-रहकर अपनी बच्ची की याद आ रही थी, उस दिन मेरे न रहने से क्या जाने यह सब होगा भी या नहीं। मेरा मन व्यथा से भरा हुआ था, पाँव भारी हो रहे थे। पर मैंने अपना संकल्प न छोड़ा। मैं गंगा की ओर आगे बढ़ती ही गई।

"अनायास ही मुझे ध्यान हो आया कि दिन रहते प्रत्येक व्यक्ति मुझे आत्महत्या करते देख सकता है। मैं डूबती हुई बचा ली जा सकती हूँ। मैं चाहती थी कि किसी ऐसे स्थान पर जाकर गंगामाता की गोद में समा जाऊँ जहाँ मुझे कोई भी न देख सके, कोई पहचान न सके। मैं अपना यह मलिन तन लेकर गंगा की अगाध जलराशि में विलीन हो जाऊँ। यह निश्चय कर मैं गंगाजी के किनारे-किनारे पूरब की ओर बढ़ने लगी। मैं अपने विचारों में इतनी खो गई थी कि कितना समय और घर से कितनी दूर पहुँच गई हूँ अथवा कहाँ-से-कहाँ चली आई हूँ इसका तनिक भी ध्यान नहीं था। चलते-चलते मैंने जब ग्रीवा उठाकर देखा तो बेलूर मठ के कलश मेरी दाहिनी ओर सीना ताने खड़े थे। मैं सारे दिन

की भूखी-प्यासी वहीं अलाहीपुर पुल के नीचे एक ओर ढेर हो गई। मेरा शरीर अशक्त हो चुका था। तटवर्ती बालू पर बैठी मैं अपने ही विचारों में डूबती-उतराती रही। सूर्य भगवान् अपनी गति से उत्तरायण की ओर चले जा रहे थे। गंगाजी में एक लहर आती दूसरी निकल जाती। वायु के शीतल झोंके मेरे बिखरे केशों से अठखेलियाँ करते हुए निकले जाते। मेरे सामने गंगा के उस पार विवेकानन्द आश्रम की दीवार थी। वहाँ पर बने हुए छोटे-से घाट पर कभी कोई गेरुआ वस्त्र धारी साधु आता और गंगाजी के शीतल जल में हाथ मुँह धोता और कोई स्नान भी करता चला जाता।

"दिन ढलने, लगा मेरा हृदय धक् धक् करने लगा। मैं अपनी नन्हीं-सी बालिका को कमरे में सोई हुई निराधार छोड़ आई थी। न जाने उसे किसी ने प्रातः से अब तक दूध भी पिलाया है या नहीं। जग जाने पर मुझे न पाकर वह रोई होगी। क्या जाने किसी ने उसे गोद में उठाकर चुप कराने का प्रयत्न भी किया है या नहीं। सब कोई मेरी खोज में लगे होंगे फिर उस बेचारी बालिका का कौन विचार करेगा। मेरे स्वामी मुझे न पाकर क्या सोचते होंगे। मेरे सास-श्वसुर अथवा माता-पिता घर से मेरे भाग निकलने का क्या अर्थ लगाते होंगे। मुझे यह तो दृढ़ निश्चय था ही कि मेरे पति मेरे विषय में स्वयं मुख से एक शब्द भी नहीं कहेंगे। मैं कितनी अभागिन थी कि सब कुछ होते हुए अनाथ और लाचार थी।

"इन्हीं विचारों में मैं अलाहीपुर पुल के नीचे गंगा तट पर बैठी हुई आँसू बहा रही थी। अभी भी कोई-कोई श्रद्धालु व्यक्ति गंगाजी के पावन पवित्र जल में स्नानादि करने के लिए आ जा रहे थे। मैं भाग्यजली अपने हृदय में व्यथा का भार लिए बैठी थी। पूरब की ओर से धीरे-धीरे एक गोल-से स्वर्ण थाल के आकार में भगवान निशिकांत धरती के तप्त हृदय को अपनी शीतल किरणों द्वारा शान्ति प्रदान करने के लिए उदय हो रहे थे। मनोरम स्वर्णिम किरणें गंगा के मटमैले जल पर मधुमय नृत्य करने लगी थीं। ऐसा सुहावना और मनमोहक दृश्य भी मुझे उस

समय काँटों की तरह गड़ रहा था ।

चारों ओर सन्नाटा व्याप रहा था । मेरा निश्चय अभी भी दृढ़ था । मैंने सब प्रकार की मोह-ममता को झाड़कर अपने से अलग कर दिया और उठकर गंगाजी में उतर गई । शीतल जल का स्पर्श होते ही मेरा सारा शरीर कांपने लगा जैसे मुझे जूड़ी-ताप चढ़ आया हो । मुझे अपनी अबोध बालिका का ध्यान आने लगा था । मेरे सारे परिवार के व्यक्तियों के मुख मेरे सामने हो होकर विलीन होने लगे । मन में विचार आया क्या मैं एक बार भी पुनः कोमल कलिका-सी अपनी नन्ही बच्ची को नहीं देख सकूँगी, देव तुल्य अपने पति के दर्शन पुनः एक बार भी नहीं कर सकूँगी ?

"उस समय की मेरी दशा विचित्र थी । मैं उसी प्रकार पिसी जा रही थी जिस प्रकार दो सांड़ों की टक्कर में आकर कोई पिस रहा हो । मैं ऐसे तिलमिला रही थी जैसे दोपहरी के समय तपी बालू के मैदान में मुझे किसी ने छोड़ दिया हो । न मुझमें इस ओर आने का सामर्थ्य था, न उस ओर । मैं पागलों की भाँति चिल्ला उठी । मेरा क्रन्दन-नाद मुख से निकलकर वायु के प्रवाह में विलीन हो गया । मैं अभागिन आत्महत्या न कर सकी, मुझमें इतना साहस न हुआ । अपने इस नारकीय जीवन का मोह न तोड़ सकी ।

"मैं लौटकर गंगा तट पर आ पछाड़ खाकर गिर पड़ी और फूट-फूट-कर रोने लगी । सरदी बढ़ रही थी, तिस पर मैं केवल एक फटी-पुरानी साड़ी में दिन भर की थकी-टूटी, भूखी-प्यासी हिम्मत करके उठी और पुल के ऊपर जाकर लाइन के साथ-साथ चलने लगी । मैं पुल पारकर आई पर मैंने लाइन की पटरी न छोड़ी । रात के लगभग तीन बजे थे जब मैं स्यालदा स्टेशन पर जा पहुँची थी, थकावट से सारा शरीर चूर हो चुका था, पाँव थर-थरा रहे थे, टाँगें लड़खड़ा रही थीं, सिर चकरा रहा था । अनायास ही मन में एक विचार उठा, मेरे नेत्र चमक उठे । मैंने काशी जाने का संकल्प कर लिया । स्यालदा से काशी जाने के लिए प्रातः छः

बजे गाड़ी छूटती थी। मैं लाइन की पटरी पटरी ही आई थी, गाड़ी प्लेट-फार्म पर खड़ी थी, जिस पर स्यालदा-काशी की पाटी लगी थी। मैं चुपके से तीसरे दर्जे के जनाने डिब्बे में जाकर सीट के नीचे लेट गई। थकावट और रात भर के जागरण ने मुझे अशक्त कर रखा था, मेरी आँख लग गई थी। गाड़ी कब चली, कब स्टेशन पर स्टेशन पार करती हुई कलकत्ते से कितनी दूर निकल आई, यह मैं कुछ भी नहीं जान सकी थी। किसी एक स्टेशन पर गाड़ी के रुकने का झटका खाकर मेरी आँख खुली। मैं उठी और सीट के नीचे से निकलकर बाहर आ गई। डिब्बे में अन्य केवल दो ही महिलाएँ बैठी थीं, जिनमें एक मुसलमानिन और दूसरी पंजाबिन प्रतीत होती थी।

"मेरे पहनावे और मेरे रूप में कोई समानता नहीं थी। मैं उन दोनों महिलाओं की दृष्टियों का केन्द्र बन गई। परन्तु मुझसे कुछ पूछ लेने का दोनों में से एक का भी साहस न हुआ। वे दोनों मेरे मुख की ओर ताकती रहीं। अपनी वर्तमान दशा का आभास पाकर मेरा मन विकल हो उठा, नेत्र डबडबा आए। मैं अपने घर, अपने माता-पिता, अपने पति तथा अपनी प्यारी भोली बच्ची से कोसों दूर एक अनजाने पथ पर चली जा रही थी। काशी ! न जाने वहाँ क्या है, कैसे वहाँ के लोग हैं, उनका रहन-सहन, बातचीत कैसी है, मुझ पर वहाँ कैसी बीतेगी ? इन्हीं सब बातों को सोचकर मेरे नैन छलछला आए। मैं अपनी इस दुर्बलता को छिपाने के लिए भागकर पाखाने में घुस गई और अन्दर से दरवाजा बन्द कर जी भर रोई, पर वहाँ मेरा कौन बैठा था जो मुझे सान्त्वना देता अथवा सहानुभूति के दो शब्द कहकर चुप कराता ?

"मेरा हृदय फटा जा रहा था। बच्ची की याद दहकते अंगारों की भाँति मेरे हृदय को झुलसा रही थी। कौन उसे खिलाता-पिलाता होगा, उस रोती को कौन चुप कराता होगा, उसे गोद में उठाकर कौन लोरियाँ दे-देकर सुलाता होगा ? मातृविहीन बिचारी नन्हीं-सी बालिका रो-रोकर मर न जावेगी ? इन विचारों ने मेरे हृदय में बवंडर-सा मचा रखा था।

मैं अपनी उस दिन की विकलता का वर्णन नहीं कर सकती। उस दिन के अथाह दुःख से बचने के लिए पुनः मुझमें आत्म-हत्या कर लेने की प्रवृत्ति ने सिर उठाया। क्यों न मैं चलती गाड़ी में से कूदकर अपने प्राणों का अन्त कर लूँ ? मेरा यह निश्चय दृढ़ होने लगा। मेरे अश्रु थम गये।

"अपने आपको सावधान करके मैं पाखाने से निकल आई। वहाँ बैठी दोनों महिलाओं की दृष्टि पुनः मुझ पर उठ आई। मैं अपनी ही झोंक में गाड़ी के दरवाज़े तक चली गई और खिड़की में से ग्रीवा निकाल कर बाहर की ओर देखा, गाड़ी तीव्र गति से चली जा रही थी। रास्ते के पेड़-पौधे वेग से भागते दिखाई दे रहे थे। लाइन पर बिछे पत्थरों पर दृष्टि नहीं ठहरती थी। मैंने ग्रीवा अन्दर करके पूरा दरवाज़ा खोल लिया और दोनों ओर के हैंडलों को पकड़ कर बाहर की ओर झुकी। डिब्बे में बैठी दोनों महिलायें शंकित मन और धड़कते कलेजे से मुझे देख रही थीं। मेरा सारा शरीर गाड़ी के बाहर हो गया, पर पाँव अभी तक भी अन्दर ही टिके हुए थे। बाहर की सरसराती हवा के थपेड़े मुख पर लगते ही मैं गाड़ी के अन्दर हो गई। मेरा यह दूसरा प्रयत्न भी विफल हुआ। मैं गाड़ी से न कूद सकी। मैं यदि इतने ही कड़े मन की और दृढ़ संकल्प वाली होती तो आज मेरी यह दशा ही क्यों होती ? मरना क्या हँसी-खेल है ? अपने हाथों अपना प्राणांत कर लेना बहुत कड़े हृदय वालों का काम है। मेरी जैसी अभागिन, कुकर्मी और दुर्बल स्त्री में इतनी शक्ति कहाँ ?

"हताश होकर मैंने गाड़ी का दरवाजा बन्द कर दिया और उस मुस्लिम महिला के पास ही सीट पर बैठ गई। उसने अपना बुरका उतार कर अलग रखा हुआ था, देखने में वह बुरी नहीं थी। अधिक पढ़ी-लिखी न होने पर भी वह सुसभ्य थी, जैसा कि बाद में उससे बातचीत करने पर पता चला। उसकी गोद में एक बालक सो रहा था, वह बालक अधिक सुन्दर तो नहीं था जितनी कि मेरी बच्ची, परन्तु बालक सभी आकर्षक होते हैं। मेरा हृदय तो पहले ही अपनी बच्ची के लिए तड़प

रहा था। मैं उस बालक की ओर आकृष्ट हुई, तब उस मुस्लिम महिला ने साहस कर मुझसे पूछा, 'तुम्हें कहाँ तक जाना है, बहिन ?'

'काशी तक।'

'कलकत्ता से आ रही हो ?'

'हाँ !'

'अकेली हो या कोई मर्द साथ में है ?'

'अकेली हूँ।'

"मैं अकेली हूँ, यह जानकर वह महिला आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगी। पुष्प चाहे फटे-पुराने चिथड़ों में लिपटा हो, परन्तु उसकी सुगन्ध किसी से छिपी नहीं रहती। भले ही मैं मैली-कुचैली साड़ी में लिपटी हुई थी, पर मेरे मुख की कान्ति अभी विलीन नहीं हुई थी। वह तेज अभी भी शेष था जो स्वाभाविक ही कुलीन घरों के सुशिक्षित व्यक्तियों के मुख पर रहता है। मेरे काले मुलायम केशों की आधुनिक ढंग की बनावट, चौड़ा-चिकना माथा, मोटे-मोटे आकर्षक नेत्र; ये सब साधारण वस्तुएँ नहीं थीं, जो मुझमें थीं। मैंने धीमें से पूछा, 'आप कहाँ जा रही हैं ?'

"उसने मुस्कुराकर उत्तर दिया, 'जा तो मैं भी बनारस रही हूँ। काशी में तुम्हारे क्या कोई सगे-सम्बन्धी हैं ?'

"मैं उसके इस प्रश्न का एकाएक उत्तर न दे सकी। मेरी ग्रीवा झुक गई, मेरा पीला मुख और भी पीला हो गया। वह महिला सूक्ष्म दृष्टि से मेरा निरीक्षण करने लगी। न जाने मेरी कौन-सी बात जानकर उसने मुझसे पूछा, 'घर से लड़कर भाग आई हो क्या ?'

"मेरे मुख पर एक तमाचा-सा पड़ा, परन्तु मैंने अपने आपको इतना छोटा न होने दिया। अपने आपको नियंत्रण में रखती हुई बोली, 'ऐसी बात नहीं है बहिन ! वैसे ही मेरा भाग्य जल चुका है। मैं काशी में रहकर जीवन बिताना चाहती हूँ। मेरे पति ने दूसरी स्त्री रख ली है और मुझे छोड़ दिया है।'

"मेरा यह बोला हुआ झूठ मेरे बहुत काम आया। इन थोथी-झूठी

बातों ने उस कोमल हृदय महिला पर बहुत प्रभाव डाला। वह एक ठंडी आह खींचकर बोली, 'तुम्हारा मर्द बहुत ही क्रूर और नीच होगा, जिसने तुम जैसी खूबसूरत औरत को ठुकरा दिया है।'

"उस महिला की इस बात ने मेरे हृदय पर भाले जैसा वार किया। मैं अभागिन अपनी हर कुकृतियों से अपने देव तुल्य पति को लांछित कर रही थी, उन्हें छोटा बना रही थी। यह बात मैं सह न सकी। मेरा मन भर आया और उतावली-सी बोली, 'ऐसा न कहो बहिन! वे तो······।'

"इससे आगे मैं कुछ कह न सकी। मैं कहना चाहती थी कि वे तो साक्षात् धर्मावतार हैं, पर मेरी बुद्धि ने मुझे झकझोरा। मैं अपने पति को निर्दोष कहकर स्वयं दोषी बन जाती और यदि मैं स्वयं दोषी बन जाती तो उस महिला की सहानुभूति मुझसे न रहती। मेरा विचार है कि उसने मेरी इस बात को ध्यान से नहीं सुना था। उसने कहा, 'दूसरी स्त्री तुमसे क्या अधिक सुन्दर है?'

"मैंने उसकी यह बात ग्रीवा उठाकर स्वीकार कर ली, परन्तु मेरी यह स्वीकृति उसके लिए विश्वास योग्य नहीं थी। वह चट से बोल उठी, 'मैं ऐसा नहीं मानती।'

"मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। ऐसा न मानने का उसके पास क्या प्रमाण था? इतने में वह पुनः बोल उठी, 'जीवन में आज पहली बार मैंने परमात्मा की उत्कृष्ट कृति देखी है। मैं समझती हूँ अवश्य ही वह मर्द अन्धा होगा, जिसने तुम जैसी सोने की गुड़िया को छोड़कर किसी काँसे या पीतल के खिलौने को अपनाया है। आँखें रखते हुए तो कोई भी पुरुष ऐसा नहीं कर सकता था।'

"उसकी इस बात का मेरे पास कोई उत्तर नहीं था।

: १६ :

"मैं मौन कितनी ही देर तक विचार-मग्न बैठी रही। कुछ देर बाद उसने अचानक पूछ लिया, 'बनारस में जाकर किसके यहाँ ठहरोगी? क्या

किसी का पता ठिकाना लेकर आई हो ?'

"मैंने नकारात्मक सिर हिला दिया । वह और भी अधिक विस्मय से मेरी ओर देखती हुई बोली, 'स्त्री चाहे कितनी भी पढ़ी-लिखी क्यों न हो, चाहे कितने ही दृढ़ मन और मस्तिष्क की हो, बिना पुरुष की सहायता के उसका अकेला रह जाना बहुत कठिन होता है बहिन ! मैं यह नहीं कहती कि तुमने घर छोड़कर कोई भूल की है । तुम्हारे स्थान पर यदि मैं होती तो सम्भवतः मुझे भी घर छोड़ना पड़ता, परन्तु बिना किसी पुरुष के आश्रय के किसी नारी का घर से निकलना सरासर मूर्खता है । यदि वास्तव में तुम्हारे पति ने तुम्हें निकाल दिया है, तो तुम किसी भी अन्य पुरुष को अपना पति बनालो, तभी शान्तिपूर्वक जीवन काट सकोगी ।'

"उसका यह परामर्श सुनकर मैं तिलमिला उठी, जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो । मैंने क्षुब्ध होते हुए उत्तर दिया, 'यह तुम क्या कह रही हो बहिन ! एक पति के होते हुए दूसरा पति कर लूँ ? मैं हिन्दू हूँ, हमारे धर्म में यह सब नहीं चलता ।'

'बुरा न मानना बहिन ! तुम हिन्दुओं का धर्म एक ओर ही देखता है, दूसरी ओर नहीं । तुम्हारे पति ने किसी अन्य स्त्री के मोह में फँसकर तुम्हें दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकालकर घर से बाहर कर दिया । उस समय तुम्हारे धर्म के ठेकेदारों के शरीर पर जूं तक नहीं रेंगी और यदि तुम दूसरा पति कर लोगी तो धर्म की कमर टूट जाएगी । यह धर्म नहीं, छल है, धोखा है । यदि वास्तव में ही कोई धर्म है तो सबके लिए एक-सा होना चाहिए । किसी स्त्री को यदि दूसरा विवाह करने की धर्म अनुमति नहीं देता तो पुरुषों के लिए भी ऐसा ही विधान होना चाहिए था ।'

"मैं उसकी इस बात का क्या उत्तर देती ? यदि मैंने अपने धर्मशास्त्र पढ़े होते तो उस महिला को उत्तर दे सकती, इस विषय में उससे तर्क चलाती; पर मैंने तो आज तक आँख उठाकर धर्मशास्त्रों को नहीं देखा था । वह महिला यदि इंगलिश की किसी पोयम अथवा किसी अच्छे

उपन्यास के विषय में बातचीत करती तो मैं अवश्य ही अपनी विद्वत्ता का परिचय उसे देती। हारकर मैंने उसे इतना ही कहा, 'हमारे हिन्दू धर्म में, विशेषकर बंगाली समाज में स्त्री का पुनर्विवाह वर्जित है। हमारे समाज में कोई स्त्री यदि पुनर्विवाह कर लेती है तो उसे जाति-च्युत कर दिया जाता है। मेरे तो पति भी अभी तक जीवित हैं। मैं यह कैसे कर सकती हूँ ?'

"मेरी बात सुनकर उस मुसलमान महिला ने इस प्रकार अपनी आँख तरेरी और नाक को सिकोड़ा जिससे एक अबोध बालक भी समझ सकता था कि उसे हमारे धर्म और समाज से घृणा है। उसने क्षुब्ध मन से मुझे उत्तर दिया, 'इसीलिए तो सारे बंगाल में वेश्याओं के कोठे भरे रहते हैं। तुम्हारा समाज नारी को किसी एक की होकर रहने देना पसन्द नहीं करता। वह स्त्री को सबके भोग की वस्तु बना देना चाहता है। जिस विधवा या समाज द्वारा ठुकराई हुई स्त्री को तुम्हारा समाज पहले घृणा की दृष्टि से देखता और उसका तिरस्कार करता है, उसी स्त्री को वेश्या हो जाने के बाद सम्मान देता है। पहले जिस विधवा स्त्री को व्रत और उपवास रखकर जीवन के सुख-भोग से वंचित रखने की चेष्टा करता है, पतित हो जाने के बाद उसे ही अच्छे-अच्छे भोग भोगने के लिए देता है। पर देता उसी समय है जब अबला नारी अपना सर्वस्व या सतीत्व एक पुरुष को न सौंपकर, प्रसाद के रूप में सबको बाँटने के लिये राजी हो जाती है।

'विधवाओं के सिर मुँडवाकर तुम्हारा समाज उनको अपमानित करता है, भूखे रखकर उनके शरीर की कान्ति हर लेता है और भी सर्व प्रकार के सुखों से वंचित रखकर तुम्हारा समाज उस विधवा को बाध्य करता है कि वह वेश्या बने और बेचारी अबला स्त्री पुरुषों के इन अत्याचारों से बचने के लिये वेश्या बनती है, मुसलमान बनती है, घर से भागकर अन्य जाति वालों से विवाह कर लेती है। इसी समाज का तुम दम भरती हो ? मेरा वश चले तो ऐसे समाज को आग लगाकर फूँक दूँ।'

"यह कहते-कहते उस महिला के नेत्र घृणा से सिकुड़ गए, क्रोध की लालिमा उनमें छा गई। मैं अभिभूत-सी हुई उसका मुख देख रही थी। मेरी समझ में ही नहीं आ रहा था कि वह महिला मुसलमान होकर हमारे धर्म और समाज को क्यों कोस रही है, उस पर क्यों क्रुद्ध है? मुझसे पूछे बिना न रहा गया और मैंने पूछा, 'आप हमारे धर्म के विषय में यह सब क्यों कह रही हैं? आप कौन हैं?'

"मेरी बात सुनकर उसके मुख पर से एक हल्की-सी छाया निकल गई और वह व्यथित होकर बोली, 'मैं भी हिन्दू थी, तुम्हारी ही जाति-बहिन थी, एक ब्राह्मण कन्या थी और खाते-पीते घर की थी। हम अवध के रहने वाले हैं। मेरे चार भाई थे और पिता भी जीवित थे। मेरा विवाह हो चुका था। मेरे पति देखने में हृष्ट-पुष्ट और गाँव भर में पहलवान माने जाते थे। मेरे चारों भाइयों से सारा गाँव थरथराता था। मेरी शादी हुए अभी एक ही वर्ष हुआ था कि मेरे ससुराल के घर में डाका पड़ा। डाकू लोग धन के साथ-साथ मुझे भी लूटकर ले गए। और मेरे हट्टे-कट्टे पहलवान पति और उनके पाँच भाई व मेरे श्वसुर डाकुओं के सामने हाथ बाँधे गुलामों की तरह खड़े रहे। मैं जल विहीन मछली की भाँति डाकुओं के हाथों में तिलमिला रही थी। पर किसी में इतना साहस न हुआ कि उन क्रूर डाकुओं के हाथ से मुझ अबला की रक्षा करें। सबके सब स्यार कुत्तों की भाँति ग्रीवा झुकाए खड़े रहे। मैं रोती, चिल्लाती, चीत्कार करती उन हत्यारों के हाथों में तड़प रही थी, पर मेरी चीत्कारों पर किसी ने कान न दिए।

"मैं डाकुओं के हाथों उनके डेरे पर लाई गई। मुझे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। मैं उस बंद कोठरी में बैठी हुई रोती, बिलखती रही। मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि या तो इन डाकुओं में से किसी को मारकर भाग जाऊँगी अथवा स्वयं मर मिटूँगी। दो दिन तक मुझे किसी ने पानी तक के लिये न पूछा। तीसरे दिन डाकुओं में माल का बँटवारा हुआ और एक डाकू ने माल के बदले में मुझे पाया। इस

तीसरी रात के अन्धेरे में वह डाकू शराब के नशे में लड़खड़ाता हुआ मेरी कोठरी में आया। मैंने उससे बहुत मीठी-मीठी बातें करके उसे अपने पर लुभा लिया और प्यार की चुहल-बाज़ी में उसके कमर से छुरी निकाल कर उसी की कमर में भोंक दी। वह वहीं ठंडा हो गया।

'मैं रातों-रात वहाँ से निकल भागी। लगातार दो दिन तक भूखी-प्यासी चलकर मैं अपने ससुराल पहुँची। पर मुझे देखते ही मेरे श्वसुर ने अपने घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया। मैं बहुत रोई गिड़गिड़ाई। यहाँ तक कि उनको आश्वासन दिया कि मेरा आँचल अभी भी निर्मल है; पर उन समाज के ठेकेदारों ने यह कहकर ठुकरा दिया कि डाकुओं के घर में रह चुकी लड़की पुनः हिन्दू समाज में नहीं ली जा सकती। मैं निराश होकर अपने मायके के गाँव में गई। परन्तु वहाँ भी मेरे ब्राह्मण पिता और चारों भाइयों ने मुझे घर में प्रविष्ट न होने दिया और यह कहकर ठुकरा दिया कि हम तुम्हें दान कर चुके हैं, तुम्हारा इस घर से अब कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी बातें मेरे हृदय पर मानो भालों से वार कर रही थीं। मेरा कलेजा छलनी-छलनी हो चुका था। मैं इस व्यथा को सहन न कर सकी और वहीं मूर्च्छित होकर अपने पिता के मकान के सामने गिर गई। पर उन लम्बी चोटी और यज्ञोपवीत-धारियों को मुझ पर तनिक भी दया न आई। मुझे उसी प्रकार मूर्च्छित छोड़कर उन्होंने घर के किवाड़ बन्द कर लिए।

'मैं कितना समय अचेत पड़ी रही किन्तु किसी ने मेरी बात तक न पूछी। जब मुझे चेत हुआ तो चाँद सिर पर आ चुका था। चारों ओर उसका उजियाला छाया हुआ था। मैं साहस करके उठी और गाँव के शिवालय के बाहर उसकी सीढ़ियों पर जा बैठी। मुझे चारों ओर से निराशा ने घेर रखा था। मुझे चारों ओर अन्धेरा-ही-अन्धेरा प्रतीत हो रहा था। मेरा सारा संसार उजड़ गया था। मेरे लिये कोई घर-घाट नहीं रहा था। मैं पत्थर की सीढ़ियों पर बैठी सिसकियाँ ले रही थी कि किसी ने पीठ की ओर से मेरा नाम लेकर पुकारा। मैंने ग्रीवा उठाकर

देखा । गाँव के नम्बरदार का लड़का पद्मसिंह था जो कुछ दिन लखनऊ में रहकर थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त कर चुका था और उसे शहर की हवा लग चुकी थी । वह गाँव भर में बदनाम था । उसे देखकर मैं डरी अवश्य । इतने में उसने आगे बढ़कर मेरे पास बैठते हुए कहा, 'ऐसे कब तक रोती रहोगी शान्ति ! चलो मेरे साथ । आज ही भाग चलें । कलकत्ता या बम्बई में चलकर रहेंगे । अब तुम्हारे माँ-बाप या तुम्हारे पति तुम्हें घर में घुसने तक नहीं देंगे । मेरे साथ किसी बड़े शहर में रहकर सुख भोगोगी ।'

'मैं चारों ओर से निराश तो थी ही; मेरे लिए पद्मसिंह डूबती हुई को तिनके का सहारा-सा प्रतीत हुआ । मैंने साहस कर उससे पूछा, तुम मुझसे विवाह करोगे ?''

'मेरी बात सुनकर पद्मसिंह मुस्कुराता हुआ बोला, 'अरे ! इस शादी-विवाह में क्या रखा है शान्ति ? एक विवाह का तो तुमने तमाशा देख ही लिया । दूसरा विवाह करके क्या करोगी ? जवान हो, सुन्दर हो । किसी बड़े नगर में जाकर चार पैसे कमा लो जो तुम्हारे बुढ़ापे में भी काम आएँगे ।'

'पद्मसिंह की बातें सुनकर मेरे तन-बदन में आग लग गई । मैं समझ गई कि वह मुझसे वेश्यावृत्ति करवाना चाहता है । क्रोध में मैं पागल हो उठी और चिल्लाकर बोली, 'भाग जा यहाँ से नीच, अधम ! यदि किसी डूबती को बचा नहीं सकते तो उसकी छाती पर पत्थर क्यों बाँधने चले हो ? चले जाओ यहाँ से, नहीं तो चिल्ला-चिल्लाकर सारे गाँव को इकट्ठा कर लूँगी ।'

'मेरी फटकार सुनकर पद्मसिंह जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार छिपता, दबता चला भी गया । मैं अपनी दशा पर पुनः आठ-आठ आँसू रोने लगी । इसी प्रकार कुछ समय और बीत गया । रात बीत चुकी थी । मुझे अपने निकट ही पुनः किसी की पद-चाप सुनाई दी । मैंने ग्रीवा उठाकर देखा । गाँव का बनिया चेतू था । वह भी मेरे पास बैठकर

मुझसे सहानुभूति दर्शाने लगा, मुझे प्रसन्न करने के लिये मेरे माता-पिता, भाइयों तथा पति को गालियाँ देने लगा और अपनी सहानुभूति दर्शाता हुआ मेरे निकट से निकटतर होता गया। यद्यपि उसकी बातें भी मुझे सार शून्य ही प्रतीत हो रही थीं, मेरे भविष्य के लिये वह भी मुझे कोई मार्ग नहीं सुझा रहा था; पर वह मेरे माता-पिता की निन्दा कर रहा था, जिससे मुझे कुछ सान्त्वना मिल रही थी। इतने में उसने अपनी जेब से कुछ रुपये निकालकर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है शान्ति ! जब तक मैं हूँ, तुम्हें कुछ-न-कुछ देता रहूँगा। तुम प्रतिदिन रात को कहीं एकान्त में मुझसे मिल लिया करो।'

'मैं मन-ही-मन उसका चलती-फिरती बातों का अर्थ लगा रही थी। मैंने उसके हाथ से रुपए पकड़ने के लिए अपना हाथ नहीं बढ़ाया था, पर उसने जबरदस्ती मेरे हाथ को अपने हाथ में लेकर रुपए थमाते हुए एक दो बार मेरे हाथ को दबाया और हँसकर बोला, 'ले लो मेरी जान ! चेतू सारी उम्र तुम्हारा गुलाम बनकर रहेगा।'

'उसकी मनोवृत्ति समझने में मुझे देर नहीं लगी। मैंने उससे भी वही प्रश्न किया, 'क्या तुम मुझसे विवाह कर लोगे ?'

'मेरा यह प्रश्न सुनकर वह कायर बनिया निर्लज्जों की-सी हँसी हँसकर बोला, 'यह कैसे हो सकता है, शान्ति ! क्या मुझे अपना धन-दौलत छोड़कर गाँव से निकलवा देना चाहती हो ? तुम मेरी रखैल बनकर रहो। छिपे-छिपे मुझसे मिल लिया करना। मैं तुम्हें अन्न-वस्त्र देता रहूँगा।'

'उस बनिए की बात सुनकर मैं तमतमा उठी। क्रोध के आवेश में मेरा हाथ उठा और मैंने जोर से उसके मुख पर तमाचा जड़ दिया और चिल्लाकर बोली, 'चला जा यहाँ से नीच पामर ! मुझे क्या तुमने वेश्या समझ रखा है ?'

"मेरा तमाचा खा और फटकार सुन कर वह बनिया भी भीगी बिल्ली

की तरह उठकर चल दिया। मैं पुनः बिलखकर रोने लगी। अब दिन निकलने ही वाला था। हमारे गाँव का लोहार नबीबख्श प्रतिदिन प्रातः उठकर नदी में स्नान करने के लिए जाता था। वह साठ वर्ष का वृद्ध लोहार मुझ बिलखती को देखकर रुक गया और दयायुक्त वाणी से बोला, 'मैं तेरी सारी कथा सुन चुका हूँ, शान्ति बेटी! मुझे बहुत दुःख है। तुम्हारा हिन्दूधर्म ही ऐसा है जो किसी निर्दोष लड़की को दोष लगाकर घर से बाहर धकेल देता है। मैं मुसलमान हूँ, तुम चाहो तो मुझसे कुछ सहायता ले सकती हो।'

'उसकी बात सुनकर मैंने ग्रीवा उठाकर उसकी ओर देखा और करुणायुक्त वाणी में बोली, 'मुझे एक ठौर लगा दो नबी बाबा! यही मुझ पर कृपा करो।'

'मेरी बात को सुनकर बूढ़ा लोहार बोला, 'ऐसा हो सकता है बेटी! पर तुम्हारा हिन्दूधर्म ही तुम्हारे एक ठौर होने में अड़चनें पैदा करेगा। अगर तुम चाहो तो मैं सारे गाँव को अपना शत्रु बनाकर भी अपनी बेटी की तरह तुम्हें अपने घर में रख सकता हूँ। मेरे घर में तुम जिस तरह भी रहना चाहोगी, रहोगी। तुम अपनी रसोई अलग बना सकती हो। अपने हाथ से बनाकर खा सकती हो।'

'उस वृद्ध की बातें सुनकर मैं उसके पाँव पर जा गिरी और रोती हुई बोली, 'मुझे तुम जिस प्रकार भी रखोगे बाबा! मैं रहूँगी। पर मैं एक की होकर रहना चाहती हूँ, हरजाई नहीं बनना चाहती।' उस समय मेरा मन हिन्दूजाति से, हिन्दूधर्म से विमुख हो चुका था। वह धर्म ही क्या जिसमें एक अबला निस्सहाय निर्दोष युवती के लिए तनिक-सा स्थान भी न हो। वह धर्म नहीं, थोथा आडम्बर है।

'वृद्ध लोहार ने मेरे सिर पर हाथ रखते हुए कहा, 'उठो बेटी! जैसा तुम चाहती हो इन्शा-अल्ला ऐसा ही होगा।' मैं उठ खड़ी हुई और वह मुझे अपने घर ले गया। रहने के लिए स्थान, पेट भरने के लिए अन्न, पहनने के लिए वस्त्र, तथा इसके साथ ही एक वृद्ध मुसलमान का हाथ

ये सब प्राप्त हो गए। दूसरे दिन जब मेरे भाइयों और गाँव वालों को पता चला तो भाँति-भाँति की बातें उड़ने लगीं। कोई मेरे माता-पिता को दोषी ठहराता, कोई मुझे दोषी ठहराता और कई लोग उस वृद्ध लुहार के भी शत्रु बन गए। परन्तु किसी में इतना सामर्थ्य नहीं था कि, अपनी दृष्टि उठाकर उस वृद्ध लोहार को इस विषय में कुछ कह सकता। उस वृद्ध के मजबूत हाथों की लाठी गाँव के कई बदमाशों के सिर फोड़ चुकी थी। मुझे उस वृद्ध के घर में सब तरह से सुखी रखा गया। अंत में मैंने अपनी इच्छा से इस्लाम धर्म कबूल कर लिया और उसी लोहार के छोटे लड़के शमशादअली से निकाह कर लिया। तब से मैं मुसलमान हूँ।'

"यह कहते-कहते उस मुस्लिम महिला के नेत्र छलछला आए। मुझे अपने समाज पर खेद होने लगा। धर्म-कर्म में तो मुझे पहले से ही रुचि नहीं थी। जो कुछ शेष थी, वह सब भी उस मुस्लिम महिला की जीवन-कथा सुनकर समाप्त हो गई। मुझे सब थोथा आडम्बर प्रतीत होने लगा। मुस्लिम महिला आँसू बहा रही थी। मैं तो स्वयं ही महा दुःखी थी। क्या कहकर उसे सांत्वना देती? पर उस पर मुझे कुछ भरोसा होने लगा। जो स्वयं भुक्तभोगी है, वह मुझे भी कोई न कोई मार्ग सुझा देगी। मेरे मन में इस आशा का संचार हुआ।

: २० :

"जब वह महिला कुछ रो-धोकर शान्त हो गई तब मुझ से कहने लगी, 'मेरा कहा मानो बहिन! यदि सौत के अत्याचार सह सकती हो तो घर लौट जाओ और यदि नहीं सह सकती तो किसी एक की होकर रह जाओ। बिना किसी पुरुष का आश्रय लिए तुम किसी भी प्रकार सँभल नहीं पाओगी।'

"उस मुस्लिम महिला की आत्मकथा सुनते समय मुझे अपनी वर्तमान दशा भी विस्मृत हो चुकी थी। मेरे विषय में जब बात चली तो मुझे पुनः अपनी स्थिति का ज्ञान हो आया। मैंने दीनता से कहा, 'तुम

काशी में ही रहती हो बहिन ! मुझे क्या कोई ऐसा ठिकाना नहीं बतला सकतीं, जहाँ पर मैं चार दिन सिर छिपाकर रह सकूँ ? बाद में मैं अपना बन्दोबस्त कर लूँगी । मैं कुछ पढ़ी-लिखी हूँ, कहीं-न-कहीं नौकरी ढूँढ लूँगी ।'

"मेरी बात सुनकर कुछ सोचने के उपरान्त उस महिला ने उत्तर दिया, 'मैं एक मुसलमान की पत्नी हूँ और स्वयं भी मुसलमान हो चुकी हूँ । बनारस में रहते हुए भी मैं दावे से नही कह सकती कि तुम किस स्थान पर सुरक्षित रह सकोगी । हाँ, तुम यदि मुझ पर भरोसा कर सको तो दो चार दिन मेरे घर में रह सकती हो ।'

"मैं दुविधा में पड़ गई । यद्यपि मेरे लिए हिन्दू-मुसलमान या ईसाई कोई भी धर्म महत्त्व नहीं रखता था, मैं सब के हाथ का खाती-पीती थी, और मनुष्य को केवल मनुष्य मात्र ही मानती थी, परन्तु किसी एक अनजानी महिला के घर जहाँ उसका पति तथा पुत्र इत्यादि सब कोई हो सकते थे—रहने में संकोच करने लगी । मैंने कहा, 'सुना है काशी में बहुत धर्मशालाएँ हैं, मठ हैं, उनमें से किसी एक का ठिकाना बतला देने से मेरा काम चल सकता है । ताकि मैं उस अनजाने नगर में भटकती न फिरूँ ।'

"मेरी बात सुनकर वह महिला पुनः सोच में डूब गई । मैं जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसका मुख ताक रही थी । अन्त में उसने कहा, 'मेरा कहा मानो । दर-दर की ठोकर खाने से यह कहीं अच्छा है कि किसी एक की होकर रह जाओ । मैं तुमसे भी अधिक दुनियाँ देख चुकी हूँ बहिन ! तुम अपने जिस रूप को लेकर घर से निकली हो, उसकी रक्षा नहीं कर सकोगी । मैं फिर भी तुम्हें यही कहूँगी कि किसी एक पुरुष का हाथ थाम लो । बिना पति के नारी की पत नहीं रह सकती । भले ही तुम सुशिक्षित, पढ़ी-लिखी हो परन्तु फिर भी एक नारी हो । समझ से काम लो । मुझे तुमसे कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं करना है । तुम्हारे रंगरूप पर दया आती है कि कहीं किसी के चंगुल में फँसकर अपना सब कुछ लुटा न बैठो । यदि

तुम अच्छा समझो तो मेरे साथ मेरे घर चलो। मैं तुम्हें समझाऊँगी अवश्य, परन्तु किसी बात के लिए बाध्य नहीं करूँगी। मैं स्वयं भुक्तभोगी हूँ। मैं नही चाहती कि तुम भी मेरी तरह अपने धर्म से विचलित हो जाओ। धर्म त्यागने का दुःख मनुष्य के लिए मृत्यु से भी अधिक भयंकर होता है।'

"उस महिला की बातचीत बहुत सीधी और साफ थी। मुझे उसमें कहीं भी छल या कपट नहीं प्रतीत हुआ था। वैसे तो मन-ही-मन मैं बहुत ही डरी हुई थी। मैंने हाँ अथवा ना कुछ भी नहीं कहा, केवल ग्रीवा झुका ली। चुप्पी व्यक्ति की स्वीकृति का चिह्न माना जाता है। वह महिला, जिसका नाम मैं तब तक भी नहीं जान पाई थी, समझ गई कि उसका प्रस्ताव मैंने स्वीकार कर लिया है। यद्यपि अपनी व्यथा कहते हुए उसने अपना हिन्दू नाम, शान्ति तो बता दिया था पर आजकल वह किस नाम से पुकारी जाती है, मैं नहीं जानती थी।

"कुछ समय बाद उसका नन्हा-सा बालक जाग उठा। उसे देखकर पुनः मुझे अपनी बच्ची का स्मरण हो आया। वह महिला मेरे मन की बात जान गई और उसने अपने बच्चे को मेरी गोद में दे दिया। मैंने उस बालक को छाती से लगा लिया और उस महिला से पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बहन!'

'माता-पिता ने मेरा नाम शान्ति रखा था पर अब मैं राहतबानो के नाम से पुकारी जाती हूँ। तुम्हारा नाम क्या है?'

"मैंने अपना नाम बता दिया। राहतबानो ने एक पोटली-सी निकाली, जिसमें कुछ खाद्य-सामग्री थी। उसमें का कुछ भाग मुझे भी मिल गया। एक स्टेशन पर मैंने पानी पीया, मुझे कुछ शान्ति मिली। तदनन्तर हम दोनों आपस में बातचीत करती, एक-दूसरे के विषय में उत्पन्न हुई शंकाओं का समाधान पाती गाड़ी में बैठी हुई सायंकाल बनारस पहुँच गई। मेरे पास टिकट तो था नहीं। स्टेशन पर राहतबानो का पति जो अच्छा, मजबूत, सुन्दर युवक था, उसे लेने के लिए आया हुआ था। अपनी पत्नी के साथ

मुझ अपरिचित सुन्दर युवती को देखकर वह आश्चर्य-चकित-सा हो रहा था। उसकी दृष्टि पड़ते ही मेरी ग्रीवा झुक गई। राहतबानो ने मुझसे टिकट के विषय में पूछा। मैंने बता दिया कि मेरे पास टिकट नहीं है। वह अपने पति का मुँह देखने लगी। उसके पति ने अपनी पत्नी का तात्पर्य समझकर अपनी जेब में से अपना प्लैटफार्म टिकट निकालकर मुझे देते हुए राहतबानो से कहा, 'तुम इन्हें लेकर बाहर निकल जाओ। बाहर हनीफ खड़ा होगा। उसे कह दो कि दो प्लैटफार्म टिकट लेकर अन्दर आ जाए। उसके आ जाने पर मैं और वह प्लैटफार्म टिकट दिखाकर बाहर निकल आएँगे।'

"हनीफ का नाम सुनकर राहतबानो का मुख पीला पड़ गया। मुझे बाद में विदित हुआ कि हनीफ राहत का जेठ था। एक नम्बर का लफंगा और शैतान था। राहत ने चिन्तायुक्त होकर अपने पति से पूछा, 'हनीफ भाई कब जेल से छूटकर आए हैं? आपने उन्हें घर में क्यों घुसने दिया है?'

"उत्तर में उसके पति ने कहा, 'लाचार था बेगम! आखिर तो बड़ा भाई है, इनकार करते नहीं बना। दस बारह दिन से यहीं है।'

"राहतबानो ने मेरी ओर संकेत करते हुए कहा, 'यह मेरी सहेली हिन्दू है। इन्हें मैं कुछ दिन अपने घर रखने का वचन देकर ले आई हूँ। इनकी सारी जिम्मेदारी तुम पर है।'

"राहतबानो की बात सुनकर वह कुछ सोचते हुए बोला, 'अच्छी बात है। अपना बुरखा तुम इन्हें दे दो बेगम! हनीफ की नजरों से इन्हें बचाकर रखना चाहिए।'

"राहत ने अपना बुरका मुझे ओढ़ा दिया और स्वयं घूँघट निकाल कर मुझे अपने साथ लिये हुये प्लैटफार्म से बाहर आ गई। बाहर एक ओर हनीफ खड़ा था। राहत ने उसके पास जाकर आदाब अर्ज़ किया और अपने पति का सन्देश उसे सुना दिया। वह गया और कुछ समय बाद दोनों भाई प्लैटफार्म से बाहर आ गये।

"हम एक ताँगा कर राहतबानो के घर रामपुरा में पहुँच गए। राहत ने मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट न होने दिया। चार ही दिनों में वह मुझसे सगी बहनों का-सा व्यवहार करने लगी। उसका बच्चा भी मेरे साथ हिल-मिल गया था। परन्तु राहत मेरी ओर से हर समय चौकन्नी रहती थी। मुझे कभी भी हनीफ के सामने नहीं होने देती थी। उसका पति मुझे किसी ठौर लगा देने के लिये प्रयत्न कर रहा था। मैं भी उसी घर में रहती थी और हनीफ भी उसी घर में रहता था। लाख प्रयत्न करने पर भी एक या दो बार मेरा सामना उससे हो गया था। वह मुझे देखकर उर्दू में कविताएँ करने लगता था। मैं कतराकर निकल जाती।

"पूरे आठ दिन भी नहीं हो पाये थे कि एक रात हनीफ लगभग बारह बजे शराब के नशे में झूमता, लड़खड़ाता घर आया। राहतबानो और उसका पति अलग एक कमरे में सोते थे। मुझे सोने के लिये अलग एक छोटी-सी कोठरी दे रखी थी। मैं सोने से पहले अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया करती थी। हनीफ जब भी रात को आता था तो मेरे कमरे को जरा धकेल कर देख लिया करता था। दुर्भाग्य से उस दिन मेरे कमरे का दरवाजा खुला रह गया। हनीफ ने उसे धकेला और वह खुल गया। वह कमरे में घुस आया। मेरी आँख खुल चुकी थी। कमरे में चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था। मैं उठी और दुबक कर एक कोने में जा खड़ी हुई। हनीफ ने कमरे में घुसकर लड़खड़ाती जबान से मुझे पुकारा पर मैंने कोई उत्तर न दिया। मेरा रोम-रोम भय से काँप रहा था। हृदय की धड़कन कर्णगोचर हो रही थी।

'मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर हनीफ ने जेब में से निकालकर माचिस जलाई और उसके उजाले में मुझे खोजने लगा। मैं कहीं दूर तो थी नहीं, शीघ्र ही उसकी दृष्टि में आ गई। उसने लपककर मेरी कलाई पकड़ ली और बहकी-बहकी बातें करने लगा। मैं थर-थर काँप रही थी। उसके हाथ का स्पर्श मुझे इतना बुरा प्रतीत हुआ, जैसे किसी बिच्छू ने

मुझे डंक मार दिया हो। मैंने उसकी इस उच्छृंखलता का दंड दाहिने हाथ के एक थप्पड़ से दिया पर मेरा थप्पड़ वैसा ही था, जैसे किसी हाथी के शरीर पर चींटी रेंग रही हो। वह थप्पड़ खाकर हँस दिया और भूखे भेड़िये की भाँति मुझ पर टूट पड़ा। मुझ पर बल प्रयोग करने लगा। मेरी चीख निकल गई, जिसे सुनकर राहतबानो और उसके पति दौड़ आए। उन दोनों ने हनीफ को रोकना चाहा, पर वह नशे में अन्धा और कामवासना से गधा बन चुका था। राहतबानो तो हनीफ के एक ही धक्के से अलग जा गिरी। उसके पति ने मुझे उस क्रूर के हाथों से बचाना चाहा, पर उस समय हनीफ में पशुपन व्याप रहा था। उसने अपने छोटे भाई को गर्दन से पकड़कर पूरे बल से दीवार की ओर धकेल दिया जिससे उस बेचारे का सिर दीवार से टकराकर फट गया और वह मूर्च्छित होकर गिर गया। मेरी पुनः चीख निकल गई। राहतबानो भी चिल्ला रही थी।

"राहतबानो के अचेत पति के सिर से रक्त बह रहा था। कुछ ही क्षण में उस चांडाल हनीफ का ध्यान उस ओर चला गया। मैंने समय को अमूल्य समझा और कमरे से बाहर निकली। हनीफ मेरे पीछे लपका। इससे पहले कि हनीफ मुझे पकड़ पाता, मैं अपनी लाज बचाने के लिए खिड़की से गली में कूद पड़ी।

"इसके बाद क्या हुआ क्या नहीं, हनीफ भाग गया या घर में छिपा रहा, मैं कुछ भी नहीं जानती थी। मुझे जब चेत हुआ तो मैंने अपने आपको अस्पताल के एक कमरे में बेड पर लेटे हुए पाया। मेरे सिर पर पट्टी बँधी हुई थी। मुझे एक प्राइवेट रूम में रखा गया था, जिसका सारा व्यय राहत के पति ने किया था। राहत मेरे पास ही बैठी हुई थी। वह मेरे विषय में बहुत चिन्तित थी। मुझे सचेत देखकर उसकी जान में जान आई। राहत ने मुझे बताया था कि हनीफ उसी रात घर छोड़कर भाग गया था। मेरे खिड़की से कूद जाने के बाद उन्होंने उसे रोक रखना चाहा, पर वह उन दोनों को पीट-पाट कर भाग गया।

राहत ने यह भी कहा था कि उसके पति पुलिस को सूचित करना चाहते थे, पर स्वयं राहत ने इस केस को पुलिस में नहीं जाने दिया, क्योंकि केस पुलिस के हाथ में चले जाने पर हम दोनों स्त्रियों को कचहरियाँ भुगतनी पड़तीं।

"मैं स्वयं भी ऐसा नहीं चाहती थी। यदि केस पुलिस के हाथ में चला जाता तो मुझे अपना नाम, ग्राम आदि सब का परिचय देना पड़ता और खिड़की से कूदने का कारण भी बतलाना पड़ता, जिसके लिए मैं स्वयं भी कभी तैयार न होती। राहत कुछ समय पश्चात् चली गई। मैं अपनी वर्तमान स्थिति का अनुभव कर बिलख-बिलख कर रोने लगी। काश मैं आज अपने घर होती, मेरे पति या मेरे परिवार वाले मेरे पास होते, उनकी सान्त्वना मात्र से मेरा आधा कष्ट दूर हो जाता। मैं इन्हीं विचारों में लेटी हुई अश्रु बहा रही थी। इतने में एक नर्स मेरे पास आई, जो हिन्दू बंगालिन थी। उसने दवा इत्यादि पिलाकर मेरी मातृ-भाषा में मेरा परिचय पूछा। वह मेरी मुखाकृति से पहचान चुकी थी कि मैं बंगालिन हूँ।

"मैंने अपनी वास्तविकता को छिपाकर मिथ्या का आश्रय लिया। जो बातें राहत मुझे समझा गई थी, मैंने वही बंगालिन नर्स को समझा दीं और अपने खिड़की से गिरने का यह कारण बताया कि मैं खिड़की से झुककर बाहर की ओर देख रही थी। जिस किवाड़ के पल्ले को मैं पकड़ कर खड़ी थी, उसके टूट जाने से गिर गई। नर्स के यह पूछने पर कि मेरे माता-पिता अथवा पति, पुत्र कोई है या नहीं ? उत्तर में मैंने कह दिया कि मेरा कोई नहीं है। तब नर्स ने मुझ से पूछा, 'तुम मुसलमान के घर में जाकर क्यों रही हो ?'

"मैंने उत्तर दे दिया, 'काशी नगरी में मेरा कोई जान-पहचान का नहीं था। रात्रि के सफर में राहतबानो से बातचीत होने पर मैं इनके घर चार दिन रहने के लिए टिक गई थी, ताकि मैं स्वयं अपना ठिकाना ढूँढ लूँ।

"मेरी बात सुनकर नर्स बोली, 'अब क्या करोगी ?'

'मैं कुछ नहीं जानती, आप ही बतायें कि मैं क्या करूँ ?'

'कुछ पढ़ी-लिखी हो ?'

'हाँ, अँग्रेजी पढ़-लिख सकती हूँ ।'

'तुम्हें यदि कोई ट्यूशन मिल जाय तो कौन-सी कक्षा तक के विद्यार्थी को पढ़ा सकोगी ?'

'इन्टर तक के विद्यार्थी को सुचारु रूप से पढ़ा सकती हूँ । परन्तु सबसे पहले मुझे सिर छिपाकर रहने के लिए कोई ठिकाना चाहिए ।'

"नर्स ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, 'मैं स्वयं भी अकेली हूँ । मैंने एक मकान भाड़े पर ले रखा है । यदि तुम चाहो तो हम दोनों मिलकर रह जावेंगी ।'

"मेरा चित्त प्रसन्न हो उठा । मेरे सिर से मानो भारी बोझ उतर गया । मैंने झुक कर उस नर्स के पाँवों को छूकर डबडबाते नेत्रों को पोंछते हुए कहा, 'यदि ऐसा हो सके तो मैं आपकी अपने पर बहुत कृपा समझूँगी दीदी !'

"मेरे व्यथित हृदय से निकला हुआ दीदी सम्बोधन उसके हृदय को छू गया । उसके नेत्र भी भर आये । वह मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, 'तुमने मुझे दीदी कहा है, इसलिए मैं यथाशक्ति तुम्हारी सहायता करूँगी ।'

: २१ :

"दो दिन के बाद मैं उस नर्स के घर चली गई । उसका नाम था कमला मुखर्जी । उसकी जान-पहचान बड़े-बड़े धनाढ्य घरों में थी । चार ही दिन में कमला ने मुझे दो ट्यूशनें ले दीं और मैं कार्य पर लग गई । दोनों ट्यूशनों से मुझे तीस-तीस रुपये मासिक मिलने लगे । महीना भर तो मैं कमला दीदी के आश्रय पर खाती-पीती रही । महीने के उपरान्त दोनों ओर से वेतन मिल गया, जो मैंने सारे-का-सारा कमला दीदी के

हाथ में दे दिया।

"मेरा शारीरिक कष्ट तो कुछ मात्रा में कम हो गया, पर मन की व्यथा ज्यों-की-त्यों बनी रही। कमला दीदी के घर भोजन इत्यादि अच्छा बनता था। हम दोनों की आय दो सौ रुपये तक हो जाती थी। घर का भाड़ा तीस रुपये था। कमला दीदी ने मुझे दो-एक साड़ियाँ भी ले दी थीं। मैं साफ-सुथरा पहनने और रहने लग गई थी। कभी-कभी हम दोनों घूमने भी निकल जाती थीं। प्रातः का भोजन जैसे-तैसे मैं अपने हाथों बना लेती थी और रात को ट्यूशन पर चली जाती थी। रात का भोजन कमला दीदी बनाती थी। मेरी एक ट्यूशन और लग गई। पहली दोनों ट्यूशनें साधारण गृहस्थियों के घर की थीं, पर यह मेरी तीसरी ट्यूशन एक मिनिस्टर के घर की थी। मिनिस्टर की लड़की दो बार मैट्रिक में फेल हो चुकी थी। उसी को पढ़ाना था। इस ट्यूशन का वेतन पचास रुपया मासिक तय हुआ था।

"स्त्री जब स्वयं कुछ कमाने लग जाती है, तो उसका अभिमान जाग उठता है। वह महीने में पचास रुपया कमाकर भी दो सौ रुपया मासिक कमाने वाले पुरुष को अपने से हेय समझने लग जाती है। उसकी चाल-ढाल में अन्तर आ जाता है, लाज-शर्म जो स्त्री-जाति की सुन्दरता का सर्वोत्कृष्ट भूषण है उससे कोसों दूर भाग जाती है। जैसे कोई निर्धन अधिक धन पाकर इतराने लग जाता है, उसी प्रकार नारी अपने हाथों से कुछ कमा लेने पर इतराने लग जाती है। वही दशा मेरी भी हुई। मैं भी सुसज्जित वेश-भूषा में सिर से नंगी, हाथ में छाता लेकर छाती तानकर चलने लगी थी। मुझे मेरे पति अथवा पुत्री का स्मरण हो आता, पर वह अब अधिक दुःखकर नहीं होता था।

"इसी प्रकार मेरे तीन वर्ष काशी में निकल गये। जैसे-जैसे मैं अपने पिछले जीवन से दूर होती गई, मेरी प्रवृत्तियाँ पुनः सिर उठाने लगीं। मेरा हृदय पुनः किसी पुरुष के प्यार अथवा आलिंगन के लिए तड़पने लगा। मांस-मछली खाने का हम बंगालियों में अधिक रिवाज

है। हमारे घर में भी सप्ताह में तीन दिन मछली या मांस पकाया जाता था। हमने एक नौकरानी रख ली थी, जो घर का चौका-बर्तन कर जाती। कमला दीदी का स्वभाव बहुत मधुर था। वह सुशील और सुशिक्षित थी। वह मुझसे दस वर्ष बड़ी थी, पर मैंने इन तीन वर्षों में उसके साथ रहकर भली-भाँति जान लिया था कि कमला दीदी के हृदय में भी किसी पुरुष की संगत पाने की इच्छा बनी रहती है। मुझसे बड़ी होने पर भी बनाव-शृंगार में कमला दीदी मुझे पीछे छोड़ जाती थी। पाउडर-सुर्खी अधिक लगाती, बन-सँवर कर अस्पताल जाती।

"दो-तीन व्यक्तियों से उसकी जान-पहचान घनिष्ट थी, जो प्रायः उसके घर में आते-जाते थे। उनमें एक डॉक्टर चन्द्रमोहन थे, जो देखने में सुन्दर और आकर्षक भी थे। वे जब भी कमला दीदी से मिलने आते और विशेषकर मेरी ओर आकृष्ट होते तो मुझसे वार्तालाप करने के लिए एकान्त खोजते। परन्तु मैं मन से चाहती हुई भी उनसे खुलकर बातचीत न करती, क्योंकि वह मेरी मुँहबोली दीदी के प्रेमी थे। मैं कमला दीदी के अधिकार पर डाका डालना नहीं चाहती थी।

"एक दिन जब मैं अपनी ट्यूशन पर उन मिनिस्टर साहब के घर गई तो देखा कि बँगले के बरामदे में बैठे हुए डॉक्टर चन्द्रमोहन मिनिस्टर साहब से वार्तालाप कर रहे थे। मुझे देखते ही आश्चर्य से उठकर बोले, 'अरे, सरला देवी! आप यहाँ कैसे आ गई।'

"मैंने नमस्ते करते हुए उत्तर दिया, 'मैं तो प्रतिदिन यहाँ आती हूँ, परन्तु आप यहाँ कैसे पधारे हैं?'

"मेरी बात सुनकर चन्द्रमोहन मुस्कुरा दिए। मिनिस्टर साहब ने कहा, 'यह चंचल के जीजाजी हैं, सरला देवी!'

"उनकी जिस लड़की को मैं पढ़ाती थी, उसका नाम चंचल था। मैंने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, 'ओह, एक्सक्यूज मी डॉक्टर! मैं यह नहीं जानती थी।' इतना कहकर मैं अन्दर चली गई। चंचल अपनी पुस्तकों को लिये हुए मेरी प्रतीक्षा में बैठी थी। मुझे देखकर उसने

नमस्ते कहा। मैंने पूछा, 'चंचल ! डॉक्टर चन्द्रमोहन तेरे जीजाजी हैं ?'

'हाँ, बहिनजी ! आप उन्हें जानती हैं ?'

'हाँ, जानती हूँ। मेरी दीदी उसी चिकित्सालय में काम करती हैं, जिसमें ये डॉक्टर हैं। क्या तुम्हारी दीदी भी आई हैं ?'

"अनायास ही मुझे डॉक्टर चन्द्रमोहन की पत्नी को देखने की इच्छा हो आई। मैं देखना चाहती थी कि उनकी पत्नी में क्या दोष है, जिसे छोड़कर डॉक्टर चन्द्रमोहन, कमला के दर पर माथा रगड़ने आते हैं। मेरी बात के उत्तर में चंचल ने कहा, 'आई हैं, बहिनजी ! बुला लाऊँ जीजी को ?'

'यदि उन्हें असुविधा न हो तो बुला लो। मैं उनसे भी परिचय प्राप्त कर लूँगी।'

"चंचल उठकर गई और तुरन्त ही लौट आई। उसके पीछे-पीछे लगभग तीस वर्ष की कुछ कड़े नख-शिख वाली मोटी-सी महिला आकर खड़ी हो गई और मेरी ओर घूर-घूर कर देखने लगी। मैंने हाथ जोड़कर उससे नमस्ते कहा। उसने कुछ उपेक्षा का भाव दर्शाते हुए सिर हिला दिया और कुछ रूखे कड़े शब्दों में बोली, 'कैसी पढ़ाई चल रही है लड़की की ? पास हो जायगी न ?'

"मैं उसके शब्दोच्चारण से ही समझ गई कि वह शरीर से ही मोटी नहीं है, बुद्धि से भी मोटी है। अभिमान की मात्रा उसमें आवश्यकता से अधिक थी। उसने औपचारिक ढंग से भी कोई बात नहीं की थी। शिष्टाचार भी नहीं निभाया था। आते ही चंचल की पढ़ाई की बात पूछने लग गई थी। मैंने नम्रता से उत्तर दिया, 'आशा तो बहुत है। चंचल उच्च श्रेणी में ही पास करेगी। मैं भी भरसक प्रयत्न कर रही हूँ कि यह अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण हो।'

'सभी मास्टर-मास्टरानियाँ ऐसा ही तो कहते हैं। वेतन के पैसे लेकर हमें प्रसन्न करने के लिए चापलूसी किया करते हैं।'

"मैं विस्मय से उसका मुख देखने लगी और मन-ही-मन पछता रही

थी कि अकारण ही इस मुसीबत को क्यों बुला लिया। परन्तु उसकी बातचीत से मुझे नया अनुभव प्राप्त हुआ। मैं समझ गई कि जिस व्यक्ति को अपने घर में अच्छा भोजन मिलने की आशा होती है, वह कभी भी बाजार की अच्छी-बुरी मिठाइयों पर नहीं ललचाता। बाजार की गन्दी-गन्दी वस्तुओं पर उसी व्यक्ति का मन चलायमान होता है, जिसे विदित हो कि उसे घर जाकर खाने को कुछ नहीं मिलेगा अथवा कुछ मिलेगा तो वह भी कुढ़न से भरा हुआ।

"इसी प्रकार जिस व्यक्ति को अपने घर में सुख-शान्ति या प्रेम मिलने की आशा होती है, वह कभी भी मीना बाजार की ओर नहीं झाँकता। वेश्याओं के कोठों पर उसी व्यक्ति की दृष्टि पहुँचती है, जिसके घर में सुख-शान्ति या प्रेम का अभाव होता है। अन्य स्त्रियों की ओर वही व्यक्ति ताक-झाँक करते हैं, जिनका घरेलू जीवन दुःखमय होता है। कुत्ते को यदि एक बार पेट भर खाने को मिल जाय तो वह कभी भी गन्दगी पर मुख नहीं चलाता। चंचल की बड़ी बहिन अथवा डॉक्टर चन्द्रमोहन की धर्मपत्नी को देखकर मैं भली-भाँति समझ गई कि डॉक्टर चन्द्रमोहन का घरेलू जीवन दुःखमय है। इसीलिए वह मानसिक शान्ति की खोज में कमला दीदी की संगत में आते हैं।"

यह कहती-कहती नकटी नानी चुप हो गई। हम सब लड़कियाँ पाषाणवत् उसकी ओर कान लगाये बैठी हुई थीं। मैं सोच रही थी कि पत्नी द्वारा यदि किसी को प्रेम न मिले, वह पुरुष यदि प्रेम पाने की लालसा से किसी अन्य स्त्री की ओर ताक-झाँक करे, तो इसमें वह कितने दोष का भागी है? और फिर हम स्त्रियाँ उन पुरुषों को अत्याचारी, वेश्यागामी, चरित्रहीन न जाने क्या-क्या कहकर लांछन लगाती हैं। क्या यह हम स्त्रियों की मूर्खता नहीं? हम स्त्रियाँ अपनी कमी को न सुधार-कर पुरुषों को कोसने लग जाती हैं। इसमें क्या तुक है?

कुछ देर चुप रहकर नानी फिर बोली, "मैंने चंचल की बहिन से अधिक रार बढ़ाना उचित न समझा और चंचल से कहा, 'चंचल!

तुम अपनी पढ़ाई आरम्भ करो ।'

चंचल के मुख पर न जाने कहाँ से दुर्दैव आकर बैठ गया। उसकी जबान से निकल गया, 'बहिनजी तो पहले से ही जीजाजी को जानती हैं दीदी !'

"उसके मुख से यह निकलना ही था कि मोटे शरीर और मोटी बुद्धि वाली उसकी दीदी ने राहु दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा, 'तुम कब से जानती हो जी उन्हे ?'

"मैं समझ गई कि यह स्त्री उनमें से है, जो घर को नरक बना देती हैं, जो अपने पतियों पर सर्वदा शंका की दृष्टि रखती हैं, जिन्हें अपने पतियों को दोषी ठहराकर उन्हें नीचा दिखाकर आनन्द मिलता है। उसकी बात मे तो मुझे खेद अवश्य हुआ, पर मैं उस शंका में जलने वाली स्त्री को और भी जलाने का संकल्प कर बैठी।

"मैंने कहा, 'तब से ही मैं जानती हूँ, जब वे डॉक्टरी पढ़ते थे। हम इकट्ठे घूमते थे, इकट्ठे आते-जाते थे और कॉलेज में भी इकट्ठे रहते थे।'

"मेरी यह मिथ्या बात सुनकर वह तिलमिला उठी। उसके तन-बदन में आग लग गई। मैं मन-ही-मन मुस्कुरा रही थी। उसने नेन तरेर कर मुझ पर बम का गोला फेंका, 'इन्हें ही लूट-लूटकर खाती रही हो ? या और भी किसी का घर बरवाद कर चुकी हो ?'

"उस मूर्खा की बात सुनकर मेरा तन-मन फुँक गया। इस प्रकार बेदर्दी से कोई किसी को चोट पहुँचा सकता है; मैंने आज तक देखा-सुना नहीं था। उसकी बुद्धि की थाह तो मुझे उसके प्रथम दर्शन से ही मिल चुकी थी, परन्तु अकारण ही बिना सोचे-समझे किसी से ईर्ष्या करने लगना कम ओछी बात नहीं होती। वह मुझे इसी प्रकार दिखाई देने लगी जैसे कि आवरणाच्छन्न मलयुक्त बेडौल पात्र पड़ा हो। मैं आश्चर्य से उसका मुख देख रही थी। उसने नेत्र फाड़-फाड़कर मुझे घूरते हुए अपने मुख से निकालकर मल का एक छींटा और फेंका, 'अपने मर्द से मन नहीं भरा

था तो किसी कोठे पर जा बैठतीं, वेश्या बन जातीं। औरों के घर क्यों उजाड़ती हो ?

"मेरी नसों में खून खौलने लगा। क्रोध से होंठ फड़फड़ाने लगे। मैं उठ गई और न चाहते हुए भी मेरे मुख से निकल गया, 'तुम्हारी जैसी दुर्गन्ध से युक्त, मल की ढेरी से बचने के लिए तुम्हारा पति यदि फूलों में मन बहलाता है तो इसमें उसका दोष नहीं। तुम जैसी नीच नारी को यदि कोई पुरुष ठुकराकर खुली वायु में साँस न ले, तो वह पागल हो जाए।'

"मेरी बात सुनकर वह इस प्रकार भड़क उठी जैसे बारूद की ढेरी पर आग की चिनगारी जा पड़ी हो। वह पागलों की भाँति हाथ नचा-नचाकर मुझे कोसने और गन्दी गालियाँ देने लगी। परन्तु मैंने उसकी ओर देखा तक नहीं। उसे उसी प्रकार मल उछालते हुए छोड़कर बाहर निकल आई थी। बाहर बरामदे में अभी भी डॉक्टर चन्द्रमोहन अपने श्वसुर से बातचीत में रत था। मैं बिना कुछ कहे-सुने चुपके-से उनके निकट से निकल जाना चाहती थी, पर निकल न सकी। मिनिस्टर साहब की दृष्टि मुझ पर पड़ गई। वह बोले, 'आज बहुत शीघ्र ही चली जा रही हो सरला देवी ! क्या बात है ?'

"मैं तो पहले ही क्रोध से भिनभिना रही थी। जाते-जाते दूर से ही कह गई, 'मुझसे आपका काम नहीं हो सकेगा। आप अपनी कन्या के लिए किसी दूसरी अध्यापिका को नियुक्त कर लें।'

"डॉक्टर चन्द्रमोहन और उसके श्वसुर विस्मय से मेरी ओर देखने लगे पर मैंने ध्यान नहीं दिया और चुपके से चली गई।

: २९ :

"उस रात मुझे नींद नहीं आई। अपनी वर्तमान दशा पर खेद होने लगा। मेरा हृदय तड़प रहा था। आज एक साधारण अशिक्षित स्त्री ने मेरा अपमान करने का साहस किया। क्यों भला ? इसीलिए न कि मैं

उनके यहाँ ट्यूशन करती हूँ, उनकी नौकरी करती हूँ। उस दिन वास्तव में अपने घर का, अपने पति का, अपने सारे परिवार का अभाव काँटों की तरह गड़ने लगा। मैं समझ गई कि खूँटी पर बँधी गाय का मूल्य ही अधिक होता है। आवारा गऊओं को कौन पूछता है? जो भी चाहे आवारा गाय को लाठी से खदेड़ सकता है। पत्थर अपने स्थान पर जमा हुआ ही भारी होता है। यदि एक बार वह अपने स्थान से हिल गया और लुढ़क पड़ा तो पतन की ही ओर जाता है।

"दूसरे दिन प्रातः ही चन्द्रमोहन हमारे घर आए। कमला दीदी अस्पताल जा चुकी थीं। महरी रसोई में बैठी बर्तन माँज रही थी। मैं स्नानादि से निवृत होकर स्नानागार से निकली ही थी कि डॉक्टर चन्द्र-मोहन से मेरा सामना हो गया। मेरे भीगे काले केशों से बूँद-बूँद पानी टपक रहा था। एक-दो छोटी लटें मेरे गोरे सुन्दर मुख पर झूल आई थीं। मैं साड़ी में ही थी। चन्द्रमोहन मुझे दृष्टि भर कर घूरने लगे। उनकी अपलक दृष्टि मैं सह न सकी। मेरा मुख लाल हो गया। मैंने मुस्कुराते हुए कहा, 'आप?'

'हाँ, सरला देवी! कल आप जिस कारण ट्यूशन छोड़कर चली आई हैं, मैं वह सब जान गया हूँ। आप नहीं जानतीं कि आपके चले आने के बाद मेरी कैसी दुर्गति उस मूर्खा ने की है। परन्तु वह तो मेरे जीवन का एक अंग बन चुका है। आपका जो अपमान हुआ है, उसके लिए मुझे बहुत खेद है। मैं इस समय आपके पास क्षमा-याचना के लिए आया हूँ।'

"चन्द्रमोहन की बातें मुझे बहुत ही मधुर लगीं। मैंने उन्हें बरामदे में बिछी हुई कुर्सी पर बैठने के लिए कहा और स्वयं कपड़े बदलने चली गई। मुझमें एक प्रकार की स्फूर्ति-सी आ गई थी। मैंने अच्छी-से-अच्छी एक साड़ी और उसी रंग का एक जम्पर निकाला और दर्पण के सामने खड़े होकर अपने आप को देखा। मेरा यौवन पके हुए फल की भाँति महक रहा था। मैंने अपने अंग की कोमलता और सुडौलता का निरीक्षण

किया। मुझ पर एक प्रकार का नशा-सा छा गया था। मेरे नेत्र मिचे जा रहे थे। पलकें बोझिल हो चुकी थीं। मुझे उन पर एक प्रकार की ठंडक का-सा आभास मिल रहा था। मैंने सुचारु रूप से केशों पर कंघी की, बेनी बाँधी। मन में एक प्रकार का उल्लास-सा उमड़ा पड़ता था। उसी के आवेश में मैंने अपने आपको पूर्ण रूप से सजाया और चन्द्रमोहन के सामने आकर खड़ी हो गई।

"मुझे देखते ही वह हकबका कर उठ खड़ा हुआ और तृषित दृष्टि से मुझे देखने लगा। मेरे हृदय में भी एक प्रकार का मीठा-मीठा दर्द होने लगा। चन्द्रमोहन पराजित-सा होकर मेरे सामने खड़ा था। उसने मेरे रूप का निखार आज पहली बार देखा था। मैं जब से घर छोड़ चली आई थी, आज पहला ही दिन था कि मैंने अपनी रुचि से अपने आपको सजाया था। चन्द्रमोहन मंत्रमुग्ध-सा मेरे सामने खड़ा था। उस पर मेरे रूप का जादू चल चुका था। उस दिन मैक्स या जॉन में से कोई मेरे सामने होता तो भूखे भेड़िये की भाँति मुझ पर टूट पड़ता, पर चन्द्रमोहन सुशील और सुशिक्षित था, कुलीन घर का युवक था। उसने अपने पशु को पागल नहीं होने दिया। सभ्यता के अंकुश से ही उसे काबू में रखा। मैंने लजाते हुए कहा, 'बैठिये ! खड़े क्यों हो गए हैं ?'

"डॉक्टर चन्द्रमोहन की चेतना लौट आई। उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, 'मैंने जीवन में पहली बार आज एक चमत्कार देखा है सरला देवी ! आप मानवीय नहीं प्रतीत होतीं। किसी तपस्वी के श्राप से आप मर्त्यलोक में अवतीर्ण हुई हैं।'

"प्रशंसा सुनकर मेरा मन धड़कने लगा, मेरा रोम-रोम सिहर उठा। मेरे लिए चन्द्रमोहन के सामने बैठना कठिन हो गया।

"मैं सत्य कहती हूँ इस प्रकार की प्रशंसा पाने के लिए ही मैं बन-संवरकर चन्द्रमोहन के सामने आई थी। पर जब वह प्रशंसा करने लगा तो मैं सह न सकी और यह कहकर भाग निकली कि आप जाइएगा नहीं, मैं चाय का प्रबन्ध कर आती हूँ।

"उस दिन बहुत दिनों के बाद मेरे हृदय में मधुरता की लहर पुनः उठी। मैं उमंगों में झूमती हुई अपने रूप की प्रशंसा करने वाले डॉक्टर चन्द्रमोहन को सर्व प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहती थी। मैंने नौकरानी को भेजकर बाजार से कुछ नमकीन खाद्य पदार्थ, जो चाय के साथ प्रयोग किए जा सकते थे, मँगवा लिए और स्वयं चाय तैयार करने लगी थी। चाय तैयार होते तक नौकरानी लौट आई। मैंने प्लेट में सब सामान सजाया और केटली में चाय उड़ेल कर नौकरानी को दो प्याले रख आने के लिये कहकर चन्द्रमोहन के पास जा पहुँची। वह कुरसी पर ग्रीवा झुकाये किसी गहरी चिन्ता में बैठे थे। मैंने उनके सामने बैठकर चाय तैयार की और एक प्याला डाक्टर की ओर सरका दिया। हम दोनों चाय पीने लगे। परन्तु एक दूसरे की ओर एक आध बार सिवाय देखने के हम दोनों के मुख से कोई बात न निकली। अन्त में डॉक्टर चन्द्रमोहन ने पूछा, 'सारा दिन आप क्या करती रहती हैं सरला देवी?"

"मैंने उत्तर में मुस्कुराकर कहा, 'कोई उपन्यास पढ़ने अथवा सो रहने के अतिरिक्त और मुझे कार्य ही क्या रहता है। अकेली बाहर भी निकलूं तो जाऊँ कहाँ? यहाँ की पूरी-पूरी जानकारी भी तो नहीं।'

'आप ने यहाँ के दर्शनीय स्थान नहीं देखे क्या?'

'नहीं।'

'तो चलिए सारनाथ चला जाए। मैं चार दिन की छुट्टी पर हूँ।'

"मैं तैयार हो गई और चन्द्रमोहन के साथ सारनाथ चली गई। चन्द्रमोहन ने मुझसे मीठी-मीठी बातें की। मुझ पर कुछ व्यय भी किया। वह दिन मेरा हँसी-खुशी में बीत गया।

"इसी प्रकार डॉक्टर चन्द्रमोहन का और मेरा सम्पर्क बढ़ते-बढ़ते प्यार में बदल गया। चन्द्रमोहन रात-रात भर मुझे इधर-उधर लिए घूमता; कभी सिनेमा, कभी सर्कस, कभी नौका-विहार और कभी सैर। मेरे दिन पुनः हँसी-खुशी से कटने लगे। मेरी इस वृत्ति से कमला दीदी कुछ खिन्न हो उठीं। एक प्रकार से उन्हीं की सम्पत्ति पर मैंने डाका डाला था।

डॉक्टर चन्द्रमोहन जो मुझ पर व्यय करते थे, मुझसे पहले वही कुछ वह कमला दीदी पर व्यय किया करते थे। परन्तु कमला दीदी ने मुँह खोल कर मुझे कभी कुछ नहीं कहा था। वह भी दिल रखती थी और नारी थी। वह मेरी आवश्यकताओं को भी समझती थी। उसने मेरे स्वच्छंद विचरण में कोई विघ्न तो नहीं डाला, पर मन-ही-मन मुझ पर से अपना स्नेह कम करती गई।

"अन्त में एक दिन ऐसा आ गया जब कि उसने मुझे साफ-साफ कह दिया कि अब मुझे अपना अलग मकान ले लेना चाहिए। उन दिनों मुझे भी कमला दीदी की सहायता की अधिक आवश्यकता नहीं रह गई थी। डॉक्टर चन्द्रमोहन द्वारा कई अन्य रईसों और नगर निवासियों से मैं परिचित हो चुकी थी। कमला दीदी के कहने की मैंने कोई चिन्ता नहीं की और चन्द्रमोहन से कहकर दूसरे मकान का बन्दोबस्त करवा लिया। दूसरे ही दिन मैं कमला दीदी का घर छोड़कर दूसरे मकान में चली गई, जहाँ समय-समय पर मेरे अन्य मित्र स्वच्छंदता पूर्वक मुझसे मिलने आने लगे। मैं एक बार पुनः अपनी वास्तविकता को भूल गई।

"जैसे-जैसे दिन व्यतीत होते गये, मुझे मेरी व्यतीत दुःखमय घड़ियाँ भी दुःस्वप्न की भाँति विस्मृत होती गईं। मेरा खाना पीना, उठना बैठना, पुनः वैसा ही हो गया जैसा विवाह से पूर्व कलकत्ते में था। सारांश यह कि मैं पुनः खुल खेली। अब बाधा-विहीन स्वच्छंद तितली की भाँति मैं कली-कली का रसास्वादन करने लगी और स्वयं भी एक कली की भाँति अपने चारों ओर मँडराकर भिन-भिनाने वाले भँवरों का मधुर गान सुनकर मतवाली-सी हो गई। उन दिनों डॉक्टर चन्द्रमोहन के अतिरिक्त तीन-चार व्यक्तियों से मेरा यौन सम्पर्क हुआ। जिनमें दो वकील थे और एक वस्त्र-विक्रेता सिन्धी युवक और एक वह व्यक्ति था जिसका मकान मैंने किराये पर ले रखा था। फलस्वरूप कमला का घर छोड़ने के तीन महीने बाद मेरी तबियत खराब रहने लगी। जी मिचलाने लगा था, शरीर भारी और आलसी होता जा रहा था। मुझे कमला दीदी

पर अभी भी विश्वास था। मैंने मन में निश्चय कर लिया कि कमला दीदी के पास जाकर अपनी सफाई करवा लूँगी। क्योंकि मैं यह जानती थी कि कमला दीदी के हाथों, मेरे रहते कई ऐसे केस वहाँ आए थे, जिसे कमला दीदी ने सफलता पूर्वक निभाया था।

यह सोच एक दिन मैं भी कमला दीदी के पास गई और उसे अपनी सारी राम कहानी कह सुनाई। सन्देह तो मुझे भी हो चुका था कि मेरे पेट में बच्चा रह गया था। कमला ने इस बात की पुष्टि कर दी। एक बार तो मैं डरी, तदनन्तर कमला से अनुनय-विनय करने लगी कि किसी भी प्रकार वह आफ़त से छुट्टी दिलवा दे। कमला मन-ही-मन मुझ पर बहुत क्रुद्ध थी। जिन दिनों मैं दाने-दाने के लिए मुहताज, अन्न-वस्त्र विहीन कमला के पास आई थी, तो उसने दयावश मेरा भार स्वयं पर ले लिया था और जब मैं उसी की कृपा से डॉक्टर चन्द्रमोहन इत्यादि से परिचित होकर मौज-मजा उड़ाने लगी, तो मैंने कमला दीदी की उपेक्षा कर दी थी। इसका उसे महान् दुःख था। उसने सुअवसर जानकर मुझसे बदला लिया। ऊपर-ऊपर से मुझे तसल्ली देते हुए ऐसी औषधियाँ सेवन करवाने लगी, जिससे मेरा गर्भ पूर्ण रूप से परिपक्व हो गया। उलटी इत्यादि तो मेरी बन्द हो गई, परन्तु जो कुछ मैं चाहती थी, वह न हो सका। मैं मन-ही-मन अपनी मूर्खता पर पछताई, रोई, पर कर कुछ भी न सकी।

"दिन निकलते गये। जैसे-जैसे मेरा पेट भारी होता गया, मुख का रंग पीला पड़ता गया, अधर मुरझा-से गये, तैसे-ही-तैसे मेरे मित्र भी मुझसे दूर होते गये। स्वयं डॉक्टर चन्द्रमोहन मेरा गर्भपात कर सकता था, पर कमला दीदी ने उसे बुरी तरह धमका दिया था कि उसने यदि ऐसा कुकर्म किया तो वह पुलिस को सूचित कर देगी। इसी भय के कारण डॉक्टर चन्द्रमोहन धीरे-धीरे मुझसे दूर रहने लगा। अन्त में एक दिन ऐसा भी आया जब मैं अकेली, निस्सहाय अपने पेट में पाप का बोझ लिये रात-रात भर रोती रहती, पर मुझे पानी तक पूछने वाला

कोई नहीं था।

"बच्चा होने से कुछ दिन पहले मैं हिम्मत करके डॉक्टर चन्द्रमोहन से मिलने गई और उसके सामने रोई-गिड़गिड़ाई। मेरी व्यथा सुनकर वह सहानुभूति दर्शाता हुआ बोला, 'इन बातों को तो आपको पहले सोच-समझ लेना चाहिए था, सरला देवी! अब आप मुझसे क्या चाहती हैं?'

"मैंने दीनता से उत्तर दिया, 'मैं चाहती हूँ कि आप इस होने वाले बच्चे के पिता बनें। ताकि मैं संसार में मुँह दिखाने योग्य रह सकूँ।'

"मेरी बात सुनकर चन्द्रमोहन खिन्न-सा होकर बोला, 'यह कैसे हो सकता है, सरला देवी? पिता तो मैं अपने पुत्र का हो सकता हूँ।'

"मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, 'यह आने वाला बालक भी आपका है। अन्य किसी का नहीं।'

"मेरी बात सुनकर डॉक्टर उपेक्षित हँसी हँसकर बोला, 'तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है, सरला! तुम मुझ अकेले की ही तो मित्र नहीं रही हो। शुक्ल जी हैं, बैरिस्टर साहब हैं, वह सिन्धी है। इन सबसे तुम्हारी मित्रता रही है। उनमें से भी किसी एक का यह बालक हो सकता है। फिर मैं ही इस कलंक के बोझ को अपने सिर पर क्यों लाद लूँ?'

"मैं डॉक्टर चन्द्रमोहन के यहाँ से पूर्णतया निराश होकर लौटी, पर मैंने हिम्मत न हारी। मैं दिल से चाहती थी कि मेरे इस होने वाले बच्चे का कोई एक पिता बने, ताकि होने वाला बालक वर्णसंकर और मैं कुलटा न कहलाऊँ। इसी उद्देश्य को लेकर शुक्लजी के यहाँ गई, पर उन्होंने भी मीठी-मीठी बातें कहकर मेरे बच्चे का पिता बनने से इनकार कर दिया। मुझे चारों ओर से निराशा-ही-निराशा दिखाई देने लगी।

"सिन्धी ने तो मुझे दूर से ही दुत्कार दिया और जिस बाबू साहब के मकान में मैं किराये पर रहती थी, उनसे जब यह बात कही, तो उन्होंने उलटा मुझे ही धमकाना आरम्भ कर दिया और मुझ पर चरित्र-हीन, परपुरुष-गामिनी होने का लांछन लगाकर मुहल्ले भर को मेरा

विरोधी बना दिया और मुझे घर से निकाल दिया।

"मैं चारों ओर से ठुकराई हुई अपनी कुकृतियों पर पछताती, आँसू बहाती पुनः कमला दीदी की शरण में गई। कमला दीदी ने तरस खाकर मुझे अस्पताल में स्थान दिलवा दिया। दिन तो पूरे हो ही चुके थे। दो दिन अस्पताल में रहने के बाद मुझे लड़का हुआ। कमला दीदी की सिफारिश पर मुझे सात दिन और अस्पताल में रखा गया। तदनन्तर मुझे अस्पताल से मुक्त कर दिया गया। कदला दीदी ने भी मुझसे साफ कह दिया कि मेरी समाई उसके साथ नहीं हो सकती। मैं स्वयं अपना प्रबन्ध करूँ।

"मेरे हाथों में सोने की दो-दो चूड़ियाँ थीं। मैंने बाजार में उन्हें बेच दिया और उन रुपयों के भरोसे, एक छोटा-सा मकान किराये पर लेकर अपने दिन काटने लगी, किन्तु मैं बहुत अशक्त हो चुकी थी। मेरे लिए पानी का गिलास मात्र धो लेना भी कठिन हो रहा था। लाचार होकर मैंने एक नौकरानी रख ली। वह घर के साथ-साथ मेरी और बच्चे की भी देखभाल करने लगी। लगभग दो महीने इसी प्रकार कट गए। मैं चलने-फिरने योग्य हो गई। चूड़ियों के रुपयों में से केवल सौ रुपया मेरे पास था। शेष सब खर्च हो चुके थे। मुझे अपने भावी जीवन की चिन्ता होने लगी। मैं अपने बच्चे को नौक-रानी के आश्रय पर छोड़कर स्वयं घर से निकल जाती और इधर-उधर स्कूलों, कॉलेजों में जाकर अपने लिए कोई कार्य ढूंढती। परन्तु मैं जहाँ भी जाती, मुझसे मेरा परिचय पूछा जाता; पहले मैं क्या करती थी और कैसी थी? इन सब बातों का मैं विश्वसनीय उत्तर न दे पाती। फल-स्वरूप मुझे निराश लौट आना पड़ता। जिन धनाढ्य व्यक्तियों से मैं परिचित थी, ट्यूशन आदि पाने की आशा से उनके घर जाती, पर वे सब मेरे विगत जीवन का इतिहास जान और सुन चुके थे। मुझे अपने घर की दहलीज़ तक कोई न घुसने देता, जैसे मैं प्लेग की बीमारी होऊँ। वे मुझे देखते दूर ही से नमस्कार कर देते और कोरा उत्तर दे देते।

यदि मैं अधिक गिड़गिड़ाती तो वे मुझे अपमानित करके घर से निकाल देते।

: २३ :

"इसी प्रकार मेरे कुछ दिन और कट गए। अब पैसों का अभाव खटकने लगा। मैंने नौकरानी को निकाल दिया। उसका खर्चा तो मुझ पर से अवश्य कम हुआ, परन्तु मुझे अपने और अपने बच्चे के पेट पालने के लिए तो कुछ चाहिए था। अन्त में चारों ओर से निराश होकर मैंने एक घर में दासवृत्ति अपनाई, जहाँ से मुझे और मेरे बच्चे के लिए भोजन मिलने लगा और मैं उसी प्रकार अपने आपको अनुभव करने लगी, जिस प्रकार एक नीच, पापिष्ठा नारी अपने बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए पतितावस्था को प्राप्त होती है।

"उन दिनों का वर्णन कैसे करूँ, मोहिनी बेटी! कहते हुए हृदय फट जाता है। मैं एक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट की पुत्री, एक जज की पतोहू और बैरिस्टर की पत्नी जो सर्वदा उपवन में महकती कलियों की भाँति मुस्कुराती और मस्तियों की साँस लेती रहती थी, जिसके आगे-पीछे दर्जनों दास-दासी हाथ बाँधे खड़े रहते थे, वही मैं, अपनी कुशिक्षा के प्रभाव से, अपनी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियों के अधीन होकर आज इस दीन अवस्था में पहुँच गई थी कि मुझे स्वयं अन्यों की दासवृत्ति करनी पड़ती थी। उन दिनों अगणित शारीरिक कष्ट झेलने पर भी मैं मन से सन्तुष्ट थी। मैं उन कष्टों को अपने पाप का प्रायश्चित समझती थी। इसी प्रकार मेरी जीवन-चर्या चलती रही।

"मेरा लड़का पाँच वर्ष का हो गया। जिनके यहाँ मैं चाकरी करती थी, वह भले मानुस व्यक्ति थे। उनसे कह-सुनकर मैंने अपने लड़के को स्कूल में भिजवा दिया, पर मेरे लड़के की रुचि पढ़ने में नहीं थी। वह स्कूल से भाग आता और सारा दिन मुहल्ले के आवारा लड़कों के साथ खेलता और स्वयं भी आवारा होता गया। मुहल्ले-टोले वाले मेरी व्यतीत

जीवनी को जानते थे। वे मेरे लड़के को चिढ़ाते, गालियाँ देते और हँसी दिल्लगी में उससे उसके पिता का नाम पूछते। जब मेरा लड़का कोई उत्तर न दे सकता तो वह दुःखी होकर घर लौट आता। मुझसे अपने पिता के विषय में पूछता, पर मैं उसे क्या बताती कि वह किसका पुत्र है, जबकि स्वयं मैं ही नहीं जानती थी। मैं उसे फुसला-परचा कर टाल देती।

"इसी प्रकार दिन निकलते गए। मैं बूढ़ी होती गई और मेरा लड़का जवान। जैसे-जैसे मेरी इन्द्रियाँ शिथिल होती गईं, मेरे पुत्र के अवयव पुष्ट होते गए, पर वह पूर्णतया उजड्ड, आवारा और गुण्डा बनता गया। उसी के कारण मुझे वह घर भी छोड़ना पड़ा जिस घर में रहकर मैं दासी-वृत्ति करती थी। अंत में मैंने लोगों के घरों में जाकर महरी का काम करना आरम्भ कर दिया। मैं उनके जूठे बर्तन माँजती, झाड़ू लगाती और महीने में पाँच या छः रुपए पाती। इसी प्रकार मैं तीन-चार घरों की मजदूरी करके स्वयं का और अपने पुत्र का पेट पालती। मेरी शिक्षा-दीक्षा, पढ़ाई-लिखाई सब अकारथ गई। मेरा लड़का पूरा गुण्डा और जुआरी निकला। वह शराब पीता था, वेश्यागामी हो चुका था। घर में आता, मुझे मारपीट कर रुपया-पैसा जो पाता, ले जाता और जुए में हार जाता। इसी प्रकार वह चोर भी बन गया, लोगों के पॉकेट मारने लगा। अंत में एक दिन पकड़ा भी गया और उसे वर्ष भर का कारावास दंड हुआ। वर्ष भर बाद जब वह छूट कर आया तो अपने साथ और भी अधिक बुराइयों को लेकर आया। जिन अपराधों में वह कच्चा था, उनकी निपुणता प्राप्त कर आया। मुझ में अब इतना बल नहीं रहा था कि मैं किसी भी प्रकार उसे डाँट-डपट कर सीधे मार्ग पर ले आती। पर मैं उसकी इतनी बात से ही प्रसन्न थी कि वह घर में रहता तो था, मेरे नेत्र उसे देखकर तृप्त तो हो जाते थे। वह लाख बुरा सही, पर था तो मेरा पुत्र ही।

"एक दिन न जाने वह कहाँ से लड़-झगड़कर घर लौटा और आते ही पूछने लगा, 'मैं किस का पुत्र हूँ माँ!'

"मैं एकदम काँप उठी। उसकी इस बात का मैं उसे क्या उत्तर दे सकती थी ? अब वह नन्हा बालक नहीं रहा था कि मेरे पुचकारने अथवा फुसलाने से अपनी हठ छोड़ देता। लाचार होकर मैंने कहा, 'तेरे पिता बहुत बड़े आदमी थे पर अब वे मर चुके हैं, बेटा !'

"मेरी बात सुनकर वह एकदम भड़क उठा और कड़ककर बोला, 'झूठ, सरासर झूठ ! मेरा पिता कोई था ही नहीं। मैं हराम की औलाद हूँ। तुम छिनाल, नीच, स्त्री हो। तुमने जन्म देते ही मेरा गला क्यों न घोंट दिया। बोल, बोल, अब मैं किसका पुत्र बन कर संसार में रह सकता हूँ ? पिता का नाम पूछे जाने पर मैं किसका नाम बता सकता हूँ ? तुमने मेरा जीवन बर्बाद कर दिया। तुमने मुझे पाल-पोस कर बड़ा किया इसीलिए कि मैं जीवन भर हरामी कहलाऊँ ? कौन-से जन्म के बैर का मुझसे बदला लिया है, तुमने माँ !'

"मैं उसके सामने खड़ी ग्रीवा झुकाए आँसू बहा रही थी। वह जवान हो चुका था। मैं समझ नहीं पा रही थी कि आज उसके मन में ऐसे विचार क्यों उदय हो रहे हैं ? संभवतः वह बाजार से इसी विषय पर अपमानित होकर आया होगा। वह पागल-सा हो रहा था। चिल्लाकर बोला, 'बताती क्यों नहीं नीच चरित्रहीना ! मैं किसकी औलाद हूँ ?'

"मैं कुछ भी उत्तर न दे सकी, जिससे वह तैश में आ गया और जेब से चाकू निकालकर मुझे मारने के लिए झपटा। मैंने उससे डरकर चीख मारते हुए कहा, 'बेटा !'

"मेरा आर्तनाद सुनकर उसने अपना हाथ रोक लिया और बोला, 'अच्छी बात है। तुम यदि अपना कलंकित जीवन लेकर जीना चाहती हो तो जीओ, पर मैं इस अपमान को नहीं सह सकूँगा। मैं हराम की सन्तान कहलाने के लिए जीवित रहना नहीं चाहता। तुम्हारे ही कारण मैं लंपट और लफंगा बना। कारावास का दंड पाया, हरामी कहलाया। केवल तुम्हारे ही कारण यह सब हुआ। यदि मेरा कोई एक पिता होता तो मेरी देखभाल करता। मुझे पढ़ाता-लिखाता। मैं भी सभ्य समाज

—१२

का एक अंग होकर जीवित रहता और आज मेरी यह दुर्दशा न होती ।

'तुम ऐसे नारकीय जीवन में भी ममता लेकर पड़ी हुई हो, पर मैं नहीं जीना चाहता । मैं अपना ही जीवन समाप्त कर लेता हूँ ।'

"यह कहकर वह अपने हाथ का चाकू अपने ही वक्ष पर मार लेना चाहता था । मैं पागल हो उठी और तड़प कर उस पर झपटी । उसके हाथ से चाकू छीन लेने का प्रयास करने लगी थी । मेरे जीवन की आशा, मेरे बुढ़ापे की लाठी, मेरे कुकर्मों का फल वह स्वयं भोगने जा रहा था । मैं उससे गुँथ गई । न जाने मुझ में कहाँ से इतना बल आ गया । मैंने उसके हाथ से चाकू छीनकर दूर फेंक दिया । वह क्रोध में उफन रहा था । जीने का सहारा तो मैंने पहले ही उसे कोई नहीं दिया था । वह मरना चाहता था, पर मैंने उसे मरने भी नहीं दिया । वह चिल्लाता हुआ क्रोध में बोला, 'जीवन के सारे आधार तो तुमने पहले ही मुझसे छीन रखे हैं । अब मरने भी नहीं देतीं ?'

"उसने उसी आवेश में निकट पड़ी हुई एक पीतल की कटोरी मेरे मुख पर दे मारी, जो मेरी नाक पर लगी, जिससे मेरी नाक की हड्डी टूट गई । मेरी नाक से रक्त की धारा बहने लगी । मेरा लड़का भय से काँपने लगा और भाग खड़ा हुआ । पर मैं रोई नहीं, चिल्लाई नहीं । मेरी हँसी निकल गई । उस दिन मेरे कुकर्मों का पूरा दंड मुझे मिल गया था । पीड़ा से मेरा बुरा हाल था । परन्तु जैसे-जैसे पीड़ा बढ़ रही थी, वैसे-ही-वैसे मैं खुलकर हँस रही थी । मैं पागल हो गई थी । मेरी वह अकारण पागलों-जैसी हँसी सुनकर पड़ोस के घर की कहारिन आ गई और मेरी दुर्दशा देखकर चिल्लाने लगी । परन्तु मैं तब भी हँस रही थी, जी खोल कर हँस रही थी । उसकी चिल्लाहट और मेरी हँसी सुनकर मुहल्ले-टोले के व्यक्तियों की भीड़ लग गई । मुझे पागल समझकर पड़ोसियों ने अस्पताल पहुँचा दिया । वहाँ मुझे मूर्च्छित करके मेरी नाक की परीक्षा की गई, जो अब जुड़ने लायक नहीं रही थी । इसलिए डाक्टरों ने रही-सही नाक को भी जड़ से काटकर अलग कर दिया । दूसरे दिन मेरी मूर्च्छा भंग हुई ।

मैं नकटी हो चुकी थी।

"अस्पताल के बेड पर पड़े-पड़े मेरे विगत जीवन की सम्पूर्ण घटनाएँ चल-चित्र की भाँति मेरे नेत्रों के सामने नाचने लगीं। मुझे मेरा बाल्यकाल स्मरण हो आया। विद्यार्थी जीवन स्मरण हो आया। जवानी की रंगीनियाँ याद आईं। माता-पिता, सास-श्वसुर सभी कुछ स्मरण हो आए पर सब से अधिक मेरे पति स्मरण होने लगे। नाक कट जाने पर एक प्रकार से मेरा ब्रह्माण्ड-सा खुल गया। जैसे मूक सोती को किसी ने झकझोर दिया हो। मुझ में मेरी वंशज कुलीनता जाग उठी। मैं सचेत होकर किसी को अपना नकटा मुख दिखाने में लज्जा का अनुभव करने लगी। मैं उठी और चुपके-चुपके रात के अँधेरे में अस्पताल से बाहर निकल आई और एक ओर चल निकली। मेरा कोई उद्देश्य नहीं था, कोई मंजिल नहीं थी। जिस ओर मेरे पैर उठ रहे थे, मैं उसी ओर चली जा रही थी। रास्ते में मुझे कुछ यात्री मिल गए, जो सबके-सब मद्रासी भिखमंगे थे। मैं उनके साथ मिल गई। उनकी देखादेखी मैं स्वयं भीख माँगने लगी। अब मुझे किसी का भय नहीं था। मेरा रूप मुझ से विदा हो चुका था। उसके साथ-ही-साथ मेरे मन की कुप्रवृत्तियाँ भी लोप हो चुकी थीं। मैं दो वर्ष तक उन भिखमंगों के साथ रही। गंगोत्री, जमनोत्री, बद्रीनारायण, केदारनाथ की यात्रा मैंने उन भिखारियों के साथ पैदल की और उन्हीं के साथ घूमती हुई अब यहाँ लखनऊ आई हुई हूँ।

"हमारा डेरा स्टेशन से उस पार पड़ा हुआ है। सभी भिखमंगे भिक्षा के लिए निकले हुए हैं और मैं भी भीख माँगती-माँगती आप लोगों के पास पहुँच गई हूँ।"

: २४ :

नानी की कथा पूर्ण हुई। जिस प्रकार नानी अपनी कथा कहते कहते सावन-भादों की तरह आँसू बहा रही थी, उसी प्रकार हम सभी याँड़लकि विलख रही थीं। नानी की व्यथा-गाथा ने हम सब लड़कियों

को अभिभूत कर दिया था। हम सभी दुःख अनुभव कर रही थीं। कौन किसको सान्त्वना दे ? सब चुप बैठी हुई नेत्र पोंछ रही थीं।

कोठी के बाहर तांगा रुका। मेरे पिता और मम्मी लौटे थे। हम सबको बिना उजियाले के कोठी की लॉन में बैठी हुई देखकर वे आश्चर्य करने लगे। रात के आठ बजने वाले थे। उन्होंने मुझे पुकारा। मैं हड़बड़ा कर उठी। तब मुझे ज्ञात हुआ कि हम सब प्रातः से बैठी अभी तक उठी ही नहीं। मैंने शीघ्रता से जाकर लॉन की लाइट का स्विच ऑन कर दिया। लॉन में रोशनी फ़ैल गई। अन्य सभी मेरी सहेलियाँ विस्मय से अपने चारों ओर देखने लगीं, जैसे किसी भयानक स्वप्न को देखकर अभी-अभी उनकी आँख खुली हो। बत्ती का स्विच ऑन करके जब मैं लौट रही थी तो मैंने देखा कि मेरी माँ बरामदे में छिपकर बैठी हुई थी। वह मुझे देख चौंक उठी।

सबसे अधिक विस्मय की बात तो यह थी कि उजाला होते ही मेरे पिता ध्यानपूर्वक उस नकटी को देख रहे थे और नकटी उन्हें। मैं निकट आकर उन दोनों का मुख देखने लगी। अनायास ही मेरे पिता के मुख से निकल गया, "चन्द्रा······।"

पिताजी की बात सुनकर नकटी भिखारिन चौंक उठी और विस्मय से मेरे पिताजी को देखती हुई बोली, "आ-ऽ-ऽ-प ?"

मेरी माँ भी समीप आ चुकी थी। उसने भी बड़े ध्यान से नकटी भिखारिन को देखते हुए कहा, "हाँ, चन्द्रा ही तो है। मैं बहुत देर से छिपकर इसकी बातें सुन रही थी।"

नकटी ने मुड़कर मेरी माँ की ओर देखा और भागकर उसके पाँव पर गिरती हुई बोली, "भाभी ! आप ?"

हम सब लड़कियाँ आश्चर्यचकित होकर नाटक का यह विस्मय-जनक अंत देख रही थीं। मेरी माँ नकटी भिखारिन को अपने पाँवों से उठाना चाहती थी, पर वह उठ नहीं रही थी। उसकी सिसकियों की आवाज हम सब सुन रही थीं। हम सब के नेत्र बरस रहे थे। पिताजी

के भी नेत्र सूखे नहीं थे। माँ तो बिलख-बिलखकर रोने लगी थीं। पिताजी ने करुणा से विगलित वाणी में कहा, "यह तेरी कैसी दशा है, चन्द्रा! घर छोड़कर क्यों चली आई थी? तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे बाद तुम्हारे पति रमेश की कैसी करुणाजनक दशा हो गई थी। वह दो वर्ष तक खाट पर लेटा हुआ तुम्हारी ही चिन्ता में डूबा रहता था।"

पिताजी की बात सुनकर नकटी, जिसका असली नाम सरला नहीं चन्द्रा था, एकदम चीख उठी और मेरे पिता के पास आकर चिन्तायुक्त वाणी में बोली, "वे सकुशल तो हैं, न! जीवित तो हैं न!" फिर स्वयं ही कहने लगी, "नहीं, नहीं! वे मुझसे पहले इस संसार से, मुझे अकेली छोड़कर नही जा सकते। यदि मैंने उन्हें सच्चे हृदय से प्यार किया है तो अवश्य ही मेरे लिए जीवित होंगे। मैं तन की मलिन, कुलटा अथवा, पापिष्ठा भले ही हूँ, पर मेरा हृदय हर समय उनके चरणों में रहा है। हर दुःख-सुख में उनका हाथ मैंने अपने सिर पर अनुभव किया है। बोलो बैरिस्टर भैया! वे सकुशल तो हैं, न!"

"हाँ, चन्द्रा! वे कुशलपूर्वक है, पर तुम्हें अब तक भी नहीं भूल सके। अपना सारा जीवन तुम्हारी पुत्री को अपनी छाती से लगाकर उन्होंने काट दिया है। वह आजकल यहीं है, मिलोगी उनसे?"

पिताजी की यह बात सुनकर नकटी नानी अर्थात् चन्द्रा, पुनः पागल हो गई और चिल्ला-चिल्लाकर बोली, "नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह नकटा मुख दिखाकर मैं उनका दुःख और नहीं बढ़ने दूँगी। मैं जाती हूँ; यहाँ से जाती हूँ। इस शहर से भी चली जाऊँगी।" यह कहकर वह पागलों की भाँति उठकर भागी। मेरे पिता, 'रुक जाओ चन्द्रा! ठहरो चन्द्रा!' कहते हुए उसके पीछे दौड़े जा रहे थे। हम सब लड़कियाँ भी उनके साथ भागी थीं। आगे हजरतगंज का चौराहा आ पड़ा। हम लड़कियाँ सड़क पर एक ओर रुक गईं। आठ साढ़े-आठ बजे हजरतगंज का यातायात बहुत बढ़ जाता है। आगे-आगे नकटी और उसके पीछे मेरे पिताजी भागे जा रहे थे। नकटी एक प्रकार से चारों

ओर से नेत्र मूँदकर भागी जा रही थी। दाहिनी ओर से मोटर का हॉर्न सुनकर वह एक पग पीछे हटी। पीछे हटने ही मोटर सायकिल का धक्का खाकर वह पुनः आगे की ओर सड़क पर जा गिरी। दाहिनी ओर से, आने वाली मोटर उसे कुचलती हुई दस पग आगे जाकर रुक गई। चौक में हाहाकार मच गया। नकटी नानी मूर्छित हो चुकी थी। मोटर का पहिया उसकी तनी छाती के ऊपर से निकल गया था। उसके मुख से रक्त बह रहा था। मेरे पिता यह दृश्य देखकर चिल्ला उठे। लोगों ने पकड़-धकड़ कर नानी को उठाया और एक कार में डाल कर मेरे पिता उसे अस्पताल ले गये। हम सब लड़कियाँ भी टैक्सी लेकर अस्पताल पहुँची। नानी को डॉक्टरों के सुपुर्द कर मेरे पिता टैक्सी करके चले गये और लगभग पन्द्रह मिनट बाद पुनः अस्पताल लौट आये। उनके पीछे-पीछे मेरी सहेली श्यामा के मजिस्ट्रेट पिता आ रहे थे। उनके मुख का रंग उड़ा हुआ था। उनके नेत्रों में एक प्रकार की तड़प थी। वह नकटी नानी के बेड के पास जाकर कुछ समय ध्यान से उसका मुख देखते रहे। तत्पश्चात् बच्चों की भाँति अपना सिर उसकी छाती पर रखकर बिलखने लग गए। अपने पिता की ऐसी दशा देखकर श्यामा, जो अपने पिता के साथ ही अस्पताल में आई थी, आश्चर्यचकित रह गई। वह बहुत बार अपने पिता से अपनी माँ के विषय में पूछ चुकी थी, पर उसे कभी भी माता की वास्तविकता जान लेने का सुअवसर नहीं मिला था। आज वह अपने जीवन की उत्कृष्ट उलझन का सुलझाव पा गई थी। इसी, नकटी का आज प्रातः उसने तिरस्कार किया था, जो इसकी जननी थी इसकी माँ थी। वह मन-ही-मन व्याकुल हो उठी। उसने एक बार हम सब लड़कियों की ओर देखा। कुछ-कुछ लज्जा का भी अनुभव किया, किन्तु तुरन्त ही उसने लज्जा को झाड़-पोंछकर अलग कर दिया और अपनी माँ के पैताने जाकर उसके पाँवों पर अपना सिर टेककर बिलख-बिलखकर रोने लगी।

"कुछ समय बाद अस्पताल के डॉक्टर ने आकर नकटी को एक सुई

लगाई और एक नकटी भिखारिन के समीप इतने उच्चकोटि के व्यक्तियों को देखकर विस्मय करने लगा। इस समय नकटी नानी ने नेत्र खोल दिए। उसके मुख से रक्त बहना बंद हो चुका था। वह अपने आपको चारों ओर से घिरा हुआ देख, आश्चर्य में सबका मुख देखने लगी। अपने पति को पहचानकर उसका हृदय तड़पने लगा। उसके नेत्रों से अश्रुपात होने लगा। उसने अपना दाहिना हाथ बैड से नीचे लटकाकर अपने पति के चरण स्पर्श किए और हाथ माथे पर लगा लिया। दोनों विचित्र प्रेमी एक-दूसरे को अपलक दृष्टि से देख रहे थे। अपने पैरों पर किसी का भार-सा अनुभव करके नकटी नानी ने पूछा, "यह कौन सिसक रहा है, मेरे पाँव के पास बैठकर ?"

उत्तर मेरे पिताजी ने दिया, "तुम्हारी बेटी श्यामा है, चन्द्रावती ! जिसके नामकरण-संस्कार वाले दिन तुम घर छोड़कर चली आई थी।"

मेरे पिताजी की बात सुनकर नकटी नानी ने एक दु:खभरी कराह ली। जैसे वह इस बात को सुनना भी न चाहती हो। उसने केवल पति से इतना कहा, "मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिए है, फिर भी मुझे तुमसे क्षमा माँगते संकोच नहीं होता। तुम महान् हो, तुम्हारा सर्वस्व भी कोई चोर लूट चुका हो, तुम में उसे क्षमा कर देने की क्षमता है। मुझे भी [illegible] कर दो।"

मजिस्ट्रेट साहब अपना पद-गौरव अपनी मान-मर्यादा सभी कुछ [illegible]र नकटी के पास बैठे आँसू बहा रहे थे। नकटी ने कहा, "एक बार [illegible]री बच्ची दिखा दो।"

मेरे पिताजी ने श्यामा को बाजू से पकड़कर नकटी के पाँवों से उठाया और उसके सन्मुख ला खड़ा किया।

कुछ क्षण नकटी उसका मुख देखती रही। अंत में उसने श्यामा से आलिंगन के लिए हाथ बढाया। गैया से बिछुड़ी बछिया की भाँति श्यामा नकटी की छाती से चिपट गई और जी भर कर रोने लगी।

इतने में पुन: डॉक्टर आया। श्यामा उठ गई। डॉक्टर ने नब्ज

देखी और नब्ज़ देखते हुए मेरे पिता से पूछा, "इस नकटी भिखारिन से आपका क्या सम्बन्ध है ? बैरिस्टर साहब !"

मेरे पिता के कुछ कहने के पहले ही मजिस्ट्रेट साहब बोल उठे, "यह मेरी धर्मपत्नी है, डॉक्टर !"

मजिस्ट्रेट साहब का यह उत्तर सुनकर डॉक्टर हैरान होकर उनका मुख देखने लगा । उसके साथ ही नकटी नानी के मुख से एक चीत्कार उठी । वह कहने लगी, "हाय, तुम अभी भी इस कुलटा, पापिष्ठा, चरित्र-हीना को अपनी पत्नी कहने का साहस कर रहे हो ! ऐसा कहते तुम्हे तनिक भी घृणा नहीं होती ? एक कुलटा, नकटी भिखारिन को अपनी पत्नी कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?"

हम सब लोग पुनः अवाक् से होकर नकटी नानी का मुख देखने लगे । उसके नेत्रों में विशेष प्रकार की चमक आ गई थी । जिसमें उसकी उच्चकुल, गौरव और स्वच्छंदता की पुट थी । मजिस्ट्रेट साहब दयार्द्र नेत्रों से नकटी को देख रहे थे । उनकी यह दृष्टि नकटी सह न सकी और पुनः भडक कर बोली, "फिर तुमने मुझे उसी दयादृष्टि से देखा । तुम्हारी इसी दृष्टि ने मेरा लोक और परलोक छीन लिया । तुम्हारी इस आदर्श-वादिता ने ही मुझको एक नकटी भिखारिन बना दिया । यदि तुम प्रारम्भ में ही मेरे फूहड़पने से मुझे अलग रखने के लिए "सा... डपटते तो मैं आज इस पतित अवस्था को कभी प्राप्त न होती । तुम्हारी इस दयादृष्टि ने ही मुझे पाप मार्ग पर धकेला । आज भी तुम्हारा पौरुष नही जागा, आज भी तुम्हें मुझ पर घृणा नहीं होती ?"

ये शब्द उसने इतने जोर से चिल्लाकर कहे थे कि पुनः उसके मुख से रक्त वमन होने लगा और वह एकदम उत्तेजना में आकर बेड से लुढ़ककर अपने पति के पाँव पर आ गिरी । वह अपने पति का अंतिम 'अत्याचार' भी न सह सकी और अपने इस नकटे शरीर को अपने पति के चरणों में छोड़कर उस लोक में चली गई, जहाँ सती-साध्वी और पतिव्रता नारियों का निवास है ।